स्वामी राम-जीवनकथा

नवयुग के जीवन्मुक्त संत

सरदार पूरन सिंह

श्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान
१४, मारवाड़ी गली,
लखनऊ १

मूल्य १०-००

ॐ

स्वामी राम-जीवनकथा

नवयुग के जीवनमुक्त संत

●

मूल लेखक

सरदार पूरन सिंह

ॐ

●

उद्‌बोधन

शाहन्शहे-जहान है, सायल हुआ है तू।
पैदाकुने-जमान है, डायल हुआ है तू।
खंजर की क्या मजाल कि इक जख्म कर सके।
तेरा ही है ख्याल कि घायल हुआ है तू।

—राम

●

प्रकाशक

श्रीरामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ

तृतीय संशोधित संस्करण] १९७६ [मूल्य रु. १[illegible]

प्रकाशक
श्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान
१४ मारवाड़ी गली, लखनऊ

अनुवादक—**दीनदयालु**

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिंटर्स
२६८, ऐशबाग रोड, लखनऊ-४.

वेदान्तमूर्ति स्वामी रामतीर्थ

के चरण-कमलों में

आत्म-निवेदन

ॐ

तीर्थ-रेणु

अटल नियम

पाठक, बहुत बातों से क्या लाभ ? एक ही लिखते हैं, आचरण में लाकर परताल लो, ठीक न हो तो लेखक के हाथ काट देना और जिह्वा निकाल डालना। जरा कान खोलकर सुन लो और दिल की आँख खोल कर पढ़ लो। प्यारे ! कूप में कूद कर नीचे न गिरना तो कदाचित् हो भी सके, परन्तु जगत के किसी पदार्थ की चाह में पड़ कर क्लेश से बच जाना कभी नहीं हो सकता। सूर्य उदय हो और प्रकाश न फैले, यह तो कदाचित् हो भी जाय; परन्तु चित्त में पवित्र भाव और ब्रह्मानन्द होने पर भी शक्ति, श्री आदि मानों हमारी पानी भरने वाली दासी न हो जायँ, कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं। मीनार पर चढ़ कर नक्कारे की चोट से पुकार दो :—
'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'।

●

लक्ष्य

आत्मानम्रथिनं विद्धि शरीरम् रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ (कठ०उप० १, २, ३)

शरीर रूपी बग्घी में बैठकर जीवात्मा को बुद्धि रूपी साईस द्वारा मन की लगाम डोरी से इन्द्रियों के घोड़ों को हाँकते-हाँकते आखिर जाना कहाँ है ? "विष्णोः परमं पदम्"

लक्ष्य तो ब्रह्म-तत्व है। खुशी-खुशी (उत्साहपूर्वक) चित्त में स्नेह-मोह आदि रखते हो ? भैया ! काले नाग को गोद में दूध

पिला-पिला कर मत पालो। सत्य स्वरूप एक परमात्मा को छोड़ और कोई विचार मन में रखते हो? बन्दूक की गोली कलेजे में क्यों नहीं मार लेते, मार्ग में कहाँ तक डेरे डालोगे? रास्ते में कहाँ तक मेहमानियाँ खाओगे? यहाँ दुनिया सराय में माँ तो नहीं बैठी हुई? आराम अगर भालते हो, तो चलो राम के धाम में।

●

उपासना—प्रतीक और अहंग्रह

प्रतीक उपासना में बाहर के पदार्थों में पदार्थ-दृष्टि हटा कर ब्रह्म को देखना होता है। अहंग्रह उपासना में अपने अन्दर, जो अहंता-ममता कल्प रक्खी है, उससे पल्ला छुड़ा कर ब्रह्म ही ब्रह्म देखना होता है। यदि बाहर के प्रतीक को सत्य जानकर ईश्वर-कल्पना उसमें की जाय, तो वह ईश्वर उपासना नहीं, तिमिरपूजा (बुतपरस्ती) है।

●

परा पूजा

पदार्थ के आकार, नाम-रूप आदि से उठकर उसके आनन्द और सत्ता अंश में चित्त जमाना, पद या शब्द से उठकर उसके अर्थ में जुड़ने की तरह चर्मचक्षु से दृश्यमान सूरत को भूल कर ब्रह्म में मग्न होना रूपी जो उपासना है, क्या यह किसी न किसी नियत प्रतीक द्वारा ही करना चाहिए? प्रतीक तो बच्चे की पाटी की तरह है, उस पर जब लिखने का हाथ पक गया, तो चाहे जहाँ लिख सके। ब्रह्म-दर्शन की रीति आ गयी, तो जहाँ दृष्टि पड़ी ब्रह्मानन्द लूटने लगे। प्रतीक उपासना तब सफल होती है जब वह हमें सर्वत्र ब्रह्म देखने के योग्य बना दे। सारा संसार मन्दिर बन जाय, हर पदार्थ राम की झांकी कराये, और हर क्रिया पूजा हो जाय।

●

जगत में रोग एक ही है और औषधि भी एक ही। चित्त से अथवा क्रिया से ब्रह्म को मिथ्या और जगत् को सत्य जानना, एक यही विपरीत वृत्ति कभी किसी दुःख में प्रकट होती है, कभी किसी में और हर विपत्ति की औषधि शरीर आदि को "हैं नहीं" समझ कर ब्रह्माग्नि में ज्वाला रूप हो जाता है।

●

अपने तईं पूरा-पूरा और सारे का सारा परमात्मा के हवाले कर देने का मजा तब तक तो आ नहीं सकता, जब तक संसार के पदार्थों में कारणत्व सत्ता भान होती रहेगी, अथवा जब तक ईश्वर हर बात का एकमात्र कारण प्रतीत न होने लगेगा।

●

जब तक सब पदार्थों में सम धी नहीं होती, तब तक समाधि कैसी? विषम दृष्टि रहते, योग-समाधि और ध्यान तो कहाँ, धारणा भी होनी असम्भव है। सम दृष्टि तब होगी जब लोगों में भलाई-बुराई की भावना उठ जाय और यह क्योंकर उठे? जब लोगों में भेद-भावना उठ जाय, और पुरुषों को ब्रह्म से भिन्न मान कर जो अच्छा-बुरा कल्पना कर रक्खी है, न करें। समुद्र में जैसे तरंगें होती हैं, कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई ऊँची, कोई नीची, कोई तिरछी, कोई सीधी, उनकी सत्ता समुद्र से अलग नहीं मानी जाती, उनका जीवन भिन्न नहीं जाना जाता। इसी तरह अच्छे-बुरे आदमी और अमीर-गरीब लोग तो तरंगें हैं, जिनमें एक ही ब्रह्म-समुद्र ढाढ़ें मार रहा है। अहाहाहा! अच्छे-बुरे पुरुषों में जब हमारी जीव-दृष्टि उठ जाय और उनको ब्रह्मरूपी समुद्र की लहरें जान लें, तो राग-द्वेष की अग्नि बुझ जायगी और छाती में ठंढक पड़ जायगी। जो लहर ऊँची चढ़ गयी है, वह अवश्य नीचे गिरनी है, इसी तरह जिस

पुरुष में खोटापन समा गया है, उसे अवश्य दुःख पाना ही है। परन्तु लहरों के ऊँच और नीच भाव को प्राप्त होते रहने पर भी समुद्र की (पृष्ठ) को क्षितिज धरातल (Horizontal) ही माना है। इसी तरह लोगों के बीज रूप कर्म और कर्म फल को प्राप्त होते रहने पर भी ब्रह्मरूपी समुद्र की समता में फर्क नहीं पड़ता। लहरों का तमाशा भी क्या सुखदायी और आनन्दवर्द्धक होता है, पर हाँ, जो पुरुष उनसे भीग जाय या डूबने लगे, उसके लिए तो उपद्रव ही है। समुद्र-दृष्टि होने से सम धी और समाधि होगी।

उपासना की जान समर्पण और आत्मदान है, यदि यह नहीं तो उपासना निष्फल और प्राणरहित है।

●

जब तक तुम्हारी शारीरिक क्रिया उपासना रूप न हो, तुम्हारा ऊपर से उपासना कहना व्यर्थ दिखलावा है। निष्फल मन परचावा है। क्रियारूप उपासना का यह अर्थ है कि खाने, पीने, सोने, व्यायाम आदि में जो प्रकृति के नियम हैं, उनको रंचक मात्र भी न तोड़ा जाय।

●

धन चुराया गया, रोता क्यों है? क्या चोर ले गये? रो इस समझ पर। प्यारे! और कोई नहीं है लेने, ले जाने वाला, एक ही एक, शुक्र की आँख, यार प्यारा अनेक बहानों से तेरा दिल लिया चाहता है। गोपिकाओं के इससे बढ़कर और क्या सुकर्म होंगे कि कृष्ण मक्खन चुरायें। धन्य हैं वह जिनका सब कुछ चुराया जाय, मन और चित्त तक भी बाकी न रहे।

—स्वामी राम के 'उपासना' निबन्ध से

वक्तव्य

स्वामी राम की जीवन-कथा का तृतीय संशोधित संस्करण अपने राम-प्रेमी भाइयों के हाथों में सौंपते हुए हमें परम हर्ष होता है। यह कथा श्री पूरन सिंह द्वारा रचित The Story of Swami Rama (दी स्टोरी आफ स्वामी राम) का स्वच्छन्द भावानुवाद है। श्री पूरन सिंह स्वामी रामतीर्थ के परम भक्त थे और उन्होंने अत्यन्त समीप से राम को देखा, सुना और अध्ययन किया था। अतः यह पुस्तक 'राम' को ठीक-ठीक समझने में यथेष्ठ सहायक हो सकती है, क्योंकि इसमें स्वामी राम के जीवन-वृत्त के अतिरिक्त उनके संस्मरण एवं जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण—दोनों संगृहीत किये गये हैं।

ईश्वर करे, राम के इस आत्मचरित के अध्ययन से हमें अपने हृदय को शुद्ध करने और अपनी त्रुटियों को दूर करने में सहायता मिले। राम का शान्ति, स्वतन्त्रता तथा आत्मवत् प्रेम का संदेश हमारे हृदय में बस जावे, हमारी बुद्धि उनके आत्मज्ञान एवं सार्वभौमिक प्रेम से आलोकित हो, हम मनसा, वाचा, कर्मणा उनके व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा को अपने जीवन में उतार सकें और आत्मज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार के दिव्यानन्द के अधिकारी हों।

अन्त में हमारा सभी राम-प्रेमियों से साग्रह अनुरोध है कि वे यथाशक्ति स्वामी राम के साहित्य-प्रचार में हमारी सहायता करते रहें। एवमस्तु—

लखनऊ
२० मार्च, ७६

अयोध्यानाथ
मन्त्री, रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
प्राक्कथन	११–१५
प्रार्थना	१६
१—साधु के वेष में	१
२—साधु के वेष में (क्रमानुगत)	१०
३—उनकी झोली के फल : उनके मौलिक विचार	२६
४—उनके हृदय को बल देने वाली सुमधुर सुबास	३३
५—उन्होंने क्या कहा ?	४९
६—संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन	६८
७—संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन (क्रमानुगत)	१०७
८—संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन (क्रमानुगत)	११५
९—पर्वत और एकान्त-प्रेम	१२४
१०—फिर प्रारम्भिक जीवन का वर्णन	१४२
११—स्वामी रामतीर्थ-जापान में	१४७
१२—स्वामी रामतीर्थ-अमरीका में	१७२
१३—राम का पुनरागमन—मथुरा और पुष्कर में	२०५
१४—गंगा के किनारे व्यास आश्रम में	२१७
१५—अन्तिम दिन : वशिष्ठ आश्रम में	२२५
१६—स्वामी राम के पत्रों का संक्षिप्त संग्रह	२३४
१७—उनके देश की समस्या : भारतवर्ष पर उनके विचार	२८९
१८—उनके देश की समस्या (क्रमानुगत)	३०३
१९—कवि के रूप में स्वामी राम	३१८
२०—निष्कर्ष—कुछ मेरे विचार	३३९

प्राक्कथन

उस कमल के समान जो किसी छोटे-मोटे अज्ञात सरोवर में जन्म लेकर अपने पूर्ण विकसित सौन्दर्य से हमारे सामने प्रकट होता है; उस व्यक्ति के आत्मचरित के लिए भला क्या सामग्री जुटायी जा सकती है, जिसने अपने आनन्दमय जीवन-रहस्य के विषय में मौन धारण किया हो ? ऐसे व्यक्ति का आत्मचरित हो सकता है तो केवल इतना ही कि जिस किसी को मनुष्यों में पुष्प-समान सुन्दर इस व्यक्ति को देखने का अवसर मिला, वह खड़ा-खड़ा थोड़ी देर तक इसे निहारता ही रहा एवं दृष्टि भर देखने के अनन्तर मन ही मन इस पार्थिव जीवन से पृथक् उस दिव्य लोक की कल्पना करता चला गया, जिसकी एक गुह्य आभा सदा उसके सुस्मित वदन पर खेलती रहती थी। हमारे इस पूर्ण विकसित सरसिज ने बहुत आग्रह करने पर भी कभी अपनी जीवन-कथा खोलना स्वीकार नहीं किया। सचमुच जब देखो तब अपनी आत्मा का मधुमय सौरभ लुटाने के सिवा उसे अवकाश ही न था।

स्वामी राम, वास्तव में, आत्मा में श्वांस लेने वाले देवदूत थे। उनका भोजन था, ईश्वर का नाम—ओ३म् ! जिन्होंने उन्हें देखा, वे जानते थे कि उन्होंने अपने आप को परमात्मा में तल्लीन कर लिया था। महामंत्र 'ओ३म्-ओ३म्' की ध्वनि उनके मुख से इस प्रकार निःसृत हुआ करती थी, जैसे गंगा का धारा-प्रवाह। निस्संदेह स्वामी राम ने संसार के मायाजाल से अपने को पूर्णतः मुक्त कर लिया था। वे पंछी की भांति उच्च लोकों में विचरण किया करते थे।

इसी आत्म-विभोर आत्मा की झलक, जिसे मैंने सबसे पहले टोकियो में देखा था, इस पुस्तक में संस्मरणों के रूप में उपस्थित

की जाती है, क्योंकि उनके मस्तिष्क, अन्तःकरण और श्री कृष्ण के साथ उनके हार्दिक प्रेम के क्रमिक विकास का प्रामाणिक विवरण तो सदा हमारी आंखों से ओझल ही रहेगा। भगवद्प्रेम के उत्तरोत्तर विकास में भगवान के साथ तदात्मीयता का भाव उनके लिए ऐसा स्वाभाविक हो गया था कि वे 'शिवोऽहम्-शिवोऽहम्' कहे बिना रह ही न सकते थे। अद्वैतवाद का दार्शनिक 'तत्वमसि' सिद्धान्त प्रारम्भ में उनके लिए शास्त्रीय की अपेक्षा भावात्मक अधिक मालूम होता है।

जो बारीकी से उनके लेखों और उपदेशों का अध्ययन करेंगे, वे सहज ही देख लेंगे कि वे 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग अपने एक विशेष अर्थ में करते थे। वह उनके लिए निष्काम कर्म का बोधक भी था, और भक्ति के आत्मसमर्पण एवं आत्म-ज्ञान की ब्रह्मानुभूति का भी। इसी जीते-जागते वेदान्त के साक्षात्कार के लिए, आन्तरिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए उन्होंने सारे संसार के—प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य का खूब ही अध्ययन किया था। लाहौर से उन्होंने उर्दू में 'अलिफ' नामक एक सामयिक पत्र निकाला था। उनके मस्ती भरे लेखों में फारसी, हिन्दी, पंजाबी, अँग्रेजी और संस्कृत के चुने हुए मोती—जैसे उद्धरणों का अपूर्व संग्रह है। उनसे सहज ही हमें उनके उर्बरा मस्तिष्क की व्यापकता, विशालता और गम्भीरता का पता चल जाता है।

उनका एक-एक वाक्य आँसुओं से भीगा है और एक-एक विचार आदन्द से कूकता है। आलोचना उनकी कौन करेगा, जब वे चुपके से आलोचक के हृदय में घर कर बैठते हैं? उनके प्रेम का गीत निराला है। वे अपने शत्रु को भी अपनी आत्मा के रूप में गले लगाने को तैयार बैठे हैं। वे चिड़ियों जैसी चहचहाती वाणी से, चाहे उसे कहो कविता, चाहे संगीत, अपने आस-पास के वायु मण्डल में जादू भर देते थे। उनका शरीर उस झील के समान था,

जिसके अन्तराल में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ते ही कम्पन होने लगता है। उनकी दिव्य मस्ती के आगे तर्क के पैर लड़खड़ाते हैं। वे आत्म-विभोर थे। जहां हमें सैकड़ों प्रकार का विरोध दिखायी देता है वहाँ वे आत्मा का दर्शन करते—वही उनका सिद्धान्त था, वही उनका धर्म था।

'शिवोऽहम'—मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वर हूँ—यही उनकी एकमात्र रट थी। जो इस सिद्धान्त के कायल नहीं, वे भी उनकी इस ध्वनि-विशेष से दंग रह जाते थे। एक वाक्य में वे हमें ईश्वर की भक्ति का आदेश देते हैं और दूसरे वाक्य में मानों मन्दिर के सिंहासन पर से भगवान् की मूर्ति उतार कर स्वयं उस पर जा विराजते हैं। इस प्रकार सचमुच उन्हें समझना कठिन हो जाता है। वस्तुतः जव तक हमारे अन्तर में उन जैसी मस्ती, भगवान् के लिए उन जैसी तड़प और ज्ञानपूत आत्मविह्वलता न जाग उठे, तब तक उस उक्त अव्यक्त को अपनी व्यक्त वाणी के द्वारा कैसे ससझा-बूझा जा सकता है।

वे कवि थे। उनका हृदय पवित्र था और भरा था लबालब उस पवित्रपावन के आवेश से। जब भावनायें किसी प्रकार भीतर न समातीं तो वे आनन्द के मारे कविता के शब्दों में नंगे ही नाच उठतीं। वे प्रकृति के कवि थे और प्रकृति ही से उनका सच्चा सौहार्द था। कपड़े उतार कर वे घन्टों लेटे रहते—सूर्य रश्मियों में स्नान करने के लिए, अंग-प्रत्यंग में वायु स्पन्दन के हेतु। बस, ज्यों ही कोई भावना उठती, वे झट से उसे शब्दों का जामा पहना देते। स्वर्ण को लेकर धीरे-धीरे उसे गढ़ना, शनैः-शनैः हीरे को चमकाना, कोई सांगोपांग कला खड़ी करना उन्हें सुहाता न था। उनके विचार, उनकी भावनायें नग्न रूप में ही ऐसी मौलिक, ऐसी सौन्दर्य-मयी हैं! वे सदैव आत्मा की पूर्णता से भरे रहते थे। वाह्य रूपों का वहाँ कोई मूल्य न था। उनकी कला सीधीसादी थी—और उसका एक ही उद्देश्य था, स्वयं अपने अन्तर में और दूसरों के

भीतर आनन्द की सृष्टि करना। वे कविता बनाते नहीं थे, वे तो हाफिज और उमर खैयाम के साथ, अपने भगवान् के मस्त दीवानों के साथ कविता के पवित्र मन्दिर में प्रेमरस के प्याले पर प्याले उँडेला करते थे। मस्त और आत्मविभोर—उन्हें यत्र-तत्र-सर्वत्र अपने उसी इष्टदेव की खोज रहती थी।

विद्यार्थी जीवन में उनमें एक विजेता का दृढ़ संकल्प था। एक सती-साध्वी की लगन से उन्होंने विद्या-संग्रह की और एक गुलाम की भाँति कठिन परिश्रम किया। भूखे रहने पर भी एक रोटी और लेना उन्होंने इसलिए अस्वीकार कर दिया ताकि अपने अर्द्धरात्रि के दीपक के लिए तेल जुटा सकें। वर्षों एक दिव्य ज्ञान-पिपासा की लौ उनके भीतर जलती रही। गुजरांवाला के उस धन्ना भगत के प्रति, जिसे वे अपना गुरु मानते और विद्यार्थी-जीवन में जिसने उनकी कुछ सहायता भी की, उनकी भक्ति अगाध थी। वे सच्चे शिष्य थे। अनेकानेक शारीरिक और मानसिक कष्टों के बीच निर्द्वन्द्व और शान्त रहने का एक ही अव्यर्थ गुर उनके पास था—आत्म-समर्पण। निरन्तर भगवद्-चिन्तन और प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक मनुष्य में उसके दर्शन करना ही उनकी पूजा, उनकी भक्ति उनका आत्मज्ञान था।

'अलिफ' में दिये हुए प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य के सुन्दर चयन एवं धन्ना भगत के नाम उनके पत्र, जो इस पुस्तक में व्यापक रूप से उद्धृत किये गये हैं, उन जैसे व्यक्तियों के आत्मचरित की उपयोगी सामग्री हो सकती है। क्योंकि वस्तुतः उनका सच्चा जीवन तो उनकी मानसिक साधना में व्यतीत हुआ है।

स्वामी राम ने उस समय अपने आपको स्वतन्त्रता में दीक्षित किया, जबकि हम अन्य सब अपने देश में गुलामी का पाठ पढ़ रहे थे। भारतवर्ष के कालेज गुलाम ढालने की मशीनें थीं, जिनकी एक मात्र लालसा सरकारी नौकरी में नाम कमाने भर की होती थी।

यौवन-सम्पन्न और स्वतन्त्र—हमारा चरित्रनायक ऐसा व्यक्ति था, जिसका जापान, अमरीका और जहां भी वह गया, वहां खुले हृदय से भाई के समान स्वागत हुआ। प्राचीन भारत के जीते-जागते ऋषि-मुनियों की भाँति हजारों मनुष्यों ने ध्यान से उन्हें सुना और समादर किया। वे उन इनेगिने भारतवासियों में से थे, जो वर्तमान संसार की दृष्टि में अपने देश के आदर्श का गौरव बढ़ाने के लिए सतत स्तुत्य प्रयत्न करते रहे। टोकियो के प्रोफेसर 'ताकाकुसु' उन्हें देखकर चकित रह गये। उन्हें स्वामी राम में बौद्धधर्म और वेदान्त—दोनों साकार रूप में दिखायी दिये। अमरीका के सुप्रसिद्ध प्रोफेसर जेम्स ने उन्हें एक अद्वितीय आध्यात्मिक गुरु के रूप में देखा, जो अपने शरीर से बाहर आत्मा के केन्द्र में निवास करते थे।

अपने तमोगुण-प्रेमी देश में, जहां मन सदा चंचल रहता है, और हाथ सदा काम में आगा-पीछा किया करते हैं, जहां धर्म ने अंध विश्वास का रूप धारण किया है, जहां जातीय गौरव अपने पुरातन पूर्वजों के आध्यात्मिक उत्थान की आत्मप्रशंसा करना भर माना जाता हो, जहां लोग भविष्य की अपेक्षा भूतकाल की ओर देखना अधिक पसन्द करते हों, वहाँ स्वामी राम ने इन मिथ्या स्वप्नों से ऊपर उठकर और निरन्तर साधना-रत रहकर अपने देशवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति का जो अमर संदेश सुनाया है, वह क्या किसी प्रकार भुलाया जा सकता है? वे कहते हैं स्वतन्त्रता दूसरों को जीतने से नहीं मिलती—मिलती है, स्वयं अपनी विजय से, अपने मन की विजय से।

ग्वालियर, **पूरन सिंह**
मई १९२४.

प्रार्थना

स्वामी राम जीवन-मुक्त थे। वे जन्मजात जिज्ञासु थे, वे जन्मजात कवि थे और थे अपने ही अनुभवों के जन्मजात प्रचारक। एक शब्द में, वे इस वैज्ञानिक युग में, इस कलियुग में उपनिषद्-कालीन ब्रह्मर्षि थे। उपनिषदों ने जिस सत्य, शाश्वत सत्य की उद्घोषणा की है—'अहम् ब्रह्मास्मि' 'तत्त्वमसि' वे उसी अद्वय ज्ञानजन्य अपरोक्षानुभूति की जीती-जागती मूर्ति थे। वह मूर्ति तो नहीं रही, पर उनकी सजीव वाणी में आज भी उनकी प्रकाशपुंज आत्मा के दर्शन किये जा सकते हैं। उनकी सम्पूर्ण वाणी स्वानुभव-प्रसूत है, इसीलिए वह सीधे श्रोता के अन्तस्तल को छूती है। पर वे ऐसे कल्पनातीत ऊँचाई पर स्थित हैं, जो देश-काल-वस्तु, सुषुप्ति-स्वप्न-जाग्रत आदि सभी स्वप्निल परिच्छिन्नताओं के उस पार कहा जा सकता है। 'तुम देह नहीं, तुम मन नहीं, तुम हो ब्रह्म, तुम हो सत्य, तुम्हीं शिव हो और तुम्हीं शक्ति हो, तुम वास्तव में सत्-चित्-आनन्द हो—तुम अपनी आत्मा को पहचानो, उसी का अनुसंधान करो और उसी का अनुभव करो'। यह पाठ वे हमें ऐसी सरलता से पढ़ाते हैं, जैसे कोई बच्चे को पढ़ाये कि दो और दो चार होते हैं और दो और तीन-पांच। क्यों, क्योंकि वे तो निरन्तर देहाध्यास से उन्मुक्त हो चिदानन्द-सागर में निमग्न रहते थे। सचमुच ऐसे अज्ञानांधकार के समय स्वामी राम का प्रादुर्भाव मनुष्य-मात्र के लिए एक वरदान जैसा हुआ है। उनकी दृष्टि में मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य, जीवन का एक मात्र लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार। हम उनके उपदेशों का अनुगमन कर सकें, इसके लिए हमें श्रद्धा, सद्बुद्धि एवं संकल्पशक्ति का संचय करना होगा। ईश्वर करे, हम सब राम के अनुपम आत्मज्ञान से लाभान्वित हों, यही है हमारी कामना और यही है हमारी प्रार्थना। ॐ

—दीनदयालु

امریکن گون میں سوامی رام تیرتھ

SWAMI RAMA TIRTHA
(In American University gown)

American 1904

स्वामी राम

प्रथम परिच्छेद

साधु के वेष में

सबसे पहले हम स्वामी राम से साधु के वेष में मिले, इसलिए उनके प्रारम्भिक जीवन की कहानी से घनिष्ट परिचय कराने के पहले अपने पाठकों को साधु वेष में ही उनके दर्शन कराना हमें अधिक उपयुक्त मालूम होता है। यहाँ इतना बतलाना ही पर्याप्त होगा कि वे सन् १८७३ में पैदा हुए थे, १९०१ में साधु हुए, १९०२ में उन्होंने जापान और अमरीका के लिए प्रस्थान किया, १९०४ में वहाँ से लौटे और १९०६ में, तेतीस वर्ष की अल्पायु में ही, वे इस संसार से विदा हो गये।

जब वे सनफ्राँसिस्को पहुँचे, तब वहाँ के स्थानीय समाचार-पत्रों ने जनता पर स्वामी राम का सर्व प्रथम प्रभाव निम्न रूप से वर्णन किया था। वे हिमालय के एकान्त से निकल कर सीधे वहाँ पहुँचे थे—गेरुए वर्ण के संन्यासी वेप में, जिसमें होकर उनके अन्तर में प्रज्ज्वलित होने वाला आध्यात्मिक तेज फूट-फूट कर निकल रहा था।

"अब हमें दुनिया की प्राचीन परम्परा को उलट देना होगा। उत्तर-भारत के जंगलों से एक अद्वितीय विद्वान्, पैगम्बर, दार्शनिक, वैज्ञानिक और महात्मा यहाँ आया हुआ है। यह परिव्राजक संयुक्त-राष्ट्र में उपदेशक के रूप में प्रचार करना चाहता है। वह यहाँ के लोगों को, जो शक्तिशाली 'डालर' की देवता के समान पूजा करते

हैं, एक आध्यात्मिक शक्ति, एक व्यावहारिक परमार्थ भाव की नयी शिक्षा देगा। वह भारत की सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठ गोस्वामी ब्राह्मण है, और अपने देशवासियों में 'स्वामी राम' के नाम से प्रसिद्ध है।

"हिमालय का यह उल्लेखनीय ऋषि एक दुबला-पतला नवयुवक विद्वान् है, जिसके शरीर में महात्माओं जैसी तपश्चर्या की दमक और जिसके वर्ण में उच्च जाति के ब्राह्मणों जैसी मोहक चमक है। उसका माथा चौड़ा और ऊँचा, सिर पूर्ण विकसित और नाक पतली एवं स्त्रीसुलभ कोमल है। मुस्कराहट के समय जब उसका चौड़ा, दयार्द्र और सुकोमल तेजोमय मुख शुभ्र और पूर्ण दन्तपंक्ति के ऊपर उन्मुक्त होकर खुलता है तब आस-पास के सारे वायुमण्डल में एक दीप्ति सी छा जाती है, उस चमक के घेरे में आने वालों को तुरन्त ही श्रद्धा और प्रेम के वशीभूत कर देती है। 'मैं कैसे रहता हूं ?' कल स्वामी राम कह रहे थे 'यह बहुत ही सीधी बात है, मैं कोई प्रयास नहीं करता। मुझ में आत्मविश्वास है। मेरी आत्मा सदा मनुष्यमात्र के लिए प्रेमसागर में गोते लगाती रहती है। इसी कारण सभी मुझे प्यार करते हैं, जहाँ प्रेम होता है, वहाँ कभी कोई कमी, कभी कोई यातना हो ही नहीं सकती। मन की दशा और आत्म-विश्वास ने मुझे ऐसा प्रभाव दिया है कि मेरी आवश्यकतायें बिना माँगे पूरी हो जाती हैं। जब मैं भूखा होता हूं, तभी कोई न कोई मेरे लिए भोजन लिये मिलता है। मुझे रुपया-पैसा अथवा और कोई चीज माँगने का निषेध किया गया है, फिर भी मेरे पास सब कुछ है और बहुतों से बहुत अधिक, क्योंकि मैं ऐसे जगत् में रहता हूं, जहाँ सबकी गति नहीं होती।'

'एक हिन्दू देवदूत' शीर्षक के अन्तर्गत पोर्टलैण्ड के एक समाचार-पत्र ने लिखा था—

"छोटा और क्षीण शरीर, काली तेजपूर्ण उत्सुक आँखें, ओलाइव वर्ण, एक काला सूट और हर समय सिर पर एक चमक-

दार लाल पगड़ी, बस यही स्वामी राम की रूप-रेखा है। भारतवर्ष का यही आदमी आजकल पोर्टलैण्ड में आया हुआ है। यह एक भारतवासी नहीं है, यह भारतवर्ष का प्रतिनिधि है।

इस बन्दरगाह में भारतवर्ष से प्रायः यात्री आया करते हैं, किन्तु ऐसा विद्वान्, ऐसा विशाल-हृदय, ऐसा उन्नायक और निःस्स्वार्थ भावापन्न व्यक्ति शायद ही कभी यहाँ आया हो।"

जापान और अमरीका जाने से पहले भारतवर्ष में दो बार स्वामी शिवगणाचार्य ने शान्ति-आश्रम, मथुरा में छोटे रूप में सर्व-धर्म-सम्मेलन बुलाये थे और दोनों बार स्वामी राम व्यास गद्दी पर आसीन किये गये थे। उस समय लोगों पर उनका कैसा प्रभाव पड़ा था—यह लाहौर के 'फ्री थिन्कर' पत्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

'......किन्तु सबके प्रिय, विचारशील और गंभीर, समय-समय पर हँसमुख और कठोर, सर्वथा विभिन्न विचारधारा रखने वाले श्रोतासमाज को लगातार घंटों—यहाँ तक कि सायंकाल के अँधेरे में भी जादू के समान मंत्रमुग्ध रखने वाले वहाँ एक ही व्यक्ति दिखायी दिये—स्वामी राम। वे एक शान्त, नम्र, भरी जवानी में भोले-भाले नवयुवक हैं, जिन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन दर्शन-शास्त्रों एवं वर्तमान विज्ञानों का यथेष्ट ज्ञान संचय किया है। वे वास्तव में उस तत्व के बने हुए हैं जिसके सभी सत्यनिष्ठाशील व्यक्ति बनते हैं। नम्र और प्रसन्नचित्त, बच्चों जैसे सरल, बोलचाल और व्यवहार में निर्दोष होने पर भी उनके रेशमी जामे के भीतर वज्र जैसी कठोर संकल्प-शक्ति है। यही कारण है कि दूसरों की भावनाओं का बड़ी सावधानी से आदर करते हुए वे अपने विचारों को निर्भीकतापूर्वक व्यक्त करने में सबसे आगे रहते हैं..........'

अमेरीका में उनकी उपस्थिति का प्रभाव वहाँ अद्भुत दिखायी देता था। उनकी प्रफुल्लता संक्रामक थी। उनके विचार शीघ्र ही श्रोताओं के हृदय में घर करते थे और उनकी ओम्-ध्वनि का कहना

ही क्या—उसमें जादू था ! प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु, जो उनके पास पहुँचा, ओम्-ओम् ध्वनि रटे बिना न रहा। उनके दर्शन करने का अर्थ होता था अपने जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करना। हृदय की क्षुद्रता और नीचता न जाने कहाँ लोप हो जाती थी। दर्शक अपने आप ऊपर उठ जाता था। ऐसा मालूम होता था कि एक नूतन—जीवन विषयक एक सर्वथा अलौकिक दृष्टिकोण उनकी आँखों से निकलकर उन लोगों की आँखों में प्रवेश करता था, जो उनके आनन्द और मोहिनी से मंत्रमुग्ध से रह जाते थे।

बन के पंछी की भाँति वे चहचहाते थे, हिरनी के बच्चे की भाँति फुदकते थे—सच तो यह था कि वे साधारण मनुष्यों की धीमी और आलस्य भरी चाल से चलते कभी देखे ही नहीं गये। उनकी मंत्री, जो उस समय शायद मिस टायलर थीं, जब उन्हें 'ग्रेट पैसीफिक रेल रोड कम्पनी, सन फ्रांसिस्को' के मैनेजर के पास ले गयीं और कहा कि न्यूयार्क जाने के लिए उन्हें रियायती मूल्य पर टिकट दे दिया जाय तो उन्हें देखकर मैनेजर बोला—इन्हें ? इनको तो मैं पुलमैन कार यों ही देता हूँ। इनकी मुस्कराहट में कैसा जादू है !

जब मैं उन्हें टोकियो में बेरन नायवो-कंडू के घर ले गया, तब बातचीत के बीच ही में बेरन उठे, भीतर गये, और अपने स्त्री-बच्चों को ले आये और क्षमा-याचना के स्वर में बोले—मैं ऐसा असाधारण आनन्द अकेले नहीं भोग सकता था, इसीलिए उसे मिल-बांट कर लेने के लिए अपनी स्त्री और बच्चों को ले आया हूं। जब नायवो कंडू ने उनसे पूछा आपने अपना परिवार क्यों छोड़ दिया, तो स्वामी जी ने उत्तर दिया—एक वृहत्तर परिवार खोजने के लिए, जिससे अपने आनन्द को सारे विश्व के साथ मिल-जुल कर भोगूं। सेंट लुई की प्रदर्शिनी में धार्मिक लीग की एक बड़ी भारी सभा हुई थी—उसके विषय में स्थानीय पत्रों ने लिखा था—उस समूची श्रोतृ-मण्डली में एक ही चमकता हुआ केन्द्र था—स्वामी राम। साधारण बातचीत

में कभी-कभी वे किसी दार्शनिक अथवा धार्मिक प्रश्न के उत्तर में हंस देते थे और कई मिनिट तक बराकर हंसते रहते थे। इस प्रकार हंस-हंस कर मौन रह जाना—मानो वे कहते थे कि मनुष्य और ईश्वर विषयक ऐसे मनचले प्रश्नों के उत्तर के लिए तो इस चमकती और उमड़ती हुई हंसी को देखना ही पर्याप्त है।

राम से भेंट करने के बाद पंजाब विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट डाक्टर खुदादाद ने दो पंक्तियों में ही राम का सारा जीवन भर दिया था—

ओ स्वामी राम—तेरी मुस्कराहट है कैसी भेदभरी !
जीवन का सारा रहस्य है उसमें समाया हुआ !

राम को शब्दों के साथ खेलने में बड़ा मजा आता था, जैसे बच्चे खिलौनों से खेलकर प्रसन्न होते हैं।

उदाहरण के लिए वे अपने ही नाम के साथ खेला करते थे। टोकियो में जब पहले पहल मैं यकायक उनका अपने-आप को अन्य पुरुष के रूप में 'राम' के नाम से पुकारना न ताड़ सका, तो उन्होंने कहा—देखो, जैसे जीवन का क्रम गृहस्थ से संन्यासी, संसार से ईश्वर में बदल गया है, उसी तरह इस शरीर (उसकी ओर इशारा करते हुए) के नाम का क्रम भी बदल गया है। साधु-जीवन से पूर्ववर्ती दिनों में वह तीर्थराम था, अब वह रामतीर्थ हो गया है। कुछ दिनों बाद अंग्रेजी में अपने नाम Rama Tirtha में से उन्होंने 'i' निकाल दी और अपना हस्ताक्षर 'Rama Truth' के रूप में करने लगे, जिसका अर्थ होता है–राम सत्य। अंग्रेजी में एक शब्द है Disease, रोग का पर्यायवाची। उसके दो टुकड़े Dis और ease करने पर उसका अर्थ होता है शान्ति का अभाव। राम का विचार था कि इसी एक शब्द में मानसिक-चिकित्सा-विज्ञान का रहस्य भरा हुआ है। ईश्वर के साथ, अपनी ही आत्मा के साथ शान्ति धारण करो, तुम पूर्ण पवित्र हो जाओगे, फिर तुम्हें कोई रोग नहीं हो सकता। मेल-

मिलाप के पर्यायवाचक अंग्रेजी शब्द atonement को वे सदा टुकड़े-टुकड़े करके at-one-ment—'एक रस हो जाना' कहकर ही पुकारते और लिखते थे। इसी प्रकार समझने-बूझने के पर्याय Understanding को वे Standing-under—नीचे खड़ा होना, अपनी ही वास्तविक आत्मा में गोते लगाने के अर्थ में पढ़ा करते थे। संन्यास लेने पर वे स्वामी कहलाते थे। इस संस्कृत शब्द का अर्थ है 'प्रभु' जिससे दूसरों की अपेक्षा कुछ श्रेष्ठता सूचित होती है। अंग्रेजी में वे Swami को शब्दानुसार न लिखकर So am I 'वही मैं हूँ' अर्थात् 'तत्त्वमसि' के रूप में लिखते थे। इस प्रकार किसी पत्र के अन्त में उनके हस्ताक्षर होते थे—

So am I वही हूँ मैं
Rama Truth राम सत्य

इसी प्रकार वे अपने प्यारे ॐ मंत्र के साथ भी खेला करते थे, जिसकी निरन्तर ध्वनि, एक स्वतंत्र पंछी की स्वाभाविक चहचहाहट में वे सदा मस्त रहते थे। ओम् को वह कभी कभी ओ-अम् कहते थे। फारसी में ओ का अर्थ है 'वह' अम् का अर्थ होता है 'मैं हूँ'। इस प्रकार ओ-अम् को वे 'मैं वह हूँ' 'मैं ईश्वर हूँ' 'तत्त्वमसि' के रूप में समझते थे।

एक बार उन्होंने कहा था कि ईश्वर मिस्टर, मिसेज या मिस अर्थात् पुरुष, स्त्री या कन्या कुछ भी नहीं है, वह तो मिस्ट्री यानी रहस्य है। उनको 'ह' की कड़ी आवाज पसंद न थी, वे हिन्दू को सदैव 'इन्दु' चन्द्रमा—कह कर पुकारते थे।

उर्दू भाषा के 'मतलब' शब्द को वे बड़ा महत्व देते थे। उसका अर्थ है प्राप्तव्य उद्देश्य, और उसके टुकड़े करने पर 'मत' का अर्थ होता है 'नहीं' और 'लब' का 'ढूंढो'। अतः मतलब का मतलब हुआ 'मत ढूंढो'।

लाहौर में वे जब प्रोफेसर थे, तब प्रायः अपनी घड़ी से खेला करते थे। चाहे प्रातः काल हो या मध्याह्न, सायंकाल हो या अर्द्ध-रात्रि, यदि कोई उनसे पूछता कि इस समय क्या बजा है तो वे बड़े धैर्य से अपनी घड़ी निकालते और ध्यान से उसे देखते और फिर पूछने वाले के चेहरे की ओर ताकते। सहसा उनके मुँह से निकलता—प्यारे, इस समय ठीक एक बजा है और उसे घड़ी दिखाने लगते। जिन्होंने भिन्न-भिन्न अवसरों पर उनसे समय पूछा था, कहते "गोस्वामी जी, बड़ी विचित्र बात है, जब भी हम आपसे समय पूछते हैं तब आप एक बतलाते हैं"। उत्तर मिलता—"प्यारे ! राम की घड़ी ही ऐसी है, उसमें सदा एक ही बजता है।" यह कह कर वे हँस देते और चुप हो जाते।

डेनवर में उन्होंने अपने व्याख्यान का विषय बतलाया—'हर एक दिन नये वर्ष का नया दिन' और 'हर एक रात्रि बड़े दिन की रात्रि'। विषय सुनते ही श्रोतागण भौचक्के रह गये, बड़ी देर तक तालियां पिटती रहीं। ऐसा मालूम होता था कि अपने व्याख्यानों के शीर्षक चुनने के बहाने ही वे अपना आनन्द मधुर सौरभ की भाँति चारों ओर बिखेरना चाहते थे।

जीवन-साधना के विषय में अपनी जिज्ञासा से जो विचार उन्होंने स्थिर कर लिये थे, एक प्रकार से वही उनके सारे जीवन पर आच्छादित रहे। अच्छा लगे या न लगे, वे श्रोतागण का सदैव अभिनन्दन करते थे—'महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन् !' आत्म-साक्षात्कार की मस्ती और आनन्द की बाढ़ में वे अपने को राम-बादशाह कहा करते थे। कहते ही नहीं थे, खिलाड़ी लड़कों की भाँति यदा-कदा उसके लिए जिद भी करते थे। एक बार पोर्ट सईद में लार्ड कर्जन के साथ एक ही जहाज में भारतवर्ष जाने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि दो बादशाह एक साथ एक ही नाव में नहीं जा सकते। उन्होंने अपनी यात्रा रद कर दी और फिर

सचमुच दूसरे जहाज से भारत आये। वे प्रायः बड़े गंभीर भाव से अपनी चुनी हुई उर्दू और फारसी की शैरें गाया करते थे। आँखें बन्द रहतीं, और गुलाबी गालों पर आनन्दाश्रु बहते रहते। ऐसा मालूम होता जैसे वे सचमुच पार्थिव रूप से उन गीतों का स्वाद ले रहे हों, वे ऊपर के ओंठ को नीचे ओंठ पर दबाकर चुसकियां सी भरते। सचमुच उनमें ऐसे भावमग्न हो जाते कि उनका सारा बदन प्रेमानन्द से झनझना उठता, यकायक अपने काँपते हुए हाथों को ऊपर उठा लेते, जैसे सम्पूर्ण विश्व को अपने अङ्क में भर लेना चाहते हों। इस प्रकार वे कभी-कभी काव्य-रस सागर में घंटों डूबे रहते। कभी-कभी जनता के सामने भाषण करते समय बीच ही में अपने को भूल जाते और अपने पवित्र मंत्र ओम् की ध्वनि लगाते—ओम् ही उनका ईश्वर और सब कुछ था—जिन अमरीकन सज्जनों ने उन्हें इस प्रकार प्रेमानन्द में बेसुध होते देखा है, वे उनकी प्रशंसा थकते करते नहीं, कहते—राम प्रायः हर समय शरीर से ऊपर रहते हैं। वास्तव में वे सचमुच अपने आपको—अपने व्यक्तित्व को—भूल सा गये थे। जैसा पहले कह चुके हैं, वे सदा अपने लिए अन्य पुरुष का प्रयोग करते थे; उत्तम पुरुष—मैं—से उन्हें ईश्वर का बोध होता था। उनके मुँह से इस अन्य पुरुष की चर्चा इतनी स्वाभाविक मालूम होती थी कि जो उन्हें पहले पहल देखता, वह पहले यही समझता कि राम सचमुच, अपने बारे में नहीं, वरन् किसी तीसरे मनुष्य की बातें कर रहे हैं। जब मेरी पहली भेंट हुई तो मैं घंटों नहीं समझ सका कि इस प्रकार अन्य पुरुष में वे अपनी ही बातें कर रहे हैं। फिर बाद में उन्होंने वे बातें खोल-खोल कर मुझे समझायीं।

वे मनुष्य का सारा भीतरी प्रेम अपनी ओर खींच लेते थे। उनका स्पर्श सूखे से सूखे हृदय में भी कवि की भावनायें भर देता था। पूर्वीय साहित्य में प्रेम को देवी माना गया है, और उसे अद्भुत शक्ति से मण्डित किया गया है। उसके दर्शनमात्र से सूखे पौधों

में एकदम नई कलियाँ खिल उठतीं और सूखे कुंज लह-लहाने लगते। राम में यही प्रेम साकार हुआ था।

जापान में प्रवेश करते ही उन्होंने कहा—

राम इन लोगों को क्या सिखलाये ! ये तो सब के सब वेदान्ती हैं। ये सब के सब राम हैं, कितने प्रसन्नवदन, कितने सुखी, कितने शान्त और कितने परिश्रमी ! इसी को राम जीवन--सच्चा जीवन—व्यावहारिक वेदान्त कहता है !

द्वितीय परिच्छेद

साधु के वेष में (क्रमानुगत)

जहाज पर स्वामी राम को अमरीकन यात्रियों ने अमरीकन समझा, जापानियों ने उनको अपने देशवासी की भांति प्यार किया। जापान से प्रस्थान करने के बाद श्री के. हिराई ने कहा था—मुझे अब भी कदम्ब पुष्पों की भांति राम की मुस्कराहट हवा में नाचती दिखायी देती है। एक दूसरे कलाकार थे, जिन्होंने अंग्रेजी न जानते हुए भी टोकियो में 'सफलता के रहस्य' पर राम का व्याख्यान सुना था। उन्होंने कहा—स्वामी राम मुझे एक विशाल अग्निपुंज के समान दिखायी देते थे, और उनके शब्द छोटी-छोटी सजीव चिनगारियों की भाँति हवा में इधर-उधर उड़ते थे।

मिश्र में मिश्रवासियों ने उनका अभिनन्दन किया था और वहां फारसी भाषा में राम ने उन्हीं की मसजिद में व्याख्यान दिया था। दूसरे दिन समाचार पत्रों ने एक हिन्दू महात्मा के रूप में स्वामी राम का स्वागत किया, जिनका दर्शन करना वे अपना अहोभाग्य समझते थे।

अमरीका से लौटने पर मथुरा में एक दिन प्रातःकाल समीपवर्त्ती पुराणपंथियों ने प्रार्थना की—स्वामीजी, अपने विचारों के अनुसार राष्ट्र-निर्माण का कार्य करने के लिए भारतवर्ष में एक नया संगठन बना दीजिये। प्रेमानन्द से विभोर होकर उन्होंने अपने नेत्र मूंद लिये और प्रेम-पूर्ण आलिंगन के बहाने प्रेम से काँपती हुई बाँहों को फैलाकर वे कहने लगे—

प्रेम—प्रेमामृत की वर्षा करके

राम संसार को आनन्द से नहला देगा,
जो विरोध करेगा, उसका भी स्वागत, उसे गले लगाएगा।
सभी सभायें और समाज मेरे हैं, राम सबका स्वागत करता है।
लोगों से कहो—राम उनका है। राम सबको गले लगाता है। राम प्रेम है, प्रेम प्रकाश की भांति हर एक वस्तु को आनन्दमयी प्रतिभा से सराबोर कर देता है। राम सबको समान रूप से प्रेम करता है।

जब राम ईश्वर या मनुष्य की चर्चा करते थे, तब उनका सारा शरीर ठीक उस प्रकार काँपने लगता था जैसे गायक की उंगली के नीचे सितार के तार झनझना उठते हैं। यदि रूपक की भाषा में राम का चित्र खींचा जाय तो हमें किसी गुप्त रहस्य की मंत्रणा से फड़-फड़ाते हुए श्वेत हंस का चित्र बनाना होगा।

कभी-कभी राम विचित्र भावों में डूब जाते थे, जैसे कोई पुरातन कवि या दार्शनिक उनके सामने खड़ा हो और वे उनसे प्रेम-पूर्ण वार्तालाप कर रहे हों। इस अलौकिक संपर्क में राम सदैव एक खिलाड़ी बालक की भांति आनन्द में डूबे रहते थे, न उन्हें स्वयं अपने नाम की परवाह थी और न किसी उत्तरदायित्व के भार की। उनकी साहित्यिक आलोचनायें इसीलिए सदैव प्यार भरी और सरल होती थीं। जैसे वे आलोच्य कलाकार से एकान्त में बातें कर रहे हों, उनमें विद्वत्ता-प्रदर्शन और दुरूहता का नाम निशान नहीं होता था। वे कहा करते थे—शंकर ने यह क्या किया, अपने दिव्य प्रकाश को बर्तन के नीचे छिपाकर रखा। सदैव दूसरों के ही प्रमाण देते रहे। मुहम्मद ने अपने ही निजी अनुभव के आधार पर सत्य की घोषणा करके अच्छा ही किया—

'अल्लाह अकबर मुहम्मद रसूल अल्लाह'

वे पर्वतों और उनके एकान्त के प्रेमी थे। वे देवदार और चीड़ के सघनतम जंगलों में रहते थे। आधी रात के समय वे मार्ग-

हीन खाइयों की सैर के लिए निकल पड़ते थे, और सीधे खड़े पर्वतों पर प्रकृति के अल्हड़ बालक की भाँति चढ़ जाते थे। वे वस्तु-मात्र के अन्तस्तल में वैसे ही प्रवेश करते थे, जैसे पंछी हवा में विचरते हैं। उस छवि का क्या कहना, जब वे अर्द्धनिमीलित आँखों से हिमालय के घने जंगलों में घूमते थे, उस समय संसार के महान् से महान् सम्राट भी उनके सामने हेय थे।

अमरीका में रहते हुए भी वे प्रायः अपने निर्धारित सामाजिक कार्यक्रम से भाग खड़े होते थे, जैसे समाज के तङ्ग वायुमण्डल में उनका दम घुटता हो। वहाँ वे शास्ता पर्वतों पर रहने के लिए चले गये थे। शारीरिक कठिन परिश्रम के वे इतने अधिक प्रेमी थे कि अपने सहृदय मेजवान डाक्टर हिलर के लिए प्रायः जङ्गलों से ईंधन काटकर लाया करते थे।

अपनी बुद्धिजन्य महान् जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उन्होंने उस अद्वैत वेदान्त का अनुसरण स्वीकार किया था जिसकी शंकराचार्य ने विस्तृत व्याख्या की है, किन्तु उसका प्रचार वे अपने स्वाभाविक भावापन्न हृदय से करते थे। वे अपने को ब्रह्म कहते थे और आजीवन उसी ब्रह्मत्व के अनुभव के लिए चेष्टा करते रहे। उसका साक्षात्कार होने पर वे क्षण-क्षण पर उस ब्रह्मवृत्ति को उच्च स्तर पर स्थिर रखने के लिए सतर्क रहते थे। ईश्वर की याद क्षण भर के लिए भी उनके चित्त से नहीं उतरती थी। वे सदैव अपनी ब्रह्मवृति पर वाह्य-जगत के मनुष्यों और वस्तुओं का प्रभाव बड़े ध्यान से देखा करते थे। थोड़ी सी भी असावधानी होने पर वे कह उठते थे—देखो, देखो, राम स्वयं अपना विरोध कर रहा है। वे वास्तविक सच्ची आत्मा को ही ईश्वर मानते थे। ईसामसीह के शब्दों में उन्होंने भी घोषणा की थी कि मनुष्य को एक ही साथ दो वस्तुओं की प्राप्ति नहीं हो सकती—या तो मनुष्य माया को बटोर ले, जिसे वे मनुष्य की निम्न या क्षुद्र आत्मा कहते थे, या ईश्वर का साक्षात्

कर ले, जिसे वे मनुष्य की उच्च आत्मा मानते थे। उनके चरित्र में उनके इस सिद्धान्त और व्यवहार का कहीं कोई विरोधाभास नहीं हुआ, क्योंकि उनकी साधना बड़ी कड़ी थी, मानो वे अपनी सभी इंद्रियों से निरन्तर ईश्वर का संचय किया करते थे, उनका हृदय सदा उस शब्दातीत अचिन्त्य रहस्य के आनन्द से परिपूर्ण रहता था।

भगवा वस्त्र पहने यह चित्त आकर्षित करने वाली कवित्वशील आकृति सन् १९०६ में पंजाब से उठ गयी। भौतिक विद्वत्ता की गर्द को कण-कण झाड़कर एकदम नंगे हो उन्होंने हिमालय के हिमाच्छादित घने जंगलों में सफलतापूर्वक ईश्वर का दर्शन किया था। हिमालय के एकान्त में वे हृदयाग्नि की लौ इसलिये जलाये हुए थे कि देखें—हिमालय का घनघोर हिम कहीं उसे शान्त तो नहीं कर देता। इस प्रकार प्रकृति-माता की मीठी और प्यार भरी गोद में इस दिव्य मानव का जीवन चल रहा था। इसी क्रम में वे एक दिन गंगोत्री के शाश्वत हिम-निर्झर पर समाधिस्थ होकर जा बैठे—आल्हाद से तुषारवृष्टि को आज्ञा दी—बस, बन्द करो अपनी वर्षा को; उनकी मुस्कराहट से भूरे बादल फट गये और फिर सूर्यमण्डल में उन्हीं की मुस्कराहट खेल रही थी। वे बोल उठे—प्रकृति और राम दो नहीं—एक हैं, प्रकृति राम का शरीर है, उसकी नस-नाड़ियां राम उसी प्रकार हिला सकता है जैसे अपने हाथ-पैर।

अद्वैत के पूर्ण अनुभव से भरे हुए वे एक सच्चे वैदिक कवि थे, किन्तु स्वभाव और परम्परा से वे एक आदर्श वैष्णव थे, जिसकी साधना सुसंस्कृत होकर सर्वोच्च शिखर पर पहुँची हुई थी। अपने सहज स्वाभाविक उद्गारों में राम पर फारसी भाषा का काफी प्रभाव था—उनकी सारी कवितायें फारसी मिश्रित उर्दू में ही लिखी गई हैं। पर वे हैं सब अद्वैत परक और अन्तिम दिनों में तो वे एक प्रकार से पूर्णतः शंकर के 'मायावाद' के वशीभूत हो गये थे। उस समय वे कहा करते थे—यदि कोई सचमुच सत्य का साक्षात्

कर ले तो स्थूल शरीर का भी पतन नहीं हो सकता। वह निस्संदेह चिरन्तन हो जायगा। पर शंकराचार्य के ब्रह्मज्ञान की दृष्टि से तो अखिल विश्व ही माया और भ्रम है, वह हुआ ही कब ? एक, केवल एक सत्य के सिवा कहीं कुछ है नहीं !

उनका समीपवर्ती वायुमण्डल सदा उनके योगानन्द से परिपूर्ण रहता था। ऐसा मालूम होता था कि भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों एकसाथ उनमें मूर्तिमान हो उठे हैं। वे प्रायः अन्य व्यक्तियों के गीत लेते और उन्हें थोड़ा-बहुत अदल-बदल कर राम के नाम से* गाने लगते। यह भी उनकी एक मौलिकता थी, गूँगी किन्तु सजीव और हार्दिक भावों के उद्‌गारों से भरी हुई—

ग्रीष्म ऋतु में जब राम लाहौर की जलती हुई सड़क की फर्श पर घूमकर वापस आते थे तो वे, जो उनके चरणों का स्पर्श करते थे, बिलकुल ठंडा पाते थे। 'मैं कभी गरम लाहौर में नहीं घूमता, मैं तो सदा गंगा की पीयूष-धारा में विचरता हूं जिसकी रजत लहरियाँ मेरे पैरों को स्पर्श करती रहती हैं और मुझे आनन्द से सराबोर कर देती हैं।' वे प्रश्नकर्त्ता से पूछते—'क्या गंगा की धार सर्वत्र प्रवाहित नहीं हो रही है ?' सदा भाव-निमग्न, भोजन वस्त्र से लापरवाह, निर्मल अश्रु-प्रवाह के साथ स्वामी जी लाहौर में रहते हुए भी सदा नक्षत्रों के पालने में झूला करते थे और नील वर्ण आकाश में उन्हें वहीं पुरातन कदम्ब वृक्ष दिखायी देता था जिसकी शाखाओं पर बैठकर द्वापर में कृष्ण ने वंशी बजायी थी। हरद्वार में गंगास्नान करते हुए वे ऐसे ध्यानमग्न हो जाते थे कि उन्हें देश-काल की कोई सुध न रहती थी—आँखें मूद कर और कान बंद कर वे उसी कदम्ब वृक्ष पर भगवान् कृष्ण को अपने सामने देखते और उनकी वंशी का चिरंतन संगीत सुनने लगते। वे उस संगीत से आत्मविभोर हो जाते जो गंगा के हिम सदृश्य शीतल स्वच्छ

*आत्मानन्द की मौज में उन्हें अपने-पराये का कोई ध्यान न रहता था।

जल में स्नान करने वाले हजारों यात्रियों में से कभी एक के भी कान में न पड़ता।

आत्मानन्द की एक-एक लहर से वे पागल हो उठते, दिन के बाद दिन बीतते चले जाते और वे उसी में डूबे रहते। जब राम संसार-यात्रा के समय जापान से अमरीका गये तब सनफ्रांसिस्को बन्दरगाह में वे जहाज के डेकों पर बारी-बारी से आने-जाने लगे, जैसे उन्हीं डेकों में उन्हें निवास करना हो। एक अमरीकन उनकी इस विचित्र मस्ती से चकित होकर उनके पास पहुँचा और उनसे पूछने लगा कि वे अन्य सब की भाँति उतरने की जल्दी क्यों नहीं कर रहे हैं।

उस उत्सुक अमरीकन ने पूछा—क्यों साहब, आपका सामान कहां है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया—जो कुछ मेरे शरीर पर है, उसके सिवा मैं और कोई सामान नहीं रखता।

'आपका रुपया-पैसा कहां है ?"

"मैं रुपया अपने पास नहीं रखता।"

"फिर आपका जीवन कैसे चलता है ?"

"मैं सबसे प्रेम करके ही जीवित रहता हूँ। जब प्यासा होता हूँ तो कोई न कोई सदा पानी का प्याला लिये मिल जाता है और जब भूखा होता हूँ तो सदा कोई न कोई रोटी का टुकड़ा लिये तैयार रहता है।"

"किन्तु क्या अमरीका में भी आपके कोई ऐसे मित्र हैं ?"

"हाँ, हैं क्यों नहीं, मैं केवल एक ही अमरीकन को जानता हूं और वह हो तुम !" यह कहते हुए स्वामी जी ने उसके कंधे को छू दिया। उनके स्पर्श से उस अमरीकन पर जादू जैसा प्रभाव हुआ, जैसे उसे स्वामी के साथ अपनी पुरातन भूली हुई मित्रता का स्मरण हो आया हो। वह उनका अनन्य भक्त बन गया। इस भद्र पुरुष ने लिखा है—स्वामी जी हिमालय की गुफाओं से उदय होने

वाले ज्ञानसूर्य के समान हैं, न अग्नि उनको जला सकती है और न अस्त्र-शस्त्र उनको काट सकते हैं। आनन्दाश्रु सदा उनके नेत्रों से ढलकते रहते है, उनकी उपस्थिति मात्र से हमें नवजीवन मिलता है।

एक वयोवृद्ध अमरीकन महिला* एकान्त में स्वामी राम से भेंट करने आयी और स्वामी जी के सामने अपना घरू दुखड़ा रोने बैठ गयी। स्वामी जी आँखें मूंदे पद्मासन से बैठे थे और वह घंटों उनके सामने रोती-झींकती रही। अन्त में उसने मन में सोचा—यह तो पूरा गंवार है, एक स्त्री इसके सामने बिलख-बिलख कर रो-धो रही है किन्तु न तो इसके मुँह से सहानुभूति का एक भी शब्द निकला और न इसने करुण दृष्टि से उसकी ओर देखा ही। स्वामी जी उसके सामने उसकी बातें सुनते हुए, फिर भी प्रस्तर की प्रतिमा की भाँति अचल बैठे थे। "ये भारतीय सचमुच बड़े अभद्र और स्वार्थी होते हैं" —कहते हुए जब वह महिला अपनी दुख-गाथा समाप्त कर चुकी, तब स्वामी जी ने अपनी रक्तवर्ण उद्भ्रान्त जैसी आँखों से उसकी ओर देखा और कहा—"माँ!" बस, और तुरन्त ही अपना प्यारा वैदिक मंत्र ओम्-ओम् गाने लगे। उसने मुझसे कहा था कि उस समय मानो उनकी आँखों से एक नव-चेतना का एक अचिन्त्य प्रभात उसके सामने फूट पड़ा हो। वह कहने लगी—उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मैं पृथ्वी से ऊँचे उठकर और प्रकाश का जामा पहनकर हवा में उड़ने लगी हूँ। मुझे ऐसा भान हुआ, जैसे मैं सचमुच इस विश्व की मां हूँ। सारे देश मेरे हो गये, सारे राष्ट्र मेरी सन्तान बन गये। मुझे ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि मैंने भारतवर्ष जाकर उन स्थानों का दर्शन करने का निश्चय किया, जहां स्वामी जी ने जन्म लिया और जहां उनका पालन-पोषण हुआ था। मुझे लगता था कि मुझे जाना

***मिसेज वेलमेन—इस महिला से मेरी भेंट हुई और उसने मुझे अपना सारा वृत्तान्त सुनाया।**

ही होगा और इसीलिए मैं आयी हूं। अब मेरा धैर्य और आनन्द अटूट है—ओह, राम का वह प्यारा शब्द ओम् मेरी हड्डियों में गूंज रहा है। उनका वह शब्द 'मां', उसने मुझे सचमुच देवी बना दिया। मैं उनके चरणों का स्पर्श करके धन्य हुई—जो आनन्द उन्होंने मुझे प्रदान किया है, मेरा हृदय बार-बार उस पर न्योछावर होना चाहता है। मेरे हृदय में स्थित किसी अमृत-स्रोत का द्वार उन्होंने सदा के लिए उन्मुक्त कर दिया है, ऊपरी खोल फट गया है और मैं पवित्र हो गई हूं।

अमरीका में किसी झील के निवास-स्थल पर (इस समय मुझे ठीक नाम स्मरण नहीं आता) स्वामी जी ॐ ॐ की ध्वनि उच्चारण करते निवास करते थे। वहाँ प्राकृतिक चिकित्सा के उद्देश्य से बहुत से थके-मांदे और निराश रोगी आया करते थे। राम की उपस्थिति से वहां बहुत से रोगियों को ढाढ़स हुआ और बहुत से उनके द्वारा निरोग हो गये। वे उन्हें स्वास्थ्यदाता कहा करते थे।

उनके पत्र कवितारूप हैं और उनमें उनकी आत्मा की सुगंधि भरी हुई है। निस्संदेह वे पत्र राम के नाम से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य के सर्वोत्तम और सर्वापेक्षा मनोहर अंश हैं। नीचे एक पत्र दिया जाता है, जो उन्होंने ११ जून १९०३ को केसल स्प्रिंग, कैलिफार्निया से भारतवर्ष के एक मित्र के नाम लिखा था। वह पत्र नहीं, उनके अपने विशेष आनन्द को व्यक्त करने वाला सजीव दूत जैसा है। वे लिखते हैं—

१६ मई—राम नदी के किनारे एक चट्टान पर पैर पसारे लेटा है, उसी समय डा० हिलर-भवन के मैनेजर ने उसे एक बहुत ही सुन्दर झूला लाकर दिया, जो स्याटल के किसी मित्र ने बिना मांगे ही भेज दिया था। तुरन्त ही वह एक हरे-भरे देवदार और लालफर वृक्ष के बीच में खूब ऊंचे हवा में लटका दिया गया। राम उमड़ते हुए आह्लाद और घुमड़ते हुए अट्टहास के साथ उस झूलते हुए विस्तर पर

जा लेटा। सुगंधि-युक्त मीठी-मीठी हवायें राम को इधर-उधर झुलाने लगीं और नदी ने ओम् ध्वनि का राग प्रारम्भ किया। राम को हंसी सूझी। वह हंसा, और हंसता ही गया। तुम उसे उस समय हंसते हुए देखते! एक चहचहाती हुई गौरैया ऊपर बेठी राम के झूलने का मजा ले रही थी। शायद उसे राम से ईर्ष्या हो रही हो? क्या सच-मुच? नहीं, राम से ईष्या करने का कोई कारण नहीं हो सकता। हर एक गौरैया, हर एक फाख्ता और हर एक कोयल तो राम का अपना आप है। फिर भी जब भीतर न समाने वाले हार्दिक उल्लास को खेलने-कूदने और इधर-उधर नाचने में खपा देने के लिए राम झूले से नीचे उतरा तो वह सुन्दर गौरैया चुपचाप झूला झूलने का मजा लेने के लिए उसमें जा बैठी। देखो, राम की छोटी-छोटी चिड़ियां, छोटे-छोटे फूल उसी तरह खिलाड़ी, प्रसन्न और स्वतंत्र हैं, जैसे राम!

२० मई, मध्याह्न। संयुक्त राष्ट्र के प्रेसीडेण्ट उत्तर की ओर जाते हुए थोड़ी देर के लिए स्प्रिंग्स (निर्झर) पर ठहरे थे। स्प्रिंग कम्पनी की महिला प्रतिनिधि ने उन्हें सुन्दर फूलों से भरी हुई एक टोकरी भेंट की और तत्पश्चात् उन्होंने राम के हाथों 'भारतवासियों के हितार्थ अपील' नामक पुस्तिका बड़े प्रेम, बड़ी प्रसन्नता और बड़ी शिष्टता से ग्रहण की। वे बराबर उस पुस्तिका को अपने दाहिने हाथ में लिये रहे और उसी दाहिने हाथ से जनसमूह के अभिवादनों का उत्तर देते समय वह पुस्तिका स्वतः सैकड़ों बार अपने आप उनके मस्तक को छूती रही। जब गाड़ी चल दी, तब वे उसी पुस्तिका को ध्यान से पढ़ते हुए दिखायी दिये और चलती हुई गाड़ी से एक बार पुनः राम को धन्यवाद-सूचक प्रणाम किया।

किन्तु सुनो तो, राम ने उस राष्ट्रपति को उस रसमय झूले में झूलने और इस प्रकार अतिशय आह्लाद लूटने का निमंत्रण देना ठीक नहीं समझा! क्या तुम कल्पना कर सकते हो, क्यों राम ने ऐसा नहीं किया? प्यारे, कुछ सोचो तो। पर ओहो, तुम बोल नहीं सकते, इस-

लिए राम ही तुम्हें बतलाता है। कारण बहुत ही स्पष्ट है। स्वतंत्र कहलाने वाले अमरीकनों का अधिपति सहस्रांश में भी उतना स्वतंत्र नहीं है जितनी राम की चिड़ियां और हवायें!

पर राष्ट्रपति की चर्चा छोड़ो। तुम स्वतंत्र हो सकते हो, ठीक राम जैसे स्वतंत्र और राम की भांति हवा एवं प्रकाश को भी अपना आज्ञाकारी अनुचर बना सकते हो। बस, राम हो जाओ और राम तुमको सब कुछ—सूरज, चांद, तारे, हवा, बादल, सागर, पर्वत, जंगल क्या-क्या नहीं भेंट करेगा? सब चीजें तुम्हारी हो जायेंगी। कितना बढ़िया सौदा है। प्यारे! क्या तुम इसे पसन्द नहीं करते? लो प्यारे, इस अनुपम भेंट को लेकर देखो तो सही!

प्रातः काल चार बजे उषा के चुम्बनों से जगकर और उन्मुक्त मन्द-मन्द समीर की गुदगुदी को साथ लेकर राम कलकल कलरब-शील चिड़ियों के मधुर संगीत के स्वागतार्थ पर्वतों की चोटियों पर या नदी के किनारे टहलने के लिए निकल जाता है।

आओ, प्यारे तुम भी आओ और राम के साथ हंसो, खूब हंसो, जी खोलकर हंसो। मेरे बच्चे जल्दी आओ और राम की निर्भीक मुस्कराहट भरी आँखों में देखो। बस, तुम प्रकृति के समीप और राम के समीप निवास करने लगोगे। मैं तो शिव और आनन्द-घन हूं।

स्वामी राम प्रकृति के अनन्य प्रेमी थे। ज्यों ही अवसर मिलता वे झट पहाड़ों और जंगलों में दौड़ जाते—जैसे बाज अपने पर्वतीय घोंसले की ओर दौड़ता है। वहां वे ध्यान करते और प्रकृति के अगाध एकान्त से स्वास्थ्य एवं ज्ञान-स्फूर्ति प्राप्त करते। प्रकृति में स्वास्थ्यदायिनी शक्ति है, जब मनुष्य एकाग्र मन से निश्चिन्त होकर पूर्णतः उसके प्रभावों के प्रति आत्मसमर्पण कर देता है, तभी

उससे सब से अधिक लाभ होता है। स्वामीजी ने एक निम्नांकित पत्र मुझे दार्जिलिंग के जंगलों से लिखा था—

दिन रात बन जाता है और रात्रि पुनः दिवस में परिणत होती है और तमाशा देखो कि तुम्हारे राम को यहां कोई काम करने के लिए समय ही नहीं मिलता, रात-दिन कुछ भी न करने में जुटा रहता है। आंसू निरन्तर झरते हैं, मानो इस सबसे अधिक वर्षा वाले जिले की अजस्र वर्षा से स्पर्द्धा करते हों। रोंगटे खड़े रहते हैं, आंखें खुली रहती हैं किन्तु सामने का चीजों में से कुछ भी दिखायी नहीं देता। बातचीत रुक गयी, काम रुक गया, अभाग्यवश (?) नहीं, सर्वाधिक सौभाग्यवश ! ओह, मुझे एकदम अकेला रहने दो।

इस शब्दहीन आनन्दोत्सव की लहरों का एक के बाद एक बराबर आते रहना—ओ प्रेम ! इस उत्सव को चलने दो, ओ सर्वाधिक स्वादिष्ट पीड़ा—इस आनन्द-स्रोत को बहने दो।

लिखना-पढ़ना दूर—
व्याख्यान—भाषण परे हटो !
नाम-धाम से क्या मतलब ?
आदर—व्यर्थ का आडम्बर।
निरादर—कोई माने नहीं रखता !
क्या ये खिलौने जीवन-लक्ष हो सकते हैं ?

तर्क, न्याय और विज्ञान—लूले-लंगड़े बेचारे ! यदि मेरी ओर देखें तो उनका अंधापन मिट जाय।

स्वप्नों से बह निकली एक पवित्र, पवित्रतम धारा
जाग्रत में जो बढ़ती गयी, बढ़ती गयी
और कभी कभी किनारों के, इन इन्द्रियों और इस पार्थिव
शरीर के किनारों को पार करके आगे बढ़ गयी
और लो ! यह तो सारे संसार में फैल गयी, फैल गयी—
सारे विश्व को प्लावित कर दिया कैसा अंधड़, कैसी शांति !

इसी के लिए तो सूर्य, प्रतिदिन निकलता है
और यह समूचा विश्व सूर्य का चक्कर लगाता है
ओ हो, जन्म और मृत्यु सब इसी के कारण से तो हैं।
वही धारा धड़धड़ाती आती अद्भुत दृश्य दिखाती है
और आनन्द की कैसी बाढ़ छा जाती है।
यह कैसा अट्टहास! कैसी शान्ति!

और उनका यह अमरीका से भेजा हुआ पत्र देखिए—

१० अगस्त १९०३

नक्षत्रखचित आकाश-मण्डल के नीचे
एक नैसर्गिक आराम में
एक पर्वतीय निर्झर के किनारे
प्यारे कल्याणस्वरूप आत्मन्,

तुम्हारा पत्र दूसरी डाक के साथ अभी-अभी मिला, जब कि राम शास्ता पर्वत (१४,४४४ फीट ऊँचा) की चोटी के एक अत्यन्त सुखद दौर से वापस लौटा है।

प्यारे तुझे क्या करना है, तू कुछ भी मत कर। बस, अपने घर को संभाल कर ठीक कर ले, उसके किवाड़ खोल दे और उन्हें सब के—हर एक के आने के लिए खुला रहने दे—अपनी धन-सम्पति को गरीबों में, धनहीनों में बांट दे और बस, तैयार होकर उस जगह आ जा, जहां राम तेरी बाठ जोहता है।

ओ प्रसन्नता! बहो, उत्सुक होकर बहो और बहते-बहते समानता के समुद्र को पार कर जाओ। झटके से तोड़ डालो, सारे बन्धनों को और कर्त्तव्यों को टुकड़े-टुकड़े कर डालो, और अपने ब्रह्मभाव के प्रताप से प्रतापी हो जाओ।

भीतर देखो, भीतर ढूंढ़ो, तुम्हें सदा उत्तर मिलता रहेगा। तुम स्वयं राम हो।

स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के अंग्रेजी संस्करण की भूमिका में जो रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ, द्वारा "In Woods of God-Realization" के नाम से प्रकाशित हुए हैं, राम के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए श्री सी० एफ० एण्ड्रूज लिखते हैं—

स्वामी राम के लेखों में बच्चों जैसी सरलता है। उनके भीतर उमड़ता हुआ आनन्द और आह्लाद फूटा पड़ता है, जो उन्होंने आत्म-साधन और कठोर यातना से प्राप्त किया है। उनके भीतर हमें उस आत्मा के दर्शन होते हैं, जो स्वयं सन्तुष्ट है। उनमें अपनी इस अमूल्य निधि को दूसरों को भेंट करने की इच्छा स्पष्ट दिखायी देती है। इसके साथ ही राम के लेखों में हमें उन निम्न वासनाओं को जाग्रत करने का कोई संकेत नहीं मिलता, जो साधारणतः जीवन में सफलता प्राप्त करने के हेतु उत्तेजित की जाती हैं। नहीं, वे इनका विरोध करते हैं और सभी वाह्य परिस्थितियों की उपेक्षा करके केवल उस आत्मा के साक्षात् का अनुरोध करते हैं, जो सच्चे और शाश्वत आनन्द का भाण्डार है।

वे रंचमात्र भी उन उदासियों में परिगणित नहीं किये जा सकते जो वैराग्य के पथ का अनुसरण करके संसार के हर्ष और प्रसन्नता से सदा के लिए मुंह मोड़ लेते हैं। उन्होंने स्वयं उन शारीरिक कष्टों और तितिक्षाओं का सहन किया था, जिसका अनुभव हममें से बहुत कम लोगों का प्राप्त होता है। किन्तु इसके फलस्वरूप न उनमें कोई कटुता आयी, न रुक्षता, वरन् उनका संदेश नम्रता और आनन्द से भरा हुआ है। उदाहरण के लिए उनके व्याख्यानों के शीर्षक ही हमें उनके अन्तः करण के अन्तर्गठन की झांकी दिखाने के लिए पर्याप्त है—एक शीर्षक है—"आनन्द तुम्हारे भीतर है"। दूसरा, "अपने घरों को सुखी कैसे बना सकते हो ?" उनको सदा ऐसे ही विषय आकर्षित करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि अपना संदेश स्पष्ट करते हुए वे अपने हर एक शब्द में, एक एक शब्द में, अपना हृदय खोल कर रखने की

चेष्टा करते हैं। अपना संदेश उन्होंने स्वयं अपने अनुभव से प्राप्त किया है, वे दूसरे के अनुभवों पर भरोसा नहीं करते। वे स्वयं आकण्ठ आनन्द से भरे हुए हैं और संसार को वही आनन्द प्रदान करने के लिए लालायित हैं। उनका आनन्द उस समय पराकष्ठा को पहुंच जाता है, जब वे इसी आनन्द की व्याख्या करने लगते हैं।

एक स्थल पर उन्होंने स्वयं अपना चित्र खींचा है। वे कहीं अमरीका में बैठे हुए थे—

देवदार और चीड़ के वृक्षों तले आराम से लेटा हूं, एक शीतल पत्थर तकिये का काम दे रहा है, कोमल बालू ही मेरा बिस्तर है। एक टांग मौज से दूसरी टांग पर रखे हुए मैं सम्पूर्ण हृदय से सद्य और ताजी वायु की चुसकियां ले रहा हूं। ओह, उस तेज-पूर्ण प्रकाश का चुम्बन लेने में कैसा मजा आता है। एक ओर ओम् का मधुरतम संगीत है और दूसरी ओर कल-कल नाद करता हुआ निर्झर राम के स्वर में स्वर मिलाने के लिए तैयार खड़ा है।—

श्री सी० एफ० एण्ड्रूज अपनी 'भारतवर्ष में नवयुग' नामक पुस्तक में पुनः राम की चर्चा करते हैं—

······एक दूसरे व्यक्ति, जिनका व्यक्तित्व कई बातों में स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व से भी अधिक चित्ताकर्षक है और जिन्होंने उत्तर भारत में उसी 'नव वेदान्त' के प्रचार का शंखनाद किया है, वे हैं स्वामी रामतीर्थ। वे ब्राह्मण थे और लाहौर में हद दर्जे की गरीबी में उनका लालन-पालन हुआ था। वहीं फोरमेन क्रिश्चियन कालेज में उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। विश्वविद्यालय में एक अत्यन्त उज्ज्वल अध्ययन समाप्त करने के अनन्तर वे वहीं गणित के प्रोफेसर हो गये। पर उनका हृदय पूर्णतः धर्म के प्रति समर्पित हो चुका था, अतः परिव्राजक और प्रचारक बनने के लिए उन्होंने कालेज के अध्यापन-कार्य से सदा के लिए छुट्टी ले ली। वे हिमालय के सघनतम जंगलों में चले गये और वहां एकान्त में प्रकृति के साथ रहने-सहने लगे। उनके चरित्र में हमें

यथार्थतः काव्यरस की धारा प्रवाहित होती स्पष्ट दिखायी देती है। उनके स्वभाव में हमें एक उमड़ता हुआ, क्षण-क्षण पर बाहर फूट पड़ने वाला ऐसा आह्लाद दृष्टिगोचर होता है कि कठिन से कठिन कष्ट और घोर से घोर अभाव भी उन्हें छू नहीं पाते। उनके शिष्य नारायण स्वामी ने मुझ से राम के सार्वजनिक भाषणों के लिए प्राक्कथन लिखने को कहा था और मुझे उसे तत्परता से पूर्ण करने में प्रसन्नता हुई थी—क्योंकि उनके लेखों में मुझे स्वामी विवेकानन्द के लेखों की अपेक्षा ईसाई धर्म की ध्वनि अधिक स्पष्ट सुनायी पड़ती है। उदाहरण के लिए प्रभु-प्रार्थना विषयक निम्नलिखित-आलोचना की तुलना कीजिये।

'प्रभु की प्रार्थना' में स्वामी रामतीर्थ लिखते हैं, "हम कहते है—हे प्रभु ! हमें आज का भोजन दीजिये और एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि मनुष्य केवल रोटी के सहारे जीवित न रहेगा। इन दोनों कथनों पर फिर से विचार कीजिये। उनको ठीक ढंग से, पूरी तरह समझिये। प्रभु की प्रार्थना का यह अर्थ नहीं है कि तुम मांगते-जांचते रहो, तरह तरह की इच्छाएँ करो, कदापि नहीं। प्रार्थना का तात्पर्य ऐसा होना चाहिए कि एक राजा भी, एक सम्राट भी, जिसे अपने दैनिक भोजन न मिलने की कोई आशंका ही नहीं हो सकती भगवान् के सामने ऐसी प्रार्थना करे। यदि यह ठीक है तो स्पष्ट ही 'आज हमको हमारी रोटी दीजिये'—इसका यह अभिप्राय नहीं हो सकता कि हम एक भिखारी बन जायँ अथवा हम भौतिक समृद्धियों के लिए भगवान् से याचना करें—कदापि नहीं ! प्रार्थना का अर्थ यह है कि हर एक मनुष्य भिखारी बन जायें अथवा हम भौतिक समृद्धियों के लिए भगवान से याचना करें—कदापि नहीं ! प्रार्थना का यह है कि हर मनुष्य—चाहे वह राजकुमार हो, राजा हो या साधु—अपने चारों ओर की वस्तुओं को अपनी सम्पत्ति और वैभव को अपना न समझे, वरन् ईश्वर का समझे; अपना नहीं, अपना नहीं। इसे हम

भिखारीपन नहीं कह सकते—यह तो पूर्ण त्याग और संन्यास है, ईश्वर को अपना सब कुछ सौंप देना है। राजा जब ऐसी प्रार्थना करता है, तब अपने आपको उस मनोदशा में पहुंचा देता है, जहाँ उसके धनागार के सारे रत्न, उसके महत्व की सारी सम्पत्ति, स्वयं राजभवन उसका नहीं रहता, वह उन्हें छोड़ देता है, त्याग देता है, उन पर से अपना अधिकार हटा लेता है। वह मानो प्रार्थना करते समय साधुओं का साधु—परम साधु—बन जाता है। वह कहता है—यह ईश्वर का है, यह मेज ईश्वर की है, मेज पर की सभी चीजें उसकी हैं, मेरा तो कुछ भी नहीं, जो कुछ मेरे पास आता है, वह सब उसी प्यारे के हाथों प्राप्त होता है।

तीसरा परिच्छेद

उनकी झोली के फल : उनके मौलिक विचार

प्रत्येक व्यक्ति जो जीवन, के रहस्य उसकी विशालता, उसके प्रेम की सत्यता की खोज करता है, अपनी झोली में जीवन के कुछ पके हुए फल इकट्ठा कर लेता है और यदि उदार हृदय हुआ तो उन्हें सड़क के किनारे बैठकर अपने पास से आने-जाने वालों में मुफ्त वितरण करता रहता है। कभी-कभी तो वह स्वेच्छा से उन लोगों की खोज भी करता है, जिन्हें उन फलों की आवश्यकता होती है। किन्तु ज्यों-ज्यों वह उन्हें बांटता रहता है त्यों-त्यों उसकी झोली फलों से सदा हरी-भरी रहती है। चाहे उस सन्त का किस्सा सच हो या न हो, जो केवल रोटी के एक टुकड़े से सैकड़ों अतिथियों को भोजन करा देता था और फिर भी उसके पास दूसरों को खिलाने के लिए यथेष्ठ बचा रहा था, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि जीवन के अर्थ और सच्चे उद्देश्य को समझने की चेष्टा करने वाले प्रेमी और सत्यनिष्ठ जिज्ञासु की झोली के फल कभी चुकते नहीं।

हम संन्यासी वेष में भगवा वस्त्र पहने स्वामी राम के दर्शन कर चुके। अब इस परिच्छेद में राम उस प्रसन्नबदन फल-विक्रेता के रूप में चित्रित किये जायेंगे, जो फलों से पूर्ण अपनी अक्षय झोली लटकाए सड़क के किनारे बैठा है और एक हाथ उस झोली में डालकर जो भी सामने आता है, उसे फल निकाल-निकाल कर यों ही देता जाता है।

सबसे पहले उन्होंने हमें सिखाया कि शरीर और मन से ऊपर जीवन की एक स्थिति होती है जो ज्ञान, दिव्य स्फूर्ति, आनन्द की

अवस्था है, जहाँ मनुष्य अलौकिक समाधि में समा जाता है। यह वह अवस्था है, जहां मनुष्य ईश्वर से एकता प्राप्त करता है, एक हो जाता है, स्वयं ब्रह्म होता है। जो मनुष्य निरंतर उस समाधि की स्थिति में रहने लगता है, कभी उससे नीचे नहीं उतरता, वह वास्तव में, यथार्थतः ईश्वर, ब्रह्म है। इस सुन्दर स्थिति में कई अदृश्य शक्तियां प्राप्त होती हैं और हम उनका उपयोग कर सकते हैं—स्वामी राम उनकी कोई चर्चा नहीं करते कि ऐसा होता है या नहीं। वे तो जब 'समाधि' साधन के विषय पर बोलते हैं तो स्पष्टतः एक आध्यात्मिक रहस्यवादी के रूप में ही हमारे सामने प्रकट होते हैं, मानो अन्तःकरण के इस टूटे-फूटे दीपक से परे वे उस पूर्ण प्रकाश की ज्योति से नहा रहे हों। राम कहते हैं—एकाग्रता का अर्थ है शरीर और मन से ऊपर उठ जाना, जहां हमें शरीर और मन दोनों का ध्यान नहीं रहता, वह आनन्द और शान्तिमय समाधि की अवस्था है। संसार के सभी बड़े बड़े विचार वहीं से निकले हैं, कवियों की कविता वहीं से बहती है और वैज्ञानिकों के प्रकृति-सम्बन्धी गुप्त रहस्यों को बतलाने वाले आश्चर्यजनक आविष्कार भी वहीं जन्म लेते हैं। मानसिक अथवा शारीरिक कष्ट की अत्यन्त तीव्र स्थिति में भी कभी-कभी मनुष्य इस समाधि, एकाग्रता की पराकाष्ठा को पहुंच जाता है। "बस, इसी समाधि-स्थिति में निवास करो और फिर किसी झँझट की आवश्यकता नहीं। इस स्थिति में प्रवेश करते ही, सारा संसार तुम्हारा अनुचर हो जाता है। न्यायाधीश को तो केवल अपने सिंहासन पर बैठना भर है, फिर तो उसके काम-काज की सारी वस्तुयें अपने आप ठीक हो जायँगी।" इसी बात को स्वामी राम ने दूसरे स्थल पर यों कहा है—

ज्योंही राजा राजसिंहासन पर विराजमान होता है त्योंही दरबार में व्यवस्था छा जाती है। ठीक इसी प्रकार ज्योंही मनुष्य अपने ब्रह्मत्व-सहज स्वाभाविक प्रताप को स्वायत्त करता है, त्योंही सम्पूर्ण समाज में व्यवस्था और जीवन उमड़ने लगता है।

राजकुमार पाठशाला जाते समय अथवा लड़कों के साथ खेलते समय बराबर यह जानता रहता है कि वह तो राजकुमार है। इसी प्रकार हर एक मनुष्य को एक ईश्वरीय राजकुमार की भांति अपने सारे काम-काज करना चाहिए।

जब कभी हमारे शरीर का कोई अंग गड़बड़ होता है, तभी वह हमें सालता है। स्वस्थ पुरुष को कभी अपने शरीर का ध्यान नहीं रहता—वह मानो अनजान में ही उससे काम-काज किया करता है। इसी प्रकार आत्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होने पर मनुष्य सदा शरीर की चेतना से ऊपर वर्तने लगता है।

स्वामी जी पूर्णतः निर्गुण अद्वैत के भक्त थे। वे कहते हैं—केवल एक तथ्य, एक आत्मा, एक वस्तु है और वह हो तुम। इस के सिवा और कोई दर्शन शास्त्र उन्हें संतुष्ट न करता था।

राम कहते हैं—ऐ मनुष्य, तू ईश्वर है, केवल शरीर के केन्द्र में रहना भर छोड़ दे। जब शरीर-चेतना, चर्म-दृष्टि छूट जाती है तब ईश्वर-चेतना, दिव्य दृष्टि अपने आप प्राप्त हो जाती है। संसार और उसका अंधकार तो शरीर-चेतना की छाया है, वैसे तो ईश्वर-चेतना सदा मानवी आत्मा अपने आप में अपने प्रकाश से चमकती ही रहती है।

भौतिक वस्तुओं की सत्ता में अपने अंध विश्वास के चश्मे को अपनी आखों से उतार कर दूर फेंक दो और सब दिव्य रूप हो जायगा। दूसरे शब्दों में, जिन्होंने एक बार भी उस दिव्य रूप (ब्रह्म) के दर्शन कर लिये हैं, उनके लिए दुखी या रोगी होना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार दूसरों के लिए सुखी होना दुस्तर है।

त्याग, समर्पण, बलिदान जीवन का नियम है। इधर शरीर की बलि चढ़ा दो, उधर शुद्ध आत्मा के रूप में उदय हो। दूसरे शब्दों में सदाचार और समाज-सेवा का मुख्य आधार यही है कि यदि दूसरों को सुखी करना है तो स्वयं दुख उठाओ। वे कहते थे—

जो चाहते हैं कि उनकी देवता के समान पूजा हो, उन्हें अपनी क्षुद्र आत्मा का बलिदान करना होगा, क्षुद्र आत्मा (शरीरभाव) माया है, और आत्मा ब्रह्म। जिस के रोम-रोम से ईश्वर की ध्वनि निकलती है, उसकी ईश्वर-चेतना ही मनुष्य की वास्तविक आत्मा है। जो ईश्वर में रहता-सहता, और निवास करता है, वह स्वयं ईश्वर है।

एकाग्रता ही जीवन का गुह्यतम रहस्य है। जो मनुष्य, वे कहते थे, पूर्ण एकाग्रचित्त है, सच्चा त्याग उसे अपने आप प्राप्त हो जाता है।

ओम् के पवित्र मंत्र के जाप से हमें क्षुद्र आत्मा के बन्धन से छुटकारा मिल सकता है।

स्वामी राम के उपर्युक्त विचारों में महत्ता और सजीवता की दृष्टि से उनका अन्तिम विचार ही प्रथम और अन्तिम कोटि का है। वास्तव में वही उनका एकमात्र विचार, उनका सम्पूर्ण विचार, उनकी जीवन-मुक्ति के रहस्य की विशद व्याख्या है।

इन्हीं मुख्य मौलिक विचारों को समझाने के लिए राम ने जीवन के कार्य-क्षेत्र में से अनेक सुन्दर उपमाओं और अलंकारों को चुन लिया था, जिनके संकेत से बहुत से रहस्य सहज ही में खुल जाते हैं। उनके व्याख्यान ऐसी अनेक छोटी-छोटी कथाओं से भरे हुए हैं—उनमें कुछ तो सर्वथा मौलिक और कुछ दूसरे स्थानों से ली हुई हैं किन्तु उन सबको उन्होंने अपनी विशेष दुष्प्राप्य कला से सजा दिया है।

एक पिंजड़ा था, जिसमें चारों ओर शीशे ही शीशे जड़े हुए थे और पिंजड़े के बीचोंबीच एक पूर्ण विकसित गुलाब का फूल रखा हुआ था। उस पिंजड़े में एक मैना छोड़ दी गयी। उसने शीशों में चारों ओर पुष्प का प्रतिबिम्ब देखा। जिधर भी मैना की दृष्टि जाती थी, उसी ओर फूल दिखायी देता था। जितनी बार वह शीशे के फूल को पकड़ने के लिए झपटी, उतनी बार उसकी चोंच शीशे से टकराई

और वह घायल होकर नीचे गिर पड़ी। हताश ज्योंही उसने शीशे से मुंह मोड़कर नीचे की ओर देखा त्योंही पिंजड़े के केन्द्र में रखा हुआ गुलाब का पुष्प उसे मिल गया। ऐ मनुष्य! संसार ही वह पिंजड़ा है, जिस सुख का तू अपने से बाहर ढूँढ़ता है, वह स्वयं तेरे भीतर है।

ज्यों-ज्यों हम अपनी परछाईं को पकड़ने के लिए आगे दौड़ते हैं, त्यों-त्यों परछाईं दूर भागती जाती है। किन्तु जब हम सूर्याभिमुख होकर दौड़ते हैं तो परछाईं हमारा पीछा करने लगती है। यही हमारी इच्छाओं का स्वभाव है। हम जितनी अधिक इच्छा करते हैं, उनकी पूर्ति इतनी ही अधिक दुस्तर होती जाती है। जब हम ईश्वर की ओर मुँह करके इच्छा करना छोड़ बैठते हैं, त्योंही वे सब की सब पूरी होकर पीछा करने लगती हैं।

किसी फकीर के पास एक ही कम्बल था। उसे किसी ने चुरा लिया। फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी गयी चीजों की एक लम्बी सूची लिखाने लगा। उसने लिखवाया—उसकी तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पायजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत सी चीजें चोरी चली गयी हैं। सूची की इतनी लम्बी-चौड़ी रूप-रेखा सुनकर चोर क्रोध के मारे प्रकट हो गया और थानेदार के सामने कम्बल फेंककर बोला—बस, यही एक कम्बल था, इसी सड़े-गले कम्बल के बदले इसने दुनिया भर की चीजें लिखा डाली हैं। फकीर झट से अपना कम्बल उठा कर बाहर जाने को उद्यत हुआ ही था कि थानेदार ने झूठी रिपोर्ट लिखाने के कारण फकीर को ताड़ना देनी चाही। फकीर ने कहा—हां, साहब, मेरी रिपोर्ट झूठी नहीं है। देखिये, यही कम्बल मेरे लिए सब कुछ है, यही मेरी तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पायजामा, यही कोट; फिर तरह-तरह से उस कम्बल का प्रयोग करके सिद्ध कर दिखा दिया कि बेशक उसकी बात ठीक थी।

फकीरों और महात्माओं के लिये उनका एक ही ईश्वर उनके लिए सब कुछ होता है।

× × ×

जो ईंट दीवाल के योग्य होगी, वह चाहे जहाँ पड़ी हो, एक न एक दिन अवश्य उठा ली जायेगी।

× × ×

तीर को धनुष से छोड़ने के पूर्व भीतर की ओर खींचना पड़ता है और फिर एकदम छोड़ दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार तुम्हारी इच्छायें और वासनायें तुम्हारे मन से छूटने वाले तीर हैं। जब तक उनसे ऊपर न उठोगे तब तक वे पूरी नहीं हो सकतीं।

× × ×

मनुष्य अन्तःकरणों के विस्तार के अनुसार 'धातु मनुष्य' 'वनस्पति या पशु मनुष्य' होते हैं। दिव्य मनुष्य उन वृत्तों के समान हैं, जिनके केन्द्र हर स्थल पर होते हैं और जो विस्तार में एकदम सीधी रेखाएँ बन जाते हैं। धातु मनुष्य वनस्पति मनुष्य की तुलना में मृतक है। वनस्पति मनुष्य पशु मनुष्य की तुलना मृतक है। इसी प्रकार पशु मनुष्य मानवी और दिव्य मनुष्यों की तुलना में मृतक हैं। कहने का तात्पर्य यह कि नैतिक जीवन एक उत्तरोत्तर विकसित होने वाला मार्ग है, जो अन्त में पूर्ण, असंग, निःस्वार्थ भाव की सिद्धि में समाप्त होता है और वही सबकी वास्तविक आत्मा है।

× × ×

प्रार्थना को राम 'जीते-जी मृत्यु' कहा करते थे, यहाँ मनुष्य भावमग्नता की तीव्रता में शरीर के बन्दीगृह से निकलकर शरीर और मन से परे जा पहुंचता है। यदि चोर को भी यह 'जीते-जी अमर' होने की कला हाथ लग जावे तो सफलता उसके आगे भी हाथ जोड़े खड़ी रहेगी। प्रार्थना शक्ति है। 'जीते-जी मरने' की कला ही उनकी दृष्टि से व्यवहारात्मक धर्म है।

संक्षेप में, राम का संदेश है—आनन्द, शान्ति, समाधि का धर्म। स्वयं अपने अनुभवों के बल पर वे कहा करते थे कि जो कोई उस द्वन्द्वहीन चेतना की, पूर्ण एकाग्रता की अवस्था को पहुंच भर जाय, उसे सभी प्रकार की सफलता अनायास प्राप्त हो जाती है। इसके साथ ही वे बतलाते हैं कि ज्ञान-समाधि की यह अवस्था बराबर स्थिर रखी जा सकती है। वास्तव में उन्होंने साधारण मनुष्य को इसी अवस्था की गति-विधि और रहस्य समझाने का बड़ा प्रयत्न किया है। उन्होंने उसे प्राप्त किया था। यथार्थ में उनकी शिक्षा अपने ही आन्तरिक संघर्ष के वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिए एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि जो कुछ उन्होंने लिखा अथवा कहा है वही यथार्थतः उनका आत्मचरित है।

स्वामी राम तपोधन थे। उनका तप पराकष्ठा को पहुँचा हुआ था। विचार-स्वतंत्रता भी उनमें कूट-कूट कर भरी थी। किसी गुरु या उपदेशक की सहायता से हम क्या और कितना सीख सकते हैं—इस पर उनका विशेष ध्यान न था। यह विचार कभी उनके हृदय में उठा ही नहीं कि जीवात्मा और परमात्मा की आत्मीयता की सिद्धि के लिए कभी किसी दूसरे की मध्यस्थता की आवश्यकता हो सकती है, क्योंकि वे तो दो नहीं, सर्वथा एक हैं।

चौथा परिच्छेद

उनके हृदय को उत्प्रेरित करने वाली सुमधुर सुबास

अपने जीवन के मौलिक विचारों की व्याख्या के लिए उन्होंने 'अलिफ' के नाम से उर्दू में एक सामयिक पत्र निकाला, जो उर्दू, फारसी, संस्कृत, और अंग्रेजी भाषा के कवियों और पैगम्बरों के सुन्दर-सुन्दर वचनों के अपूर्व संग्रह से भरा रहता था। उन्होंने अमरीका में सैकड़ों व्याख्यान और सम्भाषण दिये, किन्तु वे थे क्या, उनकी इन्हीं मौलिक सच्चाइयों का भारतीय पुराणों और जीवन की असंख्य गाथाओं और दृष्टान्तों के रूप में सैकड़ों प्रकार से भाषान्तर मात्र। वास्तव में एक प्रकार से उनके अमरीका के अंग्रेजी व्याख्यान इसी "अलिफ" मासिक पत्र के सिद्धान्तों की सुविस्तृत आलोचना मात्र कहे जा सकते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन इसी ब्रह्मज्ञान की दीपशिखा को दिन-प्रति-दिन प्रज्ज्वलित रखने में व्यय हुआ था। निम्नलिखित उद्धरण जो उनके इसी अलिफ नामक उर्दू मासिक पत्र के पन्ने उलटते समय यों ही बिना क्रम के छांटे गये हैं और जिनका सरल हिन्दी में भावार्थ दिया जा रहा है, इस बात को दिखाने के लिए सर्वथा पर्याप्त होंगे कि उनका हृदय कितना अगाध था, उसमें कौन-कौन से कितने रत्न भरे पड़े थे, उनके विचार कितने सूक्ष्म और बारीक थे और उनका मस्तिष्क कितना प्रौढ़ और युक्ति-संगत था।

निम्नलिखित दाने तो उस गल्ले की बानगी मात्र हैं, जिसे उस आचार्य ने घोर परिश्रम के द्वारा अपने जीवन-क्षेत्र में उपजाकर अपने अन्नागार में संग्रहीत किया था।

जिसे मैं अन्धा बनकर चारों दिशाओं में ढूंढता था,
वह मेरी ही आँखों में छिपा बैठा था,
और मुझे पता न था !

—उर्दू से

हीर अपने दूल्हा राँझा की खोज में पंजाब के जंगलों की खाक छान रही थी और लो, वह उसी की छाती में बैठा गीत गा रहा था !

—पंजाबी से

बच्चे ने आँखें खोलीं, धरती और आकाश उसके लिए नये थे। उसका कोमल हाथ उसके वक्षस्थल पर जा पड़ा, उसे पता न था कि यही 'मैं' हूँ।

—टेनीसन

तू ही स्त्री, तू ही प्रियतम !
तू ही फूल और तू ही भ्रमर......

—यजुर्वेद

एंथोनी ने प्रेम में आनन्द की खोज की, ब्रूटस ने वैभव में, सीजर ने साम्राज्य में। पहले को मिला अपयश, दूसरे को घृणा और तीसरे को कृतघ्नता। और सब के सब अन्त में नष्ट हो गये।

—एनोन

मैं अपने नाखूनों से छाती फाड़ूंगा, ताकि मार्ग खुले और वहाँ रहने वाले भाग खड़े हों। तभी तो मेरे प्रियतम के साथ मेरा अकेला रहना हो सकेगा।

—फारसी से

लैला को नश्तर लगाया गया।
उसके प्यारे की नसों से खून बहने लगा।
यही प्रेम है। किन्तु इसके लिए आवश्यकता होती है इष्ट में हजार बार डूबने की।

—उर्दू से

यदि मैं उस बिचारे खुदा से अपनी नास्तिकता की बात कहूं तो वह मारे हर्ष के उछल पड़ेगा और कहेगा—इस्लाम बासी हो चुका।

---उर्दू से

कीमियागर को पारस जैसी आँखें चाहिए,
जिसे देखे, वही सोना हो जाय।

—उर्दू से

एक बार जब चिड़िया चिड़ीमार के जाल से निकल गयी फिर डर किस बात का?

उसके लिए जल और धारा, धरती और आकाश—सभी कुछ पवित्र और कल्याणकर बन गये।

—फारसी से

मेरे नेत्रों में और मेरे हृदय में—

ऐ प्यारे! तू, केवल तू ही सदा इतना अधिक छाया रहता है कि जब मैं किसी को दूर से आता देखता हूं तो ऐसा लगता है कि तू ही मिलने आ रहा है।

—फारसी से

बूंद रोने लगी और बोली—हम लोग समुद्र से कितने भिन्न हैं!

समुद्र उसकी बात पर हँसने लगा और बोला—हम सब पानी हैं!

—फारसी से

मैं हूं मोती—ऐसा विचित्र जैसा किसी ने देखा न हो।
समुद्र भी इतना बड़ा नहीं, जो मुझे अपने भीतर रख सके।
मैं हूं हरिण—ऐसा विचित्र जैसा किसी ने देखा न हो।
जंगल भी इतना बड़ा नहीं, जो मुझे रख सके।

—फारसी से

तेरा सौंदर्य, ऐ शिकारी, इतना महान् है!

और मेरी आँखों की पुतली इतनी छोटी कि वह उसमें समा नहीं सकता।

तेरे सौंदर्य के वसन्त का माली भी उलाहना देता था कि तू उसकी झोली में अटता नहीं !

—फारसी से

वायु आया और फूल को एक तमाचा जड़ दिया। लो, वही फिर रोने लगा।

——उर्दू से

वह तो है एक छोटी-सी दीपशिखा——अंगुष्ठ के बराबर, मनुष्य के अन्तःकरण में निवास करने वाली !

——यजुर्वेद से

वह स्वतंत्र है और स्वच्छन्द भी,
तभी तो बांटता है अपनी शक्ति-सुरा
सबको, सब जातियों को और सब कालों को,
प्रत्येक जाति को, प्रत्येक देश को,
मदिरा बांटने का है वह बड़ा प्रेमी——
तभी तो कोई प्रसाद से खाली रहता नहीं।
बनाने वाला और नित्य नूतन निर्माण करने वाला !
संसार है उसका खेल, उसके जादू का मण्डल,
और जादू दिखाने की नाट्यशाला !
तू ढूंढ़ता है उसे भूमण्डल में और नक्षत्रखचित आकाश में,
वह छिपा बैठा है शुद्ध पारदर्शिता में।
तू ढूंढता है उसे निर्झरों और अग्निशिखाओं में
वह तेरी शोध का शोध बना हुआ है।
वह है नक्षत्रों की धुरी,
वही है हीरे की चमक,
वह हर एक प्राणी का हृदय है।

और है हर एक मुखाकृति का भावार्थ !
उसका हृदय आकाश जैसा है——
ऊँचा और गम्भीर——सब को अपने भीतर समेटने वाला !

——इमरसन

काश, देख ले कोई चिड़िया मुझे बाग में–
तो भूल जाय अपने गुलाब को।
और भूल जाय ब्राह्मण अपने भगवान् को !
हो जायँ जो उसे दर्शन मेरे।
मैं छिपा बैठा हूं अपने शब्द में जैसे सुबास गुलाब में——
जो देखना चाहे देखे मुझे मेरे काव्य में !

फारसी—जेबुननिशा

जो चीज कभी अपनी हो सकती नहीं,
वह कभी सुख दे सकती नहीं !

—वर्डसवर्थ

कोमियागर ने खुदी को नहीं मारा,
तो और फिर क्या मारा !
पारा…………धत्
खुदी को मारने पर ही कीमियागिरी सिद्ध होती है।

—उर्दू से

तू है चाँद बादलों में छिपा हुआ,
इस शरीर के बादल से निकल, बाहर आ—
तू तो चाँद है चमकीला और सुन्दर !

—फारसी से

झूठ मिट जाता है, सत्य चलता रहता है।

—गुरु नानक

प्यारे ने मुझे अपनी प्यार भरी छाती से लगाया,
मैंने अपनी छाती उघाड़ दी और उसे अपने बाहुपाश में कस लिया,

ओह, वह तो मेरी छाती में समाया हुआ था !

—पंजाबी से

वह प्रेमी है,
वह प्रेम का आनन्द है,
वह प्रियतम है,
और सौंदर्य का सुन्दर परिधान—
वही है आमोद-प्रमोद का परम आश्चर्य ।
वही मछली,
वही मछुवा,
वही जाल और वही जलाशय,
वही जीवन,
और वही मृत्यु—सब की !

—गुरु ग्रन्थ से

प्रेम-सुरा का प्याला पीने के लिए;
पहले जीवन को भेंट चढ़ाना होगा ।
लोभी अपने को देना तो चाहता नहीं,
और बातें करता है प्रेम की ।

—हिन्दी से

यदि कभी प्यारे के केशों को छूने की इच्छा हो—
तो पहले अपने को लकड़ी की भांति उसके आरे के नीचे रख दे,
जिसे चीर-चीरकर वह तुझको कंघी बना दे !
जब तक स्वेच्छा से सुरमे की भाँति पीसे न जाओगे—
तब तक उसकी आंखों का स्पर्श कैसे हो सकेगा !
जब तक सुरा पिलाने वाला तुम्हारी मिट्टी के प्याले न बनायेगा,
तब तक तुम उसके ओंठों तक पहुँचोगे कैसे !
जब तक मोती की भांति धागे में पिरोये न जाओगे,
जब तक उसके नयनवाणों से हृदय छिद न जायगा,
तब तक उसके कान में शोभा न पाओगे ।

यदि खुशी-खुशी मेंहदी की पत्तियों की भांति पिसने के लिए तैयार नहीं—तो उसकी हथेलियों को रचने की तुम्हारी आशा झूठी है—स्वप्न मात्र।

—उर्दू से

जो अपने प्राणों की रक्षा करेगा, वह उनसे हाथ धो बैठेगा, जो प्राणों का उत्सर्ग करेगा; वह अमर हो जायगा।

—नई इंजील से

ऐ भोलेभाले ब्राह्मण ! मेरे मिलन की तैयारी कर ! आ, झटपट मेरा विवाह रचा दे। आ, मेरे हृदय के आंगन में बैठ और मेरे विवाह की तिथि और घड़ी निश्चित कर दे। ओहो, उसके साथ मेरा सम्मिलन होने वाला है।

ऐ ब्राह्मण ! मैं तो उसकी मुंह बोली हूँ,
मेरा और उसका विवाह रचा दे—
मैं तो उसकी हूं।
मेरा पाणिग्रहण करा दे।
आज मेरे विवाह का उत्सव है !

—हिन्दी से

जो पूर्णतः निष्पाप नहीं हुआ, जो आत्मस्थित नहीं है, जो आत्मसन्तुष्ट नहीं, जो शान्त नहीं, जो परमेश्वर का अपना आप नहीं, वह भला उस आनन्द को क्या जाने ! और उसके मिलने का कोई दूसरा मार्ग भी नहीं।

—सर एडविन अरनोल्ड के गीता-अनुवाद से

प्रेम का मारा मैं दवा के लिए वैद्य के पास पहुंचा,
मैंने उसे अपना छिपा हुआ दर्द कह सुनाया।
उसने कहा—
मुँह बन्द कर और अपने प्यारे के नाम के सिवा कुछ मत बोल।

मैंने पूछा—पथ्य बताओ।
उसने उत्तर दिया—अपने आप को खाया कर।
मैंने पूछा—कुपथ्य बताइये।
उत्तर मिला—दोनों लोक, इहलोक और परलोक !

—उर्दू से

जब तक मनुष्य चिन्ताओं और आमोद-प्रमोद की भावनाओं से उद्विग्न रहता है, इच्छाओं और कामनाओं का भूत उसे चैन नहीं लेने देता, तब तक बुद्धि का चमत्कार प्रकट नहीं होता, वह सांकल से जकड़ी हुई हिल-डल नहीं सकती। चिन्ताओं और कामनाओं के शान्त होने पर ही उस स्वतंत्र वायुमण्डल का जन्म होता है, जिसमें बुद्धि को खिलने का अवसर मिलता है। पंचभौतिक बन्धन कट जाने पर शुद्ध आत्मा, शुद्ध साक्षी आत्मा अपने प्रकाश में चमकने लगती है।

—शोपेनहोअर से

समुद्र जैसे नदियों को अपने भीतर समेट लेता है, वैसे ही जब मनुष्य अपनी इच्छाओं को अपने भीतर समेटता है, तभी वह शान्त हो जाता है। उसके सिवा और सब रहते हैं अशान्त।

—उपनिषद् से

तुम से मिलने की आशा में, तुम्हारा स्वागत करने के लिए,
क्या कहीं सीढ़ियों पर तुम्हारी पद-ध्वनि सुनकर,
किसी हृदय की गति तीव्र से तीव्रतर हो उठती है ?
क्या कोई मुखमण्डल खिल उठता है ?
क्या कोई तुम्हारे मुख से निकले शब्दों को सुनकर—
नूतन प्रसन्नता का अनुभव करता है ?
ऐसे जीवन से क्या लाभ—
जिससे मिलकर, अनायास मिलकर—
किसी को अच्छा न लगे,

यदि किसी को तुम्हारे सहवास की ज्योति का पता ही न चले।

परमात्मा कैसा है? वही सूक्ष्म तत्वों में जान डालता है!
वही अग्नि में जलता है!
वही सूर्य और चन्द्र में चमकता है,
तारों और नक्षत्रों को प्रकाश देता है।
जो हवा के साथ बहता है, लहरों के साथ खेलता है,
वही लोक-लोकान्तरों को भरने वाला प्रजापति है।

—वेद से

मैंने प्यारी से कहा—मैं तुझसे मिलना चाहता हूं।
उत्तर मिला—यदि ऐसी इच्छा है, तो अपने आपसे मिल।
मैंने उससे कहा—मैं तेरे पास बैठना चाहता हूं।
उत्तर मिला—यदि ऐसी इच्छा है, तो अपने पास बैठ।
मैंने उससे पूछा—मैं हूं तू और तू ही सब कुछ है।
वह मुस्करायी और बोली—तेरे ज्ञान का कल्याण हो,
यही सत्य है!

—फारसी से

साधु के विषय में, अपने हृदय के निकटतम विषय के संबन्ध में उन्होंने अपने उर्दू के अन्तिम निबन्ध "तरक्की का तमस्सुक" में इस प्रकार लिखा है :—

क्या भगवे कपड़े पहनने से कोई साधु बन जाता है? हाँ, कहीं-कहीं भगवा वस्त्रों के नीचे प्रेम में रंगा दिल भी पाया जाता है। कभी-कभी इनके भीतर राम का दीवाना, मस्ताना भी झलक मार जाता है। किन्तु हर एक मनुष्य यह जानता है कि दिव्य सौंदर्य से जगमग चेतना साधु के वस्त्रों में सीमाबद्ध नहीं। सच्ची स्वतंत्रता तो अच्छी चाल-ढाल, रंग-ढंग, कपड़ों के फैशन और रंगों की दासता पर अवलम्बित नहीं रहती। उस ऊँचाई पर जहां चढ़ने

की कल्पना से पैर कंपने लगते हैं, सर चकराने लगता है, वह ज्योति जगमगाती है, जिसके प्रकाश में योगी आगे बढ़ता है। यह सूर्य हिमालय के हिम-प्रदेश में चमकता है और हमारे शहरों की सड़कों पर भी। ज्योतिर्मय चेतना का महापुरुष बन्दीखाने में भी मिल सकता है और शरीर के घोरतम कारागृह में भी, जहां वह स्वयं अपने हाथों से बन्द होकर बैठता है। पर लो, कैदखाने की हथकड़ियां और बेड़ियां जहां की तहां पड़ी रह जाती हैं और वह उन्मुक्त होकर अनन्त में विचरण करता है। अन्धकारमय काली कोठरियों में ईश्वर का प्यारा ईश्वर के हाथ में हाथ डालकर बन्दी रहने पर भी सदा मुक्त रहता है। छहों लोकों में बराबर उसका संचरण होता है। भीड़-भाड़ के भब्बड़ में—अपनी पुस्तकों पर आंखें गड़ाने वाला विद्यार्थी सहसा एक ऐसे शब्द पर लक्ष करता है, जो लिखा नहीं जा सकता। बस, वह इधर सीमा के बन्धन से मुक्त होता है और उधर उसकी पुस्तक उसके कृपाकटाक्ष के लिए तपस्या करती है।

सैर को निकले। भाग्य से कोई परिचित साथ न था। चन्द्रिका छिटक रही थी, सांध्य वायु सरसराने लगी। सड़क पर टहलते हुए लो—यह कौन सहसा हमारे साथ हो लिया—वही एक अद्वितीय सबसे निराला, सबका प्यारा। उधर संध्या की लाली आकाश में छायी और इधर निराली मस्ती रोम-रोम में समायी।

रेलगाड़ी में बैठे थे। पहियों की खटखटाहट का खटराग-जोर-शोर से चल रहा था। डिब्बे में और कोई था नहीं! खिड़की का परदा जो गिराया तो झट से हृदय-मण्डल में वह दूल्हों का दूल्हा उतर आया। यात्री ने एक स्थान विशेष का टिकिट लिया था, पर रेल में बैठे बैठे मन और प्राण, आत्मा और अनात्मा न जाने कहां का टिकट ले गये। आनन्दमय त्याग ने—आध्यात्मिक त्याग ने, समाधि की मस्ती ने मनुष्य को चारों ओर से बेखबर कर दिया। यही सच्ची साधुता की कुञ्जी है।

भारतवर्ष के साधु इस देश की एक ऐसी अद्भुत विचित्रता है जो अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती। जैसे बंधे हुए पानी पर हरी काई छा जाती है, उसी प्रकार पूरे बावन लाख साधु अभी तक भारतवर्ष की छाती पर इकट्ठा हो चुके हैं। निस्संदेह उनमें से कुछ सुन्दरतम कमल-पुष्प हैं, झील की शोभा बढ़ाने वाले। किन्तु अधिकांश--एक विशाल समूह तो अस्वास्थ्यकर काई रूप है। पानी तो बहने दीजिये, जन-समूह में गतिशील जीवन का संचार होने दीजिये, काई अपने आप बह कर विलीन हो जायगी। ये गतिहीन साधु तो भारतीय इतिहास के अन्धकारमय अतीत के स्वाभाविक परिणाम हैं। किन्तु आजकल सर्वत्र सुधार की एक लहर दौड़ रही है, गृहस्थों की भावनाओं और रुचियों में एक उन्नतिशील परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है, फिर उससे साधु कैसे अछूते बच सकते हैं। ऐसे साधुओं का जन्म हो रहा है, जो जोंक की भांति राष्ट्रीयता के वृक्ष का रस चूसने के स्थान में और नहीं तो कम से कम अपने शरीर और मन को वृक्ष का उपयोगी खाद बनाने के लिए आतुर हो रहे हैं।

सच्ची साधुता का रहस्य बताने के बाद और अपने देश को ५२,००,००० भगवा वस्त्रधारी साधुओं के भरण-पोषण की गौरव-हीनता समझाने के बाद वे कहते हैं—

यदि कोई सच्चे साधु, फकीर महात्मा के विरुद्ध मुँह खोलने का साहस करे, तो निस्संदेह उसकी वाणी कुंठित हो जायगी।

जो हाथ किसी साधु को चोट पहुंचायगा, उसके टुकड़े हो जायंगे।

जो साधु के विरुद्ध सोचेगा, वह पागल हुए बिना नहीं रह सकता।

सच्चे साधु के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से निकालना राम के लिए असंभव है। सच्चा साधु और उसके विरुद्ध राम के मस्तिष्क

में किसी विचार का पनपना—हरि ! हरि ! यह तो राम से स्वप्न में भी संभव नहीं।

* * *

ओ दण्ड की भीति से डरने वाले अभियुक्त ! यदि तू उस समय भी जब न्यायाधीश अपने आसन से तुझे दण्डित करने वाला है, केवल एक क्षण के लिए उस परमानन्द में डूब जाय, तो न्यायाधीश अपना निर्णय भूले बिना नहीं रह सकता, फिर लिखेगा वही जो परमात्मा के साथ तेरी इस नूतन स्थिति के अनुकूल होगा।

मेरे प्यारे ! एक मात्र अपराध है, ईश्वर को भूल जाना, अपनी सच्ची आत्मा, प्राणों के प्राण, परमात्मा का विस्मरण करना !

कथा में बताया गया है कि भृगु, ब्राह्मण भृगु ने विष्णु के बायें पार्श्व में लात मारी, किसको ? धन और ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी को ! विष्णु उठे और अपने अश्रु-वारि से भृगु के चरण-कमल धोने लगे ! जो अहंकार त्याग देता है, उसे भगवान मिलते हैं।

जो अपने क्षुद्र अहम् के पीछे पागल रहता है, वह चाहे राजा ही क्यों न हो—भिखारी की भाँति दर-दर ठोकरें खाता फिरता है। यही नियति है। इस नियम का व्यवहार करना केवल भगवा वस्त्र धारी साधुओं का एक क्षत्र अधिकार नहीं है। वह तो प्रकाश है, सब के लिए है। मुसलमान, ईसाई, यहूदी, सिख, पारसी, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊँच-नीच—सब को अपने सौंदर्य के लिए सत्य के इस प्रकार की आवश्यकता है। इस सूर्य-प्रभा के बिना शीत से ठिठुरना और कांपना दूर नहीं हो सकता।

सब के लिए शिक्षित होना परमावश्यक है किन्तु सबका प्रोफेसर-आचार्य बनना आवश्यक नहीं। सच्ची आत्मा को जानना, परमात्मा को पहचानना, सुखी बनना सबके लिए परमावश्यक है किन्तु रात और दिन इस आत्मानंद में डूबे रहना कुछ थोड़े से साधुओं, सच्चे फकीरों का अधिकार है।

जिसके हृदय में चिरन्तन वसन्त की बहार छिटक रही है, उसको इन बाठ दिखाने वाली ऋतुओं के परिवर्तन से क्या ! भागता है वह अपने आप से, और खड़ा होता है उस सूर्य में, जहाँ देखता है सम्यक दृष्टि से सारी सृष्टि, सारे ब्रह्माण्ड को। सब को प्रेम करता है और सब को आशीर्वाद देता है—यही है पुण्य की पराकाष्ठा !

"अलिफ" के अन्तिन अंक में हम देखते हैं कि उन्होंने उर्दू में मुक्त छंद का प्रवेश करने की चेष्टा की थी। उन्होंने अपनी कविताओं के शीर्षक भी 'वाल्ट ह्विटमैन' के ढंग पर रखे थे। उदाहरण के लिए उन्होंने एक लम्बी कविता लिखी थी—'तुम को'। उसमें वे कहते हैं—

तुम्हीं मेरे कृष्ण हो, तुम्हीं हो मेरे राम,
जब ईश्वर को देखने की इच्छा होती है,
तब मैं देखता हूं तुम्हें।
मैं तुम्हें देखता हूं, तुम मेरे भगवान् हो।
तू और मैं के ये परदे अब तो हटा दो,
नाम-रूप के इन रंगीन परदों को फेंक दो परे,
आशा और निराशाओं से क्या प्रयोजन ?
जब ये परदे उतार-उतार कर तुझे नंगा करता हूं,
तब अपने ईश्वर के दर्शन होते है,
यदि ईश्वर की इच्छा होती है, तो मैं देखता हूं तुझे।

दूसरी कविता है बुढ़ापा—

वृद्धावस्था का जामा पहन मैं मनुष्यों की भीड़ में निर्द्वन्द्व और निडर हो घूमता हूं।

यह बुढ़ापा मेरी टोपी है, जिसे पहन मैं अदृश्य हो जाता हूं।
इस वेष में कोई मुझे पहचानता नहीं।

उनकी एक और कविता है, जिसका शीर्षक है—अंधे की आँखें

जिस चोट ने मुझ मार डाला होता, उसी ने मुझे चंगा कर दिया, मैं था बन्दी, गुलाम; पर हो गया स्वतंत्र, मुक्त, स्वच्छन्द ।

साधु ईश्वर की खोज में इधर-उधर दौड़ता है और तरह-तरह के उपाय करता है किन्तु मुझे तो वह मिल गया अपने घर आराम से बैठे बिठाये ही ।

उन्होंने एक बड़ी सुन्दर कविता लिखी है—

चन्द्रमा का भ्रष्टाचरण

यों ही निरुद्देश सैर-सपाटे के बीच,
एक संध्या को, झील के किनारे,
मुझे एक जुलाहे की झोपड़ी दिखायी पड़ी ।
और उसके पास खड़ी थी एक नवयुवती कन्या,
उसी जुलाहे की बेटी !
वायु के मन्द-मन्द झौंके आ रहे थे,
चांदी जैसी चाँदनी चारों ओर छिटकी थी,
मैंने देखा—कन्या पत्थर की मूर्ति जैसे अचल खड़ी हुई,
उसका मुख खुला हुआ,
और आँखों से चन्द्रमा के घूंट के घूंट पी रही ।
चन्द्रमा उसके नेत्र-वातायनों से जो कूदा तो,
प्रवेश कर गया उसके शुद्ध पवित्र यौवन-मन्दिर में—
और वहीं उसके हृदय के स्फटिक सरोवर में हो गया विलीन !
ऐ चन्द्र, ठहर, ठहर, चोर क्यों बनता है ?
दूसरों के घर में बिना आज्ञा प्रवेश करना—तुझे शोभा देगा क्या ?
ऐसी चोरी ! ऐ चोर, तेरा ऐसा साहस !

जलाशय में केवल तेरी छाया का निवास रहता है किन्तु कन्या के हृदय को तूने अपना घर ही बना लिया !

अरे, यह कौन सा रहस्य है जिसे वैज्ञानिक नहीं जान पाते ? जो भेद उसकी दूरबीन से नहीं खुल सकता, जिसका हल गणितज्ञ के पास भी नहीं, जिस गुत्थी को ज्योतिर्विद भी नहीं सुलझा पाते, लो, उसी रहस्य को तू एक गरीब जुलाहे की झोपड़ी में खोले बैठा है।

ऐ चन्द्र, इस तरह तेरा बिना उद्देश्य इधर-उधर घूमना तो ठीक नहीं।

तू उस छोटे से हृदय को अपना एकान्त क्रीड़ा-स्थल क्यों बनाता है ?

गरीब और निराश्रयों की झोपड़ी में इस तरह डेरा डालना क्या शोभा देता है तुझे !

यहां तक उनके जिन प्रिय वचनों और भावनाओं का उल्लेख किया गया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि आत्मा, ब्रह्म और ईश्वर—इन तीन शब्दों को वे एक ही अर्थ और भाव में प्रयुक्त करते थे—यही उनका मुख्य विषय था और यद्यपि उसकी रूप-रेखा हिन्दू वेदान्त विचारधारा के अनुसार ही निर्दिष्ट हुई थी फिर भी उन्होंने अपनी साधना के स्रोतों को स्वयं पंजाब के जीते-जागते सुमधुर जीवन-रस से सींचा था। वे पंजाब के ईश्वरानुभूति-सम्पन्न महात्माओं, बुल्लाशाह आदि और उन जैसे दूसरे कवियों के अत्यन्त भावात्मक साहित्य में डूबे रहते थे। शम्सतबरेज और मौलाना जलालुद्दीन रूमी जैसे फारसी मनीषियों की विद्युतमयी स्फूर्ति से वे प्रेरणा प्राप्त किया करते थे और इसके साथ ही, उससे भी अधिक अपने मस्तिष्क को पाश्चात्य जगत् के 'शैली', 'इमरसन', 'गेटे' और 'थोरो' आदि कवियों और विद्वानों की जीवनदायिनी और उल्लासमयी विचार-धारा से परिपुष्ट किया था। उनका मस्तिक मुख्यतः उस वेदान्त दर्शन की शैली में संवर्धित और विकसित हुआ था, जो पाश्चात्य आलोचना के प्रकाश में हमारे सामने प्रकट हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मुख्यतः 'कांट' के दर्शन को सामने रखकर वेदान्त का अध्ययन

किया था। वे दोनों के आचार्य थे। उन्होंने 'हीगल' और 'स्पीनोजा' को भी पढ़ा था। अपने वेदान्त को व्यावहारिक दैनिक साधारण जीवन के क्षेत्र में उतारने की वैज्ञानिक प्रवृति और कला का मुख्य आधार उन्हें 'डारविन' और 'हेकल' के विकासवादी साहित्य के मनन से प्राप्त हुआ था। एक हरे-भरे वृक्ष की भांति एक प्रकार से यद्यपि उन्होंने सारे संसार के साहित्य से जीवन-रस खींचा था, तथापि वे अन्ततः भारतीय दार्शनिक जगद्गुरु शंकराचार्य के मायावाद के ही परम भक्त थे।। उनके द्वारा व्यक्त किये हुए वचनों में हमें जो ऊपरी विरोधाभास दिखायी देता है, वह केवल ऊपरी है, उससे उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा और भी चमत्कृत हो उठती है। सच पूछो तो ऐसा विरोधाभास तो हमारे जीवन के मूल में ही विद्यमान है।

जीवन स्वयं अपनी अनन्त आत्मविरोधी धाराओं में होकर परम सत्य और उसके आत्मसाक्षात्कार की व्याख्या करता है। हमारी परिभाषायें—सबकी सब अपूर्ण होती है, जो हमारे सापेक्ष दृष्टि बिन्दुओं के अनुसार तथ्य की केवल बौद्धिक मीमांसा करना चाहती है। उनके द्वारा जीवन की सम्पूर्णता नहीं समझी जा सकती है। वे केवल एक स्थल विशेष, एक अत्यन्त अल्प विन्दु पर, जीवन के तथ्य स्पर्श करती हैं। अतः राम जैसे महान् कवियों के वचनों में जो विरोधाभास-सा दिखायी देता है, वह दर्शनशास्त्र के तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। वास्तव में कोई भी यथार्थ दर्शन-शास्त्र इन परस्पर विपरीत विरोधाभासों का सामंजस्य में लाने का दावा नहीं कर सकता। ऐसे महात्माओं की आत्मविरोधी विचार-धारायें स्वयं इस बात का प्रमाण हैं कि उनका आत्मसाक्षात्कार हम लोगों से कहीं ऊंचे स्तर पर चलता है। मिस ई० अण्डरहिल के शब्दों में, "यही तो उनके आध्यात्मिक अनुभव की गम्भीरता और मनोहर सामंजस्य का प्रबल प्रमाण है।"

———

पाँचवाँ परिच्छेद

उन्होंने क्या कहा ?

उनकी रचनाओं में से संकलित निम्नलिखित रत्नकण, जिनमें से कुछ उनके अंग्रेजी लेखों से लिये गये हैं और कुछ उनकी उर्दू कृतियों में से भावार्थ के रूप में उद्धृत किये हैं और कुछ उनके अमरीकन भाषणों से चुने गये हैं, हमें उनके मस्तिष्क के हरे-भरे उद्यान की सुमधुर सुगंधि से पूर्णरूपेण परिचित कराने के लिए पर्याप्त हैं। ये सचमुच उनकी दिव्य ज्ञानमयी फुलवारी के सर्वोत्तम विचार-कुसुम सिद्ध हो सकते हैं—

हृदयस्थ ईश्वर को पाने का पथ क्या है ?

अपनी ही आत्मा में ईश्वर के दर्शन का एक ही उपाय है—समस्त इच्छाओं का परित्याग। अपनी सारी इच्छाओं को तिलांजलि दो और ओम्-ओम् की ध्वनि में निवास करो।

आसक्तियों का त्याग ही पवित्रता है।

मूल्य चुकाये बिना तुम ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते, त्याग के बिना तुम्हें कदापि अपना जन्मसिद्ध अधिकार नहीं मिल सकता। "जिनका हृदय शुद्ध है, वे सचमुच धन्य हैं, उन्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।" हृदय की इस पवित्रता का अर्थ क्या है ? संसार के सभी पदार्थों के मोह से पूर्णतया मुक्त हो जाना। पूर्ण त्याग—उससे रंचमात्र भी कम नहीं। इस शुद्धता को धारण करो, तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।

अपनी स्त्री से जितना प्रेम करते हो, यदि उससे आधा ही प्रेम ईश्वर से करते, तो तुम्हें इसी क्षण उस परम सत्य के दर्शन हो जाते।

तुम्हें बन्धन में कौन डाले हुए है ? किसने तुम्हें गुलाम बना रखा है ? तुम्हारी ही इच्छाओं ने—इसमें किसी और का हाथ नहीं !

ज्योंही, जिस क्षण तुम अपनी इन इच्छाओं, वासनाओं, मोह, और रागद्वेष को परे फैंक, यहां तक कि हृदय से प्रकाश और ज्ञान की इच्छा को भी उतार कर, शांति से क्षण भर के लिए ओम् का जाप करो; बस, उसी क्षण तुम सारे बंधनों से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारे हृदय में अचल और अटल शान्ति विराजेगी, न तुम्हें अपने व्यक्तित्व का, न अपने शरीर का और न संसार के किसी पदार्थ का ध्यान रहेगा...............बस, शांति से बैठो, ओम् का जाप करो और सोचो—तुम्हारे हृदय का आधार कौन है ?

उसी का अनुभव करो और अपने ही ईश्वर-भाव में आनन्द मनाओ, अपने ही अन्तर के आनन्द का स्वाद लो, अपनी ही आत्मा के आनन्द में मग्न रहो। सब प्रकार की असाधारण इच्छाओं और अनावश्यक वासनाओं को परे फेंक दो।

सारे धर्मों का तात्पर्य केवल इतना है कि अपने आप को खोलने की चेष्टा करो, और स्वयं अपने स्वरूप की व्याख्या करो।

सभी धर्मों के अनुयायी, जब परमात्मा के सम्पर्क और सहवास में रहते हैं, तब कभी-कभी परमात्म-भाव में लीन होकर अपने आपको बिल्कुल भूल जाते हैं। ऐसे क्षणों में उनके हृदय से माया का परदा चाहे मोटा हो या पतला, क्षण भर के लिए उनकी आंखों से हट जाता है।

संसार के धर्म—'मैं उसका हूं', 'मैं तेरा हूं', और 'मैं ही तू और तू ही मैं हूं'—इन तीन श्रेणियों में विभक्त रहते हैं। परमात्मा के साथ ऐसी एकता का नाम ही धर्म है। मेरा शरीर उसका शरीर हो जाय और उसकी आत्मा मेरी आत्मा हो जाय।

अपने आपको कृष्ण की बंशी 　एक बात समझ लो और तुम्हें किसी चीज की आवश्यकता नहीं। तुम इच्छाओं और आवश्यकताओं

बना डालो । से ऊपर हो । इसका अनुभव करो और सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है ।

ओम् जपो, ओम् की ध्वनि में मग्न हो जाओ ।

कृष्ण क्यों बंशी को प्यार करते और चूमते थे, उसे क्यों उन्होंने इतना महत्व दिया था ?

बंशी का सीधा-सादा उत्तर था—मुझमें एक विशेषता है । मैंने अपने अन्तर से सारा द्रव्य निकाल कर अपने को शून्य बना लिया है ।

बस, अपनी स्वार्थपूर्ण भावनाओं, स्वार्थपूर्ण सम्बन्धों—मेरे-तेरे के विचारों को तिलांजलि दे दो, उनसे ऊपर उठो, ईश्वर से प्रेम करो, उससे उसी भांति प्रेम करो, उससे भी अधिक प्रेम करो, जैसा दुनियां के लोग अपनी प्रियतमा से प्रेम करते हैं । अपनी सच्ची आत्मा के साक्षात्कार के लिए तड़पो, व्याकुल हो उठो ।

हृदय की ऐसी अवस्था में, एक मात्र आत्मा की शांति से पूर्ण हृदय में महामंत्र ओम का जाप करो—पवित्रतम शब्द ओम् का उच्चारण करो ।

× × ×

कोई गलती करो, कोई शैतानी करो, अपने मन में किसी भी बुरे विचार को स्थान दो, कोई भी बुरा काम करो, इन पापों को एक ऐसे स्थान में करो, जहां तुम्हें पूरा-पूरा निश्चय हो कि कोई तुम्हें पकड़ नहीं सकता, कोई तुम्हारा पता नहीं पा सकता, हजार उपाय करो, पर तुम्हें अवश्य दुख और यातना भोगना पड़ेगी, अवश्यमेव दण्ड मिलेगा ।

पाप का परिणाम है मृत्यु । एकान्त से एकान्त गुफा में कोई पाप करो और दूसरे ही क्षण तुम यह देखकर चकित होगे कि तुम्हारे ही पैरों तले की घास खड़ी होकर तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देती है । तुम्हारे देखते ही देखते, आस-पास की दीवालें और पेड़ तुम्हारे

विरुद्ध वाचाल हो उठेंगे। धर्म का विधान है कि तुम्हें पवित्र रहना होगा। किसी अपवित्रता को मन में पालोगे तो उसका बुरा परिणाम भोगने से बच नहीं सकते, त्रिकाल में भी नहीं बच सकते।

स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है।

× × ×

ओम् ओम् उनका मंत्र ! यूरोप और अमरीका-वासी तब तक किसी ऐसी बात को स्वीकार नहीं करना चाहते, जब तक उनकी बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर लेती। हम चाहे संसार के तर्क-शास्त्र के द्वारा इस मंत्र के गुणों को सिद्ध न कर सकें, फिर भी हम उसके उस अमोघ प्रभाव को अस्वीकार नहीं कर सकते, जो इसके यथोचित गायन के द्वारा मनुष्य के चरित्र पर पड़ता है।

हिन्दुओं के धर्म-ग्रंथों का सम्पूर्ण ज्ञान उनके रचयिताओं ने उस समय प्राप्त किया था, जब वे इस मंत्र के मधुर गुन्जन के द्वारा आनन्द-सागर में डूबे हुए थे।

वेदान्तमात्र, नहीं-नहीं, हिंदुओं के सभी दर्शन-शास्त्र केवल इसी महामंत्र ओ३म् की व्याख्या मात्र हैं।

ओम् में जादू है, प्रभाव है, ऐसा गुण है, जो उसका जाप करने वाले साधक का मन तुरन्त एकाग्र और वश में कर देता है। उसके गायन से हमारी भावनायें, हमारे विचार एक सामंजस्य-पूर्ण स्थिति में पहुँच जाते हैं, उसके द्वारा आत्मा को शांति और विश्रान्ति मिलती है, हृदय उस दशा में पहुँच जाता है, जहां ईश्वर के साथ तदात्मीयता होती है······विज्ञान भले ही इस रहस्य का पता न लगा सके किन्तु यह एक तथ्य है जो प्रयोग के द्वारा सिद्ध हो सकता है। वह विज्ञान नरक में पड़ेगा जो इस महामंत्र ओम् के प्रभाव की सच्चाई का विरोध करता है।

'मैं' के लोप होने पर दिव्य जब मन से द्वैत उड़ जाता है, जब दृश्य-चेतना शान्त होती है, तब दिव्य प्रेरणा की घड़ी आ पहुँचती है।

प्रेरणा के दर्शन होते हैं। जब टेनीसन लार्ड टेनीसन की चेतना और भावना से ऊपर उठ जाता है, तब उस समय वह बन जाता है कवि टेनीसन। जब बार्कले से अध्यक्ष बनने का भाव, बिशप की पदवी पर बैठने का भाव दूर होता था तभी वह दार्शनिक बार्कले बनता था। जब हमसे कोई महत्वपूर्ण और अद्भुत काम बन पड़ता है तो उसके कर्त्ता बनने का यश लेना मूर्खता है, क्योंकि जिस समय कार्य का सम्पादन होता है, उस समय इस यश-लोलुप अहंभाव का कहीं पता नहीं रहता। उसकी उपस्थिति से तो सदैव कार्य का सौंदर्य नष्ट होता है।

वास्तविक आत्मा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति है। वही एकमात्र अटल तथ्य है। उसके सामने दुनियां की इस दिखावटी सच्चाई का कहीं पता नहीं चलता।

ओ३म् इसी सत् का नाम है।

ओम् की महिमा ओ३म् का भावार्थ ग्रहण करो और उसे भावना की भाषा में गाओ, उसे अपनी क्रियाओं में उतारो, अपने शरीर के रोम-रोम से उसे गाओ। वह तुम्हारी धमनियों में दौड़ने लगे। तुम्हारे शरीर के प्रत्येक अंग से, तुम्हारे रक्त के हर एक बिन्दु से सत्य की यह झंकार उठे कि तुम प्रकाशों के प्रकाश, सूर्यों के सूर्य, ब्रह्माण्ड के शासक, स्वामियों के स्वामी, स्वयं सत्यस्वरूप हो।

ओ३म् के अ उ म् को व्यक्त करता है—तत्त्वमसि। ओ३म् आत्मा के सत्स्वरूप को व्यक्त करता है।

जो मनुष्य इन तीन प्रकारों से ओम् की आराधना करता है, पहले ओंठों से गाता है, फिर हृदय से उसका रस लेता है, और अन्त में अपने कार्यों में भी उसी की ध्वनि गुँजाता है—तो उसका जीवन एक चिरन्तन संगीत बन जाता है। वह तो सबके लिए ईश्वर रूप बन जाता है। किन्तु यदि तुम उसे हृदय से नहीं गा सकते, यदि उसे अपनी क्रिया से नहीं गा सकते, तो [illegible] उसे ओंठों से

बराबर गाते रहो। यह भी किसी प्रकार व्यर्थ नहीं जायगा। यदि तुम निरन्तर ओंठों से ही उसे गाते रहोगे तो स्वभावतः धीरे-धीरे भावनाओं और क्रियाओं से भी उसका गीत प्रारम्भ हो जायगा।

मन को उन दिव्य लोकों के स्तर पर उठाने का उपाय क्या है? आत्मा को भगवान् के सिंहासन तक ऊँचे उठाने का साधन क्या है? जब प्रातःकालीन अथवा सांध्यकालीन सूर्य का मधुर प्रकाश अर्द्ध निमीलित नेत्रों के पारदर्शक पलकों पर पड़ने लगे तब हमें ओम् मंत्र का गान प्रारम्भ करना चाहिए, फिर धीरे-धीरे हृदय की भाषा में भी उसका गायन होने लगेगा।

मैं हूँ वह अज्ञात आत्मा, जो लोक-लोकान्तरों का निर्माता है।
मैं अग्नि में हूँ, मैं ही सूर्य-चन्द्र, नक्षत्रों और ग्रहों में चमकता हूँ।
मैं हवा में बहता और लहरों में ढुलकता हूं।
मैं ही पुरुष, मैं ही स्त्री, मैं ही युवक और मैं ही युवती,
नवजात शिशु में हूं और डंडे के बल पर चलने
वाला झुर्रियों भरा बुड्ढा भी मैं हूं।
जो कुछ है, वह सब कुछ मैं हूं—
कृष्ण भ्रमर, सिंह और मत्स्य!

लाल आँखों वाली हरी चिड़िया और हरियाली के बीच में हरा-भरा पेड़!

बिजली को गर्भ में धारण करने वाला बादल, ऋतुयें और समुद्र!

मुझ में, मुझ में, मुझ में वे हैं, थे और रहेंगे।

—सर एडबिन अरनोल्ड के गीता-अनुवाद से।

माया और मायापति में से एक ही मिलेगा।

ऐ अमरीका के और सारे संसार के रहने वालो! सच्चाई तो यह है कि तुम माया और माया-पति, दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकते। तुम एक साथ दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकते। तुम दुनिया

का मजा भी लूटो और आत्मसाक्षात्कार भी करो, यह नहीं हो सकता।

तुम इधर सांसारिक सुखों का भी उपयोग करो, छोटी-छोटी सांसारिक विषयवासनाओं, विषयानन्द और भोग-विलास के चक्कर में पड़े रहो और उधर अपने ब्रह्मत्व का भी दावा करो—यह हो नहीं सकता, यह हो नहीं सकता।

प्यारे सज्जनो ! जब तक तुम्हें किसी वस्तु में भद्दापन दिखायी देता रहेगा, तब तक तुम उसे प्यार नहीं कर सकते। प्रेम का अर्थ है सौंदर्य की अनुभूति।

अंधकार से लड़कर अँधेरा दूर नहीं होगा। प्रकाश लाओ, अंधकार काफूर हो जायगा।

उलाहना व्यर्थ है। इस प्रकार की निन्दनीय आलोचना, नैराश्यपूर्ण और उत्साह भंग करने वाली पद्धति से काम नहीं बनेगा। जो बात आवश्यक है, वह तो है सुधारात्मक, आल्हादकारक, आशाजनक, प्रेम एवं उत्साहभरे स्वभाव की। सब से श्रेष्ठ आलोचना वह होती है जो मनुष्य को भीतर से उस बात का अनुभव करा देती है, जो तुम उस पर ऊपर से लादना चाहते हो। यह सब तू-तू-मैं-मैं बिल्कुल व्यर्थ और पागलपन सूचक है—इस कमल में गुलाब की खुशबू क्यों नहीं और इस गुलाब में कमल का सौंदर्य क्यों नहीं ?

प्रेम का विधान ! मेरे लिए तो जीवन की सभी बातें अंगूर जैसी हैं, सबसे मीठी सुरा निकाल लेना मेरा काम है। जोजेफ ने अपने क्षमा मांगने वाले भाइयों से कैसी सुन्दर बात कही थी—भाइयो, तुमने कब मुझे कुएं में फेंका था, फेंकने वाला तो था भगवान का विधान, जो मुझे मिश्र में यश दिलाना चाहता था—उसे अपने काम में मेरे ही भाइयों से बढ़कर और कौन सहायक मिल सकते थे ! "तुम पाप के विषय में क्यों इतना अधिक सोचते-विचारते हो ? यदि प्रेम

भगवान् के विधान को भंग करता है तो उससे विधान की पूर्ति भी होती है। प्रेम मात्र ही ईश्वर का सर्वोपरि नियम है। प्रेम से अधिकार करना स्वर्गीय है और अन्य नियमों से वही बात अन्याय-मूलक हो जाती है।

दिव्य प्रेरणा प्राप्त कराना ईश्वर का काम है, क्षुद्र आत्मा से ऊपर उठो।

जब कभी हम पूरी तरह रँझ कर तृप्त हो जाते हैं, जब मन एक ही विचार से भर जाता है, जब सारा जीवन एक ही विचार में ऐसा तल्लीन हो जाता है कि अन्य किसी की सुधि ही नहीं रहती, तब झट से हमारा जीवन रूपी बाजा वह सर्वश्रेष्ठ गायक, ईश्वर-परमात्मा अपने हाथ में उठा लेता है और फिर उस बाजे से एक से एक मधुर, एक से एक सुन्दर, एक से एक उत्कृष्ट स्वर फूट निकलते हैं। दिव्य संगीत के मधुरतम स्वर उस बाजे से निकलते हैं। पर जितनी देर तक साधक बाजे को अपने हाथों में लिये रहता है और उस महान् गायक को बाजा बजाने का अवसर प्रदान नहीं करता, जब तक यह क्षुद्र आत्मा, यह मिथ्या अहंकार, यह झूठी आत्मा जो भोगने वाली आत्मा है, हमारी चेतना में विद्य-मान रहती है, जब तक वह इस शरीर को पकड़े रहती है, उसे अपने हाथों से छोड़ती नहीं, तब तक इस संगीतहीन शरीर के बाजे से केवल कर्णकटु और बेमेल स्वर ही निकलते हैं और निकलेंगे।

प्रेरणा देना ईश्वर का काम है। ज्योंही क्षुद्र आत्मा इस शरीर पर से अपना अधिकार हटा लेती है त्योंही मनुष्य उत्प्रेरित होने लगता है।

—अमरीका में राम के वार्तालाप से

एक दूसरे स्थल पर ईसा मसीह के जीवन की चर्चा करते हुए राम कहते हैं—

उनके अध्ययन के अनुसार ईसा कैसे?

वह एक शुद्ध-हृदय सीधा-सादा मनुष्य था—सो अपने जीवन के प्रथम तीस वर्षों में वह

के जीवन में दिव्य प्रेरणा का ज्वार-भाटा कब और कैसे आया ?

लोहे के छोटे से टुकड़े के समान रहा, उसे किसी ने जाना नहीं। वह एक बढ़ई का बेटा, अत्यन्त दरिद्री था–किसी अज्ञात मां का बच्चा, जिसे लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे। अब इस लोहे के टुकड़े ने अपना सम्बन्ध चुम्बक रूपी सच्ची आत्मा, शुद्ध अहम्, आकर्षण के के केन्द्र के साथ जोड़ा। वह ईश्वर से सम्बन्धित हो गया—ईश्वर से, सत्य से, शक्ति से, आत्म-साक्षात्कार से। और फल क्या हुआ ? यह लोहे का टुकड़ा भी चुम्बक बन गया, लोग उसकी ओर खिचने लगे। शिष्य वर्ग और अन्य लोग उसकी ओर खिचने लगे। स्वभावतः उन्होंने उसके आगे सिर झुकाया। परन्तु जीवन के अन्तिम भाग में फिर एक ऐसा समय आया, जब कि ईसा मसीह का सम्बन्ध, जिसे यहां लोहे के टुकड़े रूप में दर्शाया गया है, उस चुम्बक से विच्छिन्न हो गया। फलस्वरूप उसकी आत्मा की क्या गति हुई ? जितने भी लोहे के अन्य टुकड़े उससे जुड़े थे, एक-एक करके हटते गये, शिष्यों ने उसे छोड़ दिया। जेरूसलम के वही मनुष्य, जो पहले उसे प्यार करते और उसकी पूजा करते थे, जो पहले उसका राजाओं जैसा स्वागत करते थे, जो उसके आदर में नगरों को सजाते थे, सब के सब उसे छोड़ गये। उसकी शक्ति चली गयी थी, उसमें से चुम्बक के गुणों का लोप हो गया था। जब उसके शिष्यों ने उसे छोड़ दिया, उसके मुख्य ग्यारह शिष्यों ने भी उसे छोड़ा तो लोग उससे इतने विमुख हुए कि उन्होंने उससे बदला लेने का निश्चय किया। यहां तक कि उन्होंने उसका वध करने की घोषणा कर दी। यह वह समय था जब ईसा ने कहा—हे पिता, तू ने क्यों मुझे त्याग दिया है ? इससे प्रतीत होता है कि उसका संबंध विच्छेद हो गया था। सोचो, तुम्हें ईसा के जीवन से क्या शिक्षा मिलती है ? केवल यही कि शक्ति मात्र, ईसा का सारा बड़प्पन, वास्तविक शक्ति, महान् चुम्बक के सम्पर्क के कारण थी। जब तक ईसा का स्थूल शरीर उस सच्ची आत्मा से जुड़ा था, उसका शरीर भी

चुम्बक बना हुआ था किन्तु अब वह शरीर सच्ची आत्मा, चुम्बक से कटकर पृथक् हो गयी तो उसकी शक्ति जाती रही, शिष्यों ने साथ छोड़ दिया। पर मृत्यु के पहले ईसा ने फिर आत्मा से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यह तो तुम्हें ज्ञात है कि फांसी पर लटकाये जाने पर भी ईसा मरा नहीं। ऐसा हो सकता है और सिद्ध किया जा सकता है। वह उस स्थिति में था, जिसे समाधि कहते हैं। उस दशा में प्राण-वायु की गति भी रुक जाती है। नाड़ियां चलती नहीं, ऊपरी दृष्टि से धमनियों में रक्त की गति भी रुक जाती है। प्रत्यक्ष में जीवन के सभी चिन्ह नष्ट हो जाते हैं और शरीर एकदम मृतप्राय हो जाता है।

—अमरीका में उनकी बातचीत से

सच्चा बलशाली कौन ? गेलीली की संध्या में प्रभु ने उनको (शिष्यों को) मेहनत करते हुए, पानी काटते हुए, खींचते हुए, जल्दी-जल्दी नाव खेते हुए देखा, क्योंकि हवा का रुख प्रतिकूल दिखायी देता था। किन्तु स्वामी था बिल्कुल निश्चिन्त ! न कोई श्रम, न कोई खेना ! तूफानों के बीच में भला उस मनुष्य को सुख की नींद क्यों न आवे, जो पानी के ऊपर चलने की कला जानता हो।

× × ×

प्रेम ही प्रेरणा ! पैगम्बर, कवि, अन्वेषक, आविष्कारक, कला और विज्ञान के आचार्य, दर्शन शास्त्र के विचारक, तत्वदर्शी महात्मा, जिन्हें भी दिव्य प्रेरणा प्राप्त हुई है, केवल प्रेम के ऋणी हैं। हां, किसी उदाहरण में यह प्रेम अन्य उदाहरणों से अधिक स्पष्ट होता है। कृष्ण, चैतन्य, ईसा, तुलसीदास, शेक्सपियर, और रामकृष्ण, सबके सब उत्प्रेरित थे, क्योंकि वे प्रेम के पागलपन में मस्त रहते थे।

प्रेम जिसमें विषय-वासना की गंध नहीं, आध्यात्मिक प्रकाश का ही दूसरा नाम है।

प्रेम ही उत्कृष्ट आनन्द है। कितना भाग्यवान् है वह मनुष्य जिसकी सम्पत्ति चुरा ली गई हो। तिगुना भाग्यवान् है वह जिसकी स्त्री भाग गई हो—हां, इनकी भाग्यशालीनता में एक शर्त है कि यदि

इन कारणों से वे सीधे प्रेम रूप भगवान् के सम्पर्क में पहुंचे हों।

प्यारे पाठक ! क्या कभी तेरा ऐसा सौभाग्य हुआ है कि तू प्रेम में डूब गया हो, डूब नहीं, अरे, प्रेम से ऊपर, ऊपर उठ गया हो, प्रेम, निष्काम प्रेम—जहाँ अपना कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ! यदि हुआ हो तेरा ऐसा सौभाग्य ! तब सचमुच तू आत्मसमर्पण के भाव का मर्म समझ सकेगा—

ऐ प्रभु, ले लो मेरा यह जीवन,
और उसे चढ़ जाने दो अपनी भेंट !
ऐ प्यारे, मेरा हृदय ले लो,
और उसे भर जाने दो आकंठ अपने प्रेम से !
ऐ ईश्वर, मेरी आंखें, ले लो मेरी आंखें
और उन्हें मस्त कर दो अपनी छवि से !
ऐ परम सत्य ! ले लो मेरे ये हाथ,
और उन्हें पसीना-पसीना होने दो—
अपनी सेवा में।

आत्मज्ञानी को संसार सुन्दर हो उठता है। जब परमात्म-दृष्टि से अवलोकन किया जाता है तब संसार में चारों ओर **आनन्द ही आनन्द, सौंदर्य ही सौंदर्य,** कल्याण ही कल्याण का प्रसार और बाढ़ दिखायी देती है। जब दृष्टि की ससीमता जाती रही तब असुन्दर कुछ रह नहीं सकता। जब सब कुछ अपना ही रूप है, तब सब है माधुर्य ही माधुर्य, चाहे विकसित, चाहे संकुचित। आत्मा आनन्द रूप है, इसलिए आत्मसाक्षात्कार होने पर संसार की सारी वस्तुयें उसी आनन्द के चमकीले कण जैसी मालूम होती हैं, प्राकृतिक शक्तियाँ ज्ञानी के हाथ-पैरों की भांति काम करने लगती हैं। ब्रह्मांड को वह स्वयं अपनी ही आत्मा का मधुरतम स्थूल शरीर मानने लगता है।

पवित्रता। सच्ची पवित्रता वह है, जहां सारा सौंदर्य मेरे ही स्वरूप में समा जाता है। मैं सब के साथ अपनी आध्यात्मिक एकता यहां

तक अनुभव करता हूं, उसमें इतना अधिक रस लेता हूं कि किसी से मिलने की बात करना, किसी वस्तु को पाने का विचार करना, वियोग-जनित पीड़ा का संकेत बन जाता है। सूर्य-चन्द्र-तारे, नदी और पर्वत—सब कुछ बन जाती हैं उसी प्यारे की झांकियां !

× × ×

आत्मा की एकता । संसार भर में चाहे जहाँ जाइए, बच्चों का एक सार्वभौमिक व्यावहारिक धर्म होता है, जो प्रेम, खेल-कूद और हृदय की पवित्रता से बनता है। बच्चों में ऐसी एकता कहां से आती है ? प्रत्येक बच्चा अपनी प्यारी और मीठी आत्मा के प्रति सच्चा होता है।

आनन्द की खोज तत्वरूप में आनन्द की खोज करना ही यथार्थ **ही धर्म** है। धर्म है किन्तु इसे प्राप्त करने के अनेक प्रकार हैं। एक वह, जैसे दरबार की झांकी के लिए कोई गंदी नाली में मुंह डाले। बिजली की क्षणिक चमक में प्रकाश का वही स्वरूप विद्यमान है जो मध्याह्न सूर्य की प्रभा में होता है। परन्तु गंदी नाली में होकर आनन्द की वह बिजली जैसी चमक देखना लाभ के बदले हानि करता है।

बाइबिल में लिखा है कि फरीसी शुद्ध आचरण वाले थे। उनके काम धर्म-संगत होते थे किन्तु उनमें दयालुता, कोमलता और प्रेम की बड़ी न्यूनता थी। उल्टे उनमें दूसरों की निन्दा करने, दूसरों के दोष देखने की प्रवृत्ति थी। फल यह हुआ कि ये शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति ईसा मसीह से दूर रहे और मेरीमेगडलीन जैसी एक पतिता स्त्री जिसका चरित्र शुद्ध नहीं था, ईसा के समीप पहुँच गयी। यह सब कैसे हुआ ? क्योंकि उसमें वह दूसरों की निन्दा करने वाली, दोष देखने वाली, छिद्रान्वेषण करने की प्रवृत्ति न थी। वह सचमुच प्रेमशीला थी, इसीलिए वह सत्य के समीप पहुंची। शुद्ध आचरण वाले फरासियों की अपेक्षा वह स्वर्ग के साम्राज्य के अधिक निकट पहुंच गयी।

इच्छायें आत्मा के टुकड़े कर डालती हैं।

इसी क्षण यदि तुम अपने को सारी इच्छाओं से मुक्त कर लो, यदि तुम्हारा हृदय एकदम इच्छाओं से शून्य हो जाय तो तुम जान सकोगे कि तुम्हारी हर एक इच्छा तुम्हारा एक हिस्सा काट लेती है। हर एक इच्छा के बाद तुम अपनी एक भिन्न-मात्र रह जाते हो। बड़े भाग्य से कहीं हमें पूर्ण मनुष्य दिखायी देता है। ऐसा पूर्ण व्यक्ति ईश्वर से उत्प्रेरित रहता है, पूर्णता ही सत्यता है। हर एक इच्छा से, हर एक लालसा से, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भण्डार में वृद्धि हो रही हो किन्तु यथार्थ में वह तुम्हें तुम्हारा एक क्षुद्र अंश बना डालती है। तुम इन इच्छाओं, लालसाओं, राग और द्वेषों को, आसक्तियों को उतार फेंको—यहाँ तक कि प्रकाश और ज्ञान की इच्छा को भी पास मत फटकने दो, क्षण भर के लिए ओ३म् का गायन करो। बस, तुम परम स्वतंत्र, परम कल्याणमय, आनन्दमय और आनन्दस्वरूप हो।

मन को चोट मारकर ऊपर उठाओ।

भारतवर्ष में लड़के एक खेल खेलते हैं, जिसका नाम है गुल्ली डंडा। एक छोटा सा लकड़ी का टुकड़ा बीच में मोटा और दोनों किनारों पर नुकीला, गुल्ली कहलाता है। धरती पर रखने से उसके दोनों सिरे उठे रहते हैं। जब बच्चे डंडे से उस पर चोट मारते हैं तो गुल्ली थोड़ी सी ऊपर उठ जाती है और फिर इसी दशा में उस पर चोट मारी जाती है तो वह बड़ी दूर तक हवा में भनभनाती हुई चली जाती है। इस खेल के दो भाग हैं, एक पहले गुल्ली को ऊपर उठाना और दूसरा, उसे हवा में दूर तक उड़ाना। यदि हमें अपने मन को ईश्वर के सान्निध्य में पहुंचाना है तो हमें सबसे पहले उसे थोड़ा-सा ऊपर उठाना चाहिए और फिर दुबारा चोट मार कर उसे आध्यात्मिक वायुमण्डल में ऊपर उड़ा देना चाहिए।

मस्त आदमी का काम।

'कुछ करना नहीं है, फिर भी हम काम में जुटे रहते हैं।' इसी एक वाक्य में वेदान्त की शिक्षा भरी

हुई है। ऐ शुभ कर्मयोगिन् ! सफलता की खोज बन्द करो, सफलता स्वयं तुम्हें खोजती फिरेगी।

सत्य की रक्षा । ईसा ने केवल ग्यारह शिष्यों को उपदेश दिया था किन्तु वायुमण्डल ने उसे संचित किया, आकाश ने उसे अपने हृदय में संजो लिया। वही शब्द आज लाखों-करोड़ों व्यक्तियों द्वारा पढ़े और सुने जाते हैं। सत्य मिट्टी में मिल-मिल कर फिर उदय होता है।

बुराई करने से आत्मा की हानि होती है । इस बात को सदा ध्यान में रखो कि यदि तुम ईर्ष्या-द्वेष, आलोचना-प्रत्यालोचना, छिद्रान्वेषण के कुतर्क अथवा इन्हीं कुभावनाओं से मिलते-जुलते विचार किसी दूसरे के प्रति भेजते हो तो मानों तुम वही विचार अपने ऊपर बुलाते हो। जहां तुम अपने भाई की आँख में तिल ढूंढ़ते हो, वहीं तुम्हारी आंख में टेंट निकल आती है।

दृश्य के पीछे विद्यमान शक्ति में लीन होना ही धर्म है । रणक्षेत्र में किसी योद्धा को लड़ते हुए देखो। अपनी शक्ति—अतिशय शक्ति के मद से वह पागल हुआ जा रहा है। सैंकड़ों को अपने सामने कुछ गिनता ही नहीं। वास्तव में उसे अपने तन-बदन की भी सुध नहीं। न शरीर का ध्यान है, न मन का। संसार की भी कुछ खबर नहीं। जोश का पुतला बना हुआ है, उसके रोम-रोम से एक ही ध्वनि निकलती है। शरीर, मन और सारे संसार के पीछे जो महत्तम आत्मा है, मानो वह उसी में डूबा हुआ है। दर्शक देखते हैं उसका अटल साहस और भव्य वीरोचित शक्ति। किन्तु वह है क्या, उस अज्ञात की इस ज्ञात दृश्य जगत् में बिजली जैसी चमक। स्वयं उस योद्धा के दृष्टि-कोण से उसका यह दुर्दमनीय शौर्य ही अज्ञाततः धर्म का सच्चा अनुशीलन है। उसका परदे के पीछे विद्यमान शक्ति में तल्लीन होना ही सच्चा धर्म है।

अंग्रेजी में एक शब्द है 'ecstasy'। इसका अर्थ है आनन्द; और रूढ़ार्थ है बाहर खड़े होना। यह वास्तव में सुन्दर शब्द है। क्योंकि यह संकेत करता है कि चाहे जो दशा हो, चाहे जैसी विकट परिस्थिति का सामना हो, आनन्द सदा शरीर, मन, और संसार के बाहर खड़े होने से ही प्राप्त होता है। यदि हम अपने ही अनुभवों को ध्यान से देखें तो हमें ज्ञात हो जायगा कि हमें सच्चा आनन्द तभी मिलता है, जब हम थोड़ी देर के लिए ही सही, द्वैत के द्वन्द्व से मुक्त हो जाते हैं, जब चिरभिलषित पदार्थ और भिखारी (चाहने वाली आत्मा) मिलकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार आनन्द के वास्तविक स्वरूप से ही हमें धर्म की शिक्षा मिल जाती है।

आत्म विश्वास। यदि कोई एक शब्द में मुझ से मेरे दर्शन शास्त्र का मर्म पूछे तो मैं कहूंगा—आत्म-विश्वास और आत्म-ज्ञान।

आत्म-सम्मान। आत्म-सम्मान क्या है ? जब तुम परमात्म-चेतना से भर जाते हो, जब तुम हृदयस्थ परमात्मा के विचार में तल्लीन रहते हो तभी तुम अपनी आत्मा का सच्चा आदर कर सकते हो। शरीर की पूजा करके तुम स्वयं आत्मघात करते हो, मानों स्वयं अपनी कब्र खोदते हो।

जीवन-मृत्यु। मोक्ष का मार्ग, साक्षात्कार का पथ प्रत्यक्ष मृत्यु में होकर चलता है। उसके सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं। आत्म-बलिदान, इसके सिवा दिव्य प्रेरणा-प्राप्ति का दूसरा उपाय नहीं।

भगवान् बनो। अपने को ईश्वर के हाथ में सौंप दो, फिर तुम्हारे लिए कोई कर्त्तव्य न रह जायगा। ऐसा करो कि ईश्वर तुम्हारे भीतर से चमकने लगे, भीतर-बाहर झलक मारने लगे। ईश्वर में रहो, ईश्वर को खाओ, ईश्वर को पियो। सत्य का अनुभव करो। अन्य सब काम अपने आप होते रहेंगे।

सादा जीवन, उच्च विचार। अपने आप को बड़ा और भला बनाने की कोशिश करो। अपनी क्रिया-शक्ति इधर-उधर मत बिखराओ,

बाहर सुन्दर और भव्य भवन बनाने के विचार में समय नष्ट मत करो। बहुत से मकान विशाल और भव्य होते हैं किन्तु उनमें रहने वाले बहुत छोटे देखे जाते हैं। भारतवर्ष में बड़े-बड़े मकबरे हैं, किन्तु उनमें है क्या ? सड़ी-गली हड्डियाँ, कीड़े-मकोड़े अथवा सांप-बिच्छू।

अपनी स्त्री को, अपने मित्रों को, अपने आपको सुन्दर बनाने में समय नष्ट मत करो। बड़े-बड़े मकान बनाने में, तरह-तरह का सामान जुटाने में क्यों शक्ति नष्ट करते हो ? यदि तुम्हारे हृदय में यह बात घर कर जाय, यदि तुम यह समझ जाओ, यह जान लो कि जीवन का एकमात्र उद्देश्य, एकमात्र ध्येय संसार की दौलत जुटाने में शक्ति का अपव्यय करना नहीं, वरन् अपनी अन्तरंग शक्तियों का विकास करना, अपने को शिक्षित करना, बन्धन-मुक्त करना, स्वयं ईश्वर बन जाना है। यदि तुम यह बात हृदयंगम कर लो, और उस दिशा में अपनी शक्ति लगाओ तो पारिवारिक सम्बन्ध—तुम्हारे मार्ग में कभी कोई रुकावट नहीं डाल सकते।

कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक दूसरे की धन-सम्पत्ति लूट लेना चाहते हैं, संसार धन के पीछे पागल है, और जब उससे भी श्रेष्ठ धन (आध्यात्मिक और धार्मिक सम्पत्ति) उन्हें भेट किया जाता है तो वे दाता को मारने दौड़ते हैं।

× × ×

मित्रों और सम्बन्धियों को हमारे लिए पारदर्शक होना चाहिए। हम उनके भीतर देख सकें, न कि वे परदे और किबाड़ का काम करें। उन्हें तो कांच की खिड़की जैसा होना चाहिए, जिससे प्रकाश के आपने-जाने में कोई बाधा न हो। नहीं, उन्हें तो चश्मों या दूरबीन अथवा खुर्दबीन की भांति हमारा सहायक होना चाहिए।

रस्सी पर नाचने वाला नट पहले अकेला और एकाकी ही रस्सी पर चढ़ने का अभ्यास करता है। परन्तु जब अभ्यास खूब बढ़

जाता है तो वह अपने साथ किसी छोटे बच्चे अथवा किसी भारी पदार्थ को लेकर रस्सी पर नाचना प्रारम्भ कर देता है। इसी प्रकार पहले एकाकी जीवन बिताकर और उसमें पूर्णता प्राप्त करने के बाद मनुष्य दूसरों को भी अपने साहचर्य में ले सकता है।

मनुष्य को व्यसनों पर विजय प्राप्त करनी होगी या मरना होगा। किसी ऐसे मनुष्य की कल्पना असम्भव है, जो सदा पेट का गुलाम और कामुकता का दास बना रहे—एक चलता-फिरता पेट हाथ-पैर एवं अन्य इन्द्रियों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान में डोलने वाला और अपनी संग्रह-वृत्ति के पागलपन में मस्त रहने वाला ! प्रकृति उसे मार-मार कर ऊपर उठायगी।

पुस्तकों को पढ़ना और सभी प्रकार की विद्या प्राप्त करना एक बात है और सत्य की प्राप्ति करना दूसरी बात है। तुम सभी धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन कर डालो, फिर भी तुम सत्य से अपरिचित रह सकते हो।

मृत्यु यह नहीं पूछती—तुम्हारे पास क्या है ? किन्तु यह कि तुम हो क्या ? जीवन का प्रश्न यह नहीं है–मेरे पास क्या है ? किन्तु मैं हूं क्या ?

'थोरो' आभूषणों की अपेक्षा अवकाश को अधिक पसंद करता था।

पाने की अपेक्षा देना अच्छा सौदा है।

प्रेम यदि आत्मा की स्वतंत्रता में बाधक है तो वह रोग के सिवा और कुछ भी नहीं। उसको अपने वश में करलो और प्रगति के सारे अद्भुत व्यापार तुम्हारी मुट्ठी में आ जायंगे।

ऐसा करो कि इच्छा और प्रेम के द्वारा तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े न हो जायं।

———

सिपाही जो किसी रणक्षेत्र पर जाने की तैयारी में होता है, यह नहीं सोचता कि उसे कौन-कौन सा नया सामान अपनी पीठ पर लाद लेना चाहिए, वरन् यह सोचता है कि वह कौन-कौन सी चीजें पीछे छोड़ सकता है। इसलिए यदि तुम यहां पर यश, सुख, भोग-विलास अथवा ऐसी ही चीजें अपने लिए खोजते रहोगे तो चलते समय इन्हीं चीजों के चित्र तुम्हारे सामने प्रकट होंगे। वे तुमसे चिपट जायंगे और तुम्हें उनको ले चलना होगा। अवश्यमेव यही चित्र और यही शक्तियां जिन्हें तुम स्वयं अपनी इच्छा से जगाते हो, तुम्हारे चारों ओर इकट्ठा होंगी और तुम्हारे लिए एक नया शरीर तैयार कर देंगी जो पुनः जीवन और सुख की पुकार मचायेगा। सावधान! कहीं वह शरीर आनन्ददायक राज-प्रासाद और देवताओं का गृह बनने के बदले तुम्हारी कब्र, तुम्हारा कारागार न बन जाय, न बना रहे।

———

अपने मन और बुद्धि को सुखद स्मृतियों से, विचारों के सुखमय तारतम्य से भर दो, जिससे वह सदा आह्लादकारक विचारों और दिव्य भावनाओं में डूबा रहे। फिर कभी तुम्हारे सामने दुख भोगने अथवा पछताने का अवसर न आयगा।

———

ईश्वर मनुष्य को प्यार करता है—मुहम्मद ने इसी प्यार का अनुभव किया था। मुहम्मद ने चाहे इस प्रेम को इतने शब्दों में व्यक्त किया हो या न किया हो किन्तु यह निश्चित है कि इसी प्रेम ने अरब-संसार को जगा दिया और वे उसके झंडे के नीचे एकहृदय होकर लड़ने के लिए तैयार हो गये।

———

जो आत्मा भीतर है, वही बाहर है। कौन आत्मा ? सच्ची और वास्तविक आत्मा, न कि इन्द्रियों का दासत्व करने वाली झूठी आत्मा !

परमात्म-चेतना ही सच्चा काम है। चाहे तुम न्यूयार्क की दौड़-धूप में रहो, चाहे हिमालय के एकांत में—यदि यह चेतना तुम्हारे अन्तःकरण में विद्यमान रहती है, तो प्रभाव सदा एक-सा होगा। स्थान, रूप, रंग-ढंग आदि का इस तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जब जाना ही, चलना ही मनुष्य का एकमात्र काम रह जाता है, किधर और कहाँ जाना है—उस पर वह ध्यान नहीं देता, तभी वह बहुत ऊँचा उठ जाता है।

दुखी व्यक्ति को चुपचाप अपना दुख भोग लेना चाहिए। बाहर धुआँ उड़ाने से लाभ ? भीतर ही भीतर जब तक धुआँ प्रकाश में परिणत न हो जाय, तब तक किसी से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। और धुएं के बाद अग्नि अवश्य जल उठेगी—यह प्रकृति का नियम है।

छठा परिच्छेद

संन्यासी से पूर्ववर्ती जीवन

विद्यार्थी और अध्यापक

(सन् १८८८ से १९०० तक)

जैसा पहले अंकित किया जा चुका है, सन् १९०३ और १९०६ के बीच में स्वामी राम ने एकाएक भारतवर्ष, जापान और अमरीका को एक-साथ अपने महान् जाज्वल्यमान व्यक्तित्व से चकित कर दिया। संन्यासी के वेष में भगवा वस्त्र पहने हुए, स्वामी विवेकानन्द की अमरीका की सफलता से उत्साहित होकर, और अपने निजी विश्वासों की बहुमूल्य सच्चाइयों को सारे संसार में बिखेर देने के शुद्ध और पीयूषवर्षी उत्साह से भरे हुए स्वामी राम संसार के सामने ऐसे उदित हुए कि उनके सम्पर्क में आने वाला जन-समुदाय उन्हें देखता ही रह गया और मूर्तिमान वेदान्त के एक सत्यनिष्ठ आचार्य के रूप में उनकी प्रशंसा करने लगा। जिस वेदान्त का उन्होंने प्रचार किया वह उनका अपना निजी वेदान्त था। ऐसा मालूम होता था कि एकाएक उस अचिन्त्य परमात्मा ने स्वयं अपने स्पर्श से उनके जीवन को सुन्दरतम सौंदर्य से प्रस्फुटित कर दिया हो। वे ब्रह्मज्ञान की मस्ती से पागल हो उठे थे। जैसे किसी महान् आत्मा ने महाप्रभु चैतन्य की आत्मा को छू दिया था जिससे वे आजीवन विह्वल रहे। ठीक यही बात स्वामी राम के साथ हुई। मनुष्य चाहे जितना प्रयास करे, मनुष्य की योग्यतायें और क्षमतायें चाहे जितनी महान् हों, किसी भी दशा में वैसा प्रकाशपूर्ण समाधिस्थ व्यक्तित्व मानवी प्रयास

से सम्पादित नहीं किया जा सकता। उनको मानो स्वयं उसी प्रकृति ने अपने हाथों सजाया था, जो लिली को सफेद, गुलाब को लाल और चम्पा को पीले रंग से चित्रित करती है।

कभी-कभी वे ॐ के निरन्तर जाप के लिए इतने जोरदार शब्दों में आग्रह करते थे कि उसकी तुलना नहीं। स्वयं उनका ॐ ॐ जाप निरन्तर चलता रहता था। उसमें एक क्षण का भी व्याघात न पड़ता था। किन्तु क्या उनके किसी अनुयायी में वैसी आग सुलगी? हां, दो-एक दिन अथवा कुछ समय उनके साथ रहने की बात दूसरी है। ॐ के निरन्तर, अजस्र धाराप्रवाह में यत्किंचित् व्यतिक्रम होते ही वे व्याकुल हो उठते थे—मैंने स्वयं उनकी इस व्याकुलता को देखा है। वे कहा करते थे—ॐ ही जीवन का स्वर्गीय विश्राम-स्थल है। उसके बिना कोई ईश्वरी श्वांस नहीं ले सकता। उसके बिना मनुष्य मरे के समान है। एक समय उन्होंने कहीं मिश्र या अमरीका में किसी वहाई को व्याख्यान देते सुना था। उसे सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—वाह वा, उसके भाषण में कहीं कोई विराम, अर्द्ध विराम नहीं दिखायी देता। विराम था तो केवल उसके प्रियतम का नाम वाह, वाह, वाह (वाह का अर्थ है प्रकाश)। दूसरी बार मैंने उन्हें वशिष्ठ आश्रम में देखा—वे निरन्तर ॐ ध्वनि की भावना में आकण्ठ डूबे हुए थे। वशिष्ठ आश्रम के पर्वतों की हरी-हरी दूब पर यदि कहीं उनका पैर फिसल पड़ता तो वे झट से कहते—ओह, राम गिरा क्यों? क्या 'प्रभु' का विस्मरण हुआ? आप सब आ गये हैं, राम की दृष्टि कुंठित हो जाती है। ज्योंही राम उसे भूलता है त्योंही गिरता और शिथिल होता है।

मनुष्य की संकल्प-शक्ति चाहे जैसी दृढ़ हो, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि साधारण बोल-चाल में हम जिसे संकल्प-शक्ति कहते हैं, उसके फलस्वरूप कभी उस पवित्र महामंत्र ॐ के अजस्र धाराप्रवाह की सिद्धि नहीं हो सकती। वह तो सहज

समाधि का लक्षण है, उसी से वह प्रकट होता है, अन्यथा होते कभी देखा नहीं गया। जो केवल एक सुसंयत संकल्प-शक्ति के बल पर, आध्यात्मिक साधना के बल पर ॐ के जाप का अभ्यास प्रारम्भ करते हैं, जीवन भर प्रयास करते रहने पर भी फल क्या होता है, कुछ नहीं। साधना के रूप में ही उस अभ्यास का जन्म होता है और साधना के ही रूप में उसका अन्त हो जाता है।* किन्तु वे जो समाधिस्थ होते हैं, जिन्हें अन्तर से स्फूर्ति मिलती है उसके बिना, निरन्तर जाप के बिना जी ही नहीं सकते। जहां जाप रुका, तहां उनकी त्वचा जलने लगती है, उनका मन झुलस जाता है, उनका हृदय बैठने लगता है, अपनी आत्मा के अन्तर में इस गंगा-प्रवाह के रुकने की अपेक्षा वे मरना अधिक पसन्द करते हैं। स्मरण-अजपा जाप आत्म-प्रसाद है। परमात्मा के स्पर्श से ही मनुष्य में वह शक्ति आती है। यह जाप भारत की आत्मा है जो सभी सच्चे भारतवासियों में घर किये हुए है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान या सिख। आत्म-साक्षात्कार ही सबका ध्येय है। बाहर से ज्ञान-स्फूर्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य के सारे प्रयास व्यर्थ जाते हैं। हृदय की उदासी, मन की निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता। समाधि के बिना, अन्तर से ज्ञान-स्फूर्ति प्राप्त हुए बिना सब धोखा ही धोखा है। स्वामी जी पहुंचे हुए थे, उन्हें अन्तर से प्रेरणा, भावावेश होता था—इससे कोई

---

*लेखक के ये विचार स्वामी राम की शिक्षाओं के अनुकूल नहीं मालूम होते। ज्यों-ज्यों बलिदान, त्याग, अहंकार—क्षुद्र आत्मा के त्याग के लिए संकल्प-शक्ति बलवती होती है, त्यों-त्यों हमें आत्म-प्रसाद मिलता है। क्षुद्र-आत्मा, देहाध्यास के पूर्णतः नष्ट होते ही अपने आप समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। ॐ के जाप की महिमा का गुणगान करते तो राम थकते नहीं। वे कहते हैं—और नहीं, तो पहले वाणी से ही जपो, फिर उसे सच्चिदानन्द रूप से हृदय में उतारो। उसका जाप कभी निष्फल नहीं हो सकता। ॐ का जाप आत्मसाक्षात्कार की कुंजी है, ऐसा उनका निश्चय था।

इन्कार नहीं कर सकता। वे एक सच्चे ज्ञानी-भक्त थे। स्मरण उनकी आत्मा थी। वे खुदमस्ती से भरे हुए कवि थे। वे एक ऐसे पुरुष थे जो विश्व में सर्वत्र ईश्वर के अलौकिक सौंदर्य का दर्शन करके विह्वल रहते थे। और उनके हृदय की प्रायः निरन्तर यह आनन्दमय अवस्था उनकी अजस्र आत्म-साधना एवं उच्चतम प्रेरणा के निरन्तर धारा-प्रवाह के फलस्वरूप उद्भूत हुई थी। हम लोगों ने उन्हें यकायक भावावेश में आत्मविभोर होते देखा है। वे अपनी वर्षों की आत्म-साधना के सहारे उसी दृढ़ता से भावावेश के उच्च स्तर पर जीवन-यापन में समर्थ हुए थे, जो एक गणितज्ञ में होना चाहिए, उसी समर्पण से जो एक प्रेमी में होती है, उसी लापरवाही से जो एक दार्शनिक के योग्य है और एक विजयी वीर की संकल्प-शक्ति से वे उदासी के क्षणों में भी उस उच्च स्तर से नीचे नहीं उतरते थे। स्वामी राम तूफानों में दृढ़ता से जमे रहते थे। उनका काव्य-प्रेम, उनका विशाल अध्ययन, उनका एकान्त-प्रेम, उनकी निरन्तर काम करने की टेव—सभी ने उनको सहायता दी। किन्तु कोई भी व्यक्ति जिसमें थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक दृष्टि हो, इस बात से असहमत नहीं हो सकता कि उनके व्यक्तित्व की वह सुन्दर प्रभा वैसी थी जो हमें सूक्ष्म रूप से चैतन्य महाप्रभु की याद दिलाती है। भक्ति की धारा उनके भीतर उस समय भी अत्यन्त वेग से बहती रहती थी, जब कि वे ऊँचे से ऊँचे स्वर में अपने आप को साक्षात् ईश्वर कहा करते थे। सन-फ्रान्सिसको में जब वे कहते थे—मैं ईश्वर हूं, तब उनकी बन्द आँखों से आनन्दाश्रुओं का बहना, मुखमण्डल का दीप्त हो उठना और बाहों का उस प्रेमावेश से काँप उठना जैसे समस्त विश्व को अपने अंक में समेट लेना चाहते हों—निश्चय ही ऐसा भाव किसी शुष्क दार्श-निक का नहीं होता। ऐसी लगन तो वैष्णव भक्त को ही शोभा देती है। प्रारम्भ के दिनों में जहां वे जनता के सामने बोलने खड़े हुए तहां कृष्ण का नाम लेते ही घंटों आँसुओं की झड़ी लग जाती थी।

कदम्ब के वृक्ष पर वे उन्हें दिखाई देते थे, और हरद्वार की गंगा में स्नान करते हुए भी उनकी वंशीध्वनि उनके कानों में गूँजा करती थी। लाहौर के अपने घर में वे उदात्त प्रेम और लगन के साथ सूरसागर पढ़ा करते थे। एक दिन कृष्ण की झांकी दिखायी देते वह तुरन्त बेसुध हो गये। बेहोशी के बाद उसी दिन जब अपने कमरे में फन फैलाये एक सर्प दिखायी दिया तो ऐसा लगा जैसे उनके फन पर कृष्ण नाच रहे हों। उन्होंने मुझ से कहा था कि वे दिन-दिन भर और रात-रात भर कृष्ण के प्रेम में रोया करते थे और सबेरे उनकी पत्नी तकिये को आँसुओं से तरबतर पाती थी।

जागा और देखा कि तकिया है तर-बतर,
नींद में क्यों आँसू बहाये, कुछ पता नहीं !
मुझे अब कोई दुख-दर्द नहीं किन्तु फिर भी
हृदय के अन्तराल से निकल ही पड़ता है एकाध आंसू।

—ए० इ०

हृदय की इस कोमलता ने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा। उनके पद्य में, उनके गद्य में, उनके भाषण में, उनके एकान्त में, उनकी निद्रा में—सर्वत्र वे भावावेश में डूबे रहते थे। मैंने उन्हें मथुरा में यमुना की रेत पर प्रेमविभोर होकर नाचते देखा है। वशिष्ठ आश्रम के हरियाले फर्श पर भी मैंने उन्हें इसी प्रेम के वश रोते और चिल्लाते देखा है। उस समय भी उनके हाथ में वंशी वाले श्री कृष्ण का एक छोटा सा चित्र था। मैंने पूछा—यह क्या है ? वे हँस पड़े और बोले—यही तो राम का जादू है, जो किसी को दिखाया नहीं जाता। उन्होंने मुझे दिखाया और फिर अपने पास रख लिया।*

---

*इन दिनों स्वामी राम ने लाला बैजनाथ की पुस्तक के लिए भूमिका रूप से हिन्दी में 'उपासना' पर एक निबन्ध लिखा था। वे जो कुछ लिखते थे, वह अपने हृदय की पूर्ण एकाग्रता से लिखते थे,

उनके व्यक्तित्व का पुष्प यकायक ही खिल उठा था—यह बात उनके उस विशाल पत्र-संग्रह से स्पष्ट हो जाती है जो उन्होंने गुजरांवाला निवासी एक धन्ना भगत, एक बुड्ढे ब्रह्मचारी को लिखे थे, जिनकी देख-रेख में स्वामी राम के पिता ने इस प्रभावग्रहणशील छोटे बच्चे को रख दिया था, जब कि वह पहले-पहल गुजरांवाला हाई स्कूल में भरती हुआ था। बचपन में स्वामी राम इस आदमी के बड़े श्रद्धालु थे, कुछ तो उसकी धार्मिकता के कारण और कुछ इस कारण कि इस धन्ना भगत में एक समय दूसरों के हृदय की बात जान

और उन्हीं विचारों और भावनाओं में डूब से जाते थे। निबन्ध के प्रारम्भ में वे लिखते हैं—मन को 'देव के पास बिठाना' उपासना है, अथवा उपासना उस अवस्था का नाम है, जहां रोम-रोम में राम रच जाय। इसके तीन दर्जे हैं (१) पत्थर की शिला का गंगा में शीतल हो जाना (२) कपड़े की गुड़िया का जल से निचुड़ने लग जाना (३) मिसरी की डली का गंगा रूप हो जाना। राम इन तीनों अवस्थाओं को न जाने कब के पार कर चुके थे, वे तो उनसे ऊपर उठकर स्वयं अपने इष्ट से एक हो गये थे। उसी निबन्ध में वे आगे लिखते हैं—उपासना ऐसे है जैसे गुणन के उदाहरण सिद्ध करना और ज्ञान वह है कि बीजगणित पढ़कर गुणन की विधि को कारण जान लेना। उपासना साधन है और ज्ञान सिद्ध अवस्था। उपासना में यत्न के साथ भीतर-बाहर ब्रह्म देखा जाता है और ज्ञान वह है जहां यत्नरहित स्वाभाविक रूप में अन्दर रोम-रोम से "अहम् ब्रह्मास्मि" के ढोल अन्य सब वृतियों को दबा देते हैं और बाहर हरत्रिसरेणु "तत्त्वमसि" का दर्पण दिखाता हुआ भेद-भावना को भगा देता है। कहने का तात्पर्य यह कि राम उस अवस्था में थे, जहां आत्मा के सिवा और कुछ नहीं रह जाता। अतः उनके वचनों में जहां, 'प्रभु' 'प्रियतम' 'कृष्ण' 'ईश्वर' 'आत्मा' 'ब्रह्म' आदि शब्द आये हैं—उन सब का एक ही अर्थ है—सच्चिदानन्द ॐ!

लेने की अलौकिक शक्ति थी । वशिष्ठ आश्रम में रहते समय स्वामी राम ने एक बार मुझे इस आदमी के बारे में बहुत सी बातें बतायी थीं । कैसे इस आदमी ने सूक्ष्म जगत की कुछ सिद्धियां प्राप्त की थीं और कैसे वह इनके चक्कर में ऐसा फंसा कि अन्त में किसी प्रकार उनसे बाहर न निकल सका ।

ये उर्दू पत्र (जिनका हिन्दी-अनुवाद नीचे दिया है) स्कूल में पढ़ने वाले एक छोटे से बालक के हैं, जो अत्यन्त दरिद्रता में पला था, जिसके हृदय के भीतर सर्वोच्च संभव शिक्षा प्राप्त करने की लालसा भरी हुई थी, जिसके निर्धन मां-बाप उसकी सहायता न करके उल्टे यह चाहते थे कि वह मेट्रिक पास करने के बाद परिवार के लिए कुछ कमाने-धमाने लगे और सब से बढ़कर उसके हृदय में तीव्र इच्छा थी जीवन के उस महान् स्वामी के दर्शन की, भगवान् से मिलने की, उनसे प्रेम करने की, उनको जानने की और स्वयं भगवान् हो जाने की । ये पत्र उसने बचपन में लगातार कई वर्षों तक पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना से धन्ना भगत को लिखे थे जिसको वह समझता था कि वह उसे ईश्वर तक पहुँचा देगा । ये पत्र वास्तव में उस महान् आत्मा के आत्म-चरित्र विषयक संकेत हैं जिनसे हमें अनायास उस निर्धन पंजाबी विद्यार्थी की आशाओं और आकांक्षाओं की एक झांकी सी दिख जाती है कि वह कैसे रहता था, कैसी बातें करता था, कैसे काम करता और कैसे सोचता था । स्वामी नारायण ने इन सब पत्रों को पुस्तकाकार में प्रकाशित करके बड़ा अच्छा किया है । उन्हीं में से कुछ उद्धरण दिन-चर्या के रूप में नीचे दिये जाते हैं, क्योंकि ये सब पत्र तो उन्होंने उसी बुड्ढे धन्ना भगत की सेवा में अपने क्रिया-कलापों के विवरण स्वरूप उपस्थित किये थे । ऐसा मालूम होता है कि धन्ना भगत की ओर से बराबर रुपयों की मांग रहती थी और स्वामी राम जब विद्यार्थी थे तब, जब उन्हें एक छोटा-मोटा वजीफा मिलने लगा तब, जब वे कुछ

विद्यार्थियों अथवा श्रीमानों के लड़कों को घर पर पढ़ा कर कुछ पैसे कमाने लगे तब, और जब वे प्रोफेसर होकर २०० रुपये मासिक कमाने लगे तब, उन्होंने सब से पहले सदा इसी हठयोगी धन्ना भगत् की मांगों की पूर्ति की । २०० रु० मासिक वेतन मिलने पर भी उन्हें कठिनाई उतनी ही थी, क्योंकि रुपया मांगने वालों की संख्या बढ़ गयी थी । पिता रुपया मांगते थे, भाई रुपया मांगते थे और स्त्री को भी रुपया चाहिए था, जिसे लाहौर में घर का सब व्यय चलाना पड़ता था । इसके सिवा आगुन्तकों और अतिथियों की संख्या भी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती थी, क्योंकि वे लाहौर में बड़े आदमी माने जाने लगे थे । एक बार स्वामी राम ने धन्ना भगत के प्रति जो आत्म-सर्णपण कर दिया था, वह प्रण इतना पूर्ण था कि शायद ही उसके परामर्श या निर्देश के बिना उन्होंने कोई काम किया हो । यह भी ठीक है कि इस धन्ना भगत ने प्रारम्भिक अवस्था में अवश्य ही राम को थोड़ी-बहुत सहायता दी, कम से कम उनके हृदय की अन्तः प्रवृत्ति को आध्यात्मिक बातों की ओर मोड़ दिया और ऐसे समय बच्चे में उच्चतर वस्तुओं की आकांक्षा जाग्रत कर दी, जब उसे ऐसी प्रेरणा की सर्वाधिक आवश्यकता थी । स्वामी राम ने निर्वाण से कुछ ही पहले मेरे हाथों धन्ना को एक पत्र भेजने का अनुग्रह किया था और यह भी कहा था कि मैं उसे थोड़ी सी रकम दे दूं, क्योंकि उसे कोई खिलाने-पिलाने वाला नहीं है और वह बहुत बुड्ढा हो गया है । मृत्यु के कुछ दिन पहले भी राम को उसकी याद बनी हुई थी ।

स्वामी राम के प्रारम्भिक जीवन के विषय में अंकित करने के योग्य कोई विशेष सामग्री नहीं है । वे सन् १८७३ ई० में मुरारि-वाला ग्राम में पैदा हुए थे, जो पंजाब प्रान्त के गुजरांवाला जिले में है । राम के जन्म के थोड़े दिन बाद ही राम की माता चल बसी थीं । तब उनके बड़े भाई गोस्वामी गुरुदास और उनकी बुड्ढी चाची ने राम का लालन-पालन किया था । बचपन में उन्हें शंख-ध्वनि से

बड़ा अनुराग था। राम एक उदास-वृत्ति के बालक थे। एकान्त से उन्हें बड़ा प्रेम था। वे अपने गुरु से प्रायः मन्दिर में जाकर थोड़ी देर के लिए भजन-प्रार्थना सुनने की छुट्टी मांगा करते थे, और कहते थे कि जितनी देर वहां लगेगी उतना ही समय मैं भोजन की छुट्टी में से कटा दूंगा। वे अपने ग्राम के मुस्लिम शिक्षक का हृदय से आदर करते थे और एक सच्चे शिष्य की भांति उसकी सेवा में तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने अपने पिता जी से कहा था—मौलवी साहब को अपनी दूध देने वाली भैंस भेंट कर दीजिये, क्योंकि उन्होंने मुझे शिक्षा के रूप में उससे कहीं श्रेष्ठ दूध पिलाया है।

अपनी ग्राम्य पाठशाला की शिक्षा समाप्त करने के अनन्तर बालक रामतीर्थ मेट्रिक की शिक्षा पाने के लिए गुजरांवाला हाई स्कूल में भरती कराये गये। यहीं पर उनकी उस एक विचित्र प्रकार के व्यक्ति धन्ना भगत से भेंट और घनिष्ठता हुई। बालक तीर्थराम उसको अपना आध्यात्मिक गुरु, ईश्वर के समान पूजनीय मानने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसी समय उन्होंने एक सच्चे सत्यनिष्ठ भक्त की भांति अपना तन-मन-धन इस पुरुष के अर्पण कर दिया था।

राम मार्च सन् १८८८ ई० में मेट्रिक पास हुए थे और उसी वर्ष इंटरमीजिएट श्रेणी में पढ़ने के लिए वे गुजरांवाला से लाहौर चले गये। लाहौर के मिशन कालेज से ही उन्होंने इंटर, बी० ए० और एम० ए० की परीक्षायें पास कीं। निम्नलिखित पत्र उन्होंने कालेज के अध्ययन-काल में ही लिखे थे।

इस पत्र-व्यवहार में हम उनके व्यक्तित्व को एक परम सुन्दर पुष्प की भाँति धीरे-धीरे खिलता हुआ पाते हैं। राम कृष्ण के भक्त बन चुके थे, कृष्णावेश से ही प्रत्यक्षतः उनके हृदय की कली खिल रही थी। जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि वे इस समय अनायास ही आत्मनिष्ठ महात्माओं से स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे, जैसी कि सभी सच्चे जिज्ञासुओं को प्रायः मिला करती है।

१८ मई १८८८. मिशन कालेज में भरती हो गया। एक रुपया मासिक पर एक मकान भी मिल गया। समूचे प्रान्त में (मेट्रीकुलेशन-परीक्षा में) योग्यता-क्रम में मेरा नम्बर ३८वां रहा किन्तु मुझे वजीफा नहीं मिल सका। इस कालेज में मुझे साढ़े चार रुपया फीस देना होगी।

१० जून १८८८. आपने पूछा है कि मैं महाराजा रंजीतसिंह की समाधि के पास वाले मकानों में रहने के लिए क्यों नहीं जाता हूँ। सबमें बड़ा कारण यह है कि मुझे वहां न तो उपयुक्त एकान्त ही मिल सकता है और न पठन-पाठन के लिए आवश्यक स्वतंत्रता।

५ नवम्बर १८८८. मैं अपने आपको, अपना सर्वस्व—आपके चरणों में भेंट करता हूँ। मेरे प्रभु ! सम्भव है, मुझे आपकी दया से वजीफा मिल जाय।

१९ मार्च १८८९. मेरे इष्टदेव ! मुझे वजीफा मिल गया।

३ फरवरी १८९०. मुझे इण्टरमीजिएट परीक्षा की फीस भेजनी है। अभी तक भगवानदास से रुपया नहीं मिला है। मुझे अपने परिश्रम का भरोसा नहीं, केवल आपकी दया का भरोसा है। यदि आज्ञा करें तो परीक्षा में बैठूं अन्यथा नहीं। आज्ञा बिना न मैं परीक्षा की फीस दूँगा, और न परीक्षा में बैठूंगा।

११ फरवरी १८९०. मेरा ख्याल गलत था। मैं अपनी इच्छा से कुछ न कर सका। साहब, कालेज के प्रिंसिपल ने मेरा नाम भेज दिया और आवश्यक कागजों पर हस्ताक्षर करने पड़े। अतः मुझे परीक्षा में बैठना ही होगा। मुझे इसके लिए भगवानदास से रुपया भी मिल गया। दया कीजिये, दया कीजिये, मैं आपका गुलाम हूँ।

१० मार्च १८९०. लोग कहते हैं कि ईश्वर दया और शान्ति का भाण्डार है। फिर आप क्यों क्रुद्ध होते हैं ? आप मुझे क्षमा क्यों नहीं करते ? सोचता हूं कि शायद ईश्वर के यहां से आपको ज्ञात हुआ हो कि मैं अपने दोषों के कारण भगवान् के दर्शन नहीं पा

सकता और यही जान कर आप मेरी अवहेलना कर रहे हैं। अन्यथा लोग हँसेंगे कि तीरथराम तो आपका बड़ा भक्त था, उसे भी ईश्वर के दर्शन न हो सके। परन्तु मेरी विनय है कि मुझे क्षमा कीजिये और और मेरे दोषों पर ध्यान न दीजिये।

यदि तू मुझे भीतर बुलाये तो मैं केवल एक ही द्वार जानता हूं।
यदि तू मुझे बाहर निकाले तो मैं केवल एक ही द्वार जानता हूं!
मुझे किसी और द्वार का पता नहीं,
मैं इस सिर को पहचानता हूं—
उसके योग्य स्थान है—तेरी देहरी! —फारसी से।

२० मार्च १८९०. फारसी की परीक्षा समाप्त हो गयी। गणित भी समाप्त हो गया। बहुत ही कठिन विषय है। किन्तु आप की दया है, तो कुछ भी कठिन नहीं।

२३ मार्च १८९०. आज बहुत ही कड़े पर्चे आये। भौतिक विज्ञान की परीक्षा थी। यह विषय बड़ा दुरूह है।

६ जून १८९०. आप मुझे पत्र क्यों नहीं लिखते? मैं अपनी ओर से पूरी-पूरी कोशिश करता हूं किन्तु काम बहुत रहता है। कहने को दो दिन की छुट्टी मिली परन्तु कालेज में इतना काम दिया गया कि दो सप्ताह में भी समाप्त नहीं हो सकता। आज्ञा-पालन विषयक असमर्थता का आप कोई दूसरा अर्थ न लगायें।

११ जून १८९०. प्रिंसिपल ने मुझे नेत्र डाक्टर के नाम पत्र दिया था। उसने मुझे चश्मा लगाने की सलाह दी है। बम्बई से चश्मा मँगाने के लिए मुझे ५) रु० भेजना होगा।

२५ जून १८९०. बम्बई से चश्मा आ गया। उसे लेकर फिर उसी नेत्र-विशेषज्ञ के पास गया था कि ठीक आया है या नहीं। उसने चश्मे को ठीक बताया। मुझे अब काला तख्ता पहले से कहीं अच्छा दिखायी देता है। नेत्र-विशेषज्ञ की भांति प्रिंसिपल ने भी मुझ से बराबर चश्मा लगाने के लिए कहा हैं। दूर की चीजें अब मुझे

पहले से अच्छी दिखायी देती हैं, इसीलिए मैंने उसे लौटाया नहीं। आप चश्मे के बारे में अपनी राय लिखें।

१९ जुलाई १८९०. हमारी छुट्टियां पहली अगस्त से प्रारम्भ होंगी। आज १९ जुलाई है। कृपा करके ऐसा कभी न सोचें कि मैं आपसे विमुख हुआ जा रहा हूं। जब कोई मनुष्य किसी काम को हाथ में लेता है तो कुछ समय तक उसमें लगे रहने के बाद उसे उसके सारे भेद सूझने लगते हैं और पता चल जाता है कि वह सर्वोत्तम ढंग से कैसे किया जा सकता है। फिर वह बिना अधिक सोच-विचार के ही वैसा काम करने के ढंग और साधनादि समझ जाता है, भले ही वह उस कार्य-प्रणाली का कारण और हेतु न बतला सके किन्तु दिल में उसे उनके ठीक होने का निश्चय रहता है। मैं आपको कारण नहीं बता सकता, यह काम तो विद्वानों का है। हर एक मनुष्य दार्शनिक नहीं होता। और अधिकतर व्यक्ति बिना कारण निर्धारित किये ही अपने ढंग से कार्य-सम्पादन करते हैं। जब मैं छोटा बच्चा था, तभी मैं कविता के छन्दों के स्वरों और संगीत के विषय में अपना निर्णय रखता था। उस समय अपनी धारणा के विषय में न मैं तर्क दे सकता था और न उनकी व्याख्या कर सकता था। किन्तु अब १० वर्ष के उपरान्त जब मैंने छन्दः शास्त्र के नियमों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, तब मुझे मालूम हुआ है कि मेरी धारणायें बिल्कुल ठीक थीं। यदि तब मैं कोई ठीक हेतु नहीं बता सकता था तो उसका यह अर्थ नहीं कि मेरा निर्णय भ्रमपूर्ण था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थ बुद्धि वाले व्यक्ति को हर एक बात के लिए आवश्यक कारण ढूंढ़ना कोई अत्यन्त आवश्यक नहीं। अतः कभी-कभी कारणों पर अधिक जोर दिये बिना ही हमें उसका निर्णय मान लेना चाहिए, यदि हमें यह निश्चय हो कि वह व्यक्ति वास्तव में भला है और अपने शुद्ध अन्तःकरण के अनुसार चलने वाला है।

मैं आपकी अवज्ञा करता हूं, ऐसा विचार ही कभी मेरे मन में

नहीं उठता। आप भी सदा यही सोचें कि मेरे हर एक काम में आपकी आज्ञाकारिता का सच्चा भाव भरा रहे।

आपकी राय में मुझे अपनी छुट्टियां गुजरांवाले में आपके साथ बिताना चाहिए। आपकी आज्ञा है, तो मुझे जाना ही होगा। किन्तु मैं वहाँ सारा समय न बिताऊँ, ऐसी मेरी दिली इच्छा है। मैं इसके लिए कुछ कारण उपस्थित कर सकता हूं। यद्यपि इस प्रकार सफाई देने की मेरी रंचमात्र भी इच्छा नहीं होती है। यह तो अपना समय नष्ट करना है। पर आप मुझे कहीं अवज्ञाकारी न समझ बैठें—यही निश्चय कराने के लिए लिखता हूं। मेरी विनय यही है कि आप अपने प्रति मेरी भक्ति में कभी संदेह न करें।

मेरे कारण ये हैं—मैंने एक ओर लाहौर में ठहरने और दूसरी ओर अपने घर जाकर इष्टमित्रों एवं सम्बन्धियों से मिलने-जुलने का अंतर समझ लिया है। केवल इतना ही नहीं कि वहां लिखने-पढ़ने के लिए आवश्यक एकान्त की सुविधा नहीं होती, वरन् मैंने देखा है कि वहां चित्त की वह गंभीरता नष्ट हो जाती है जो गूढ़ और कठिन प्रश्नों के हल के लिए अपेक्षित होती है। घर जाकर हम कुछ मोटे से हो जाते हैं और उत्तम विचारों की ग्राहक-चिन्तनशील-सूक्ष्म धारा लुप्त सी हो जाती है। कारण, वहां भौतिक सुखों के स्पर्श से बुद्धि विकृत रहती है। लाहौर से बाहर मेरे लिए सर्वत्र इस अनुचित स्पर्श की संभावना रहती है और मेरा मन बिगड़ जाता है। आप कह सकते हैं—लाहौर कोई जंगल नहीं, यहां भी तो मनुष्यों से मिलना-जुलना होता रहता है। यह ठीक है। किन्तु यहां केवल अपरिचितों से मिलना होता है, यहां उस गहरे प्रेम से लोगों से मिलना नहीं होता, जैसे मैं घर के लोगों से मिलता हूं। लाहौर में मैं लोगों से मिलता हूं किन्तु मेरा ध्यान उनमें जमता नहीं। केवल ऊपरी ढंग से मिलना होता है। अपने लोगों से मिलने में हमें अपना मन उनमें लगाना पड़ता है। दूसरे लाहौर में मैं केवल विद्यार्थियों

को जानता हूं, और उनका सहवास सदैव स्वास्थ्यवर्धक होता है।

आप यह भी पूछ सकते हैं कि क्या अन्य विद्यार्थी भी मेरी तरह लाहौर में रुकने वाले हैं। रुकनदीन जो सारे प्रान्त में सर्वप्रथम आया था, अपने घर एक दिन के लिए भी नहीं जाता।

बिना संयम, बिना परिश्रम कोई चमक नहीं सकता। मैं कड़ी मेहनत करना चाहता हूं। यह सच है कि बहुत से कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी घर जायंगे, किन्तु मेरा विश्वास है कि संभवतः उन्हें अपने घरों में अध्ययन के लिए आवश्यक सुविधायें मिलती हों। इसके सिवा बहुत से मेरी तरह विवाहित नहीं हैं। और विवाहित होने पर भी वे प्रबल इच्छाशक्ति वाले हो सकते हैं, जो अपने मन को बाहरी आमोद-प्रमोद के साधनों की ओर भटकने से रोक सकते हों। मैं उतना शक्ति-सम्पन्न नहीं। मुझे डर है कि वहां मेरा मन बिगड़ जायगा।

जिसे लोग बुद्धि कहते हैं, वह भी अभ्यास एवं परिश्रम से उन्नति करती है। यदि कोई विद्यार्थी बिना मेहनत अच्छे नम्बरों से परीक्षा पास कर लेता है, उसे कभी पढ़ने का मजा नहीं मिल सकता। क्या आपको याद नहीं कि उस बार एक मनुष्य ने आपसे अपने नाम पर एक कविता बना देने की प्रार्थना की थी। दुनियां को वह भले ही यह धोखा दे सके कि वही उस कविता का रचयिता है। वह तो कहने-सुनने के लिए रचयिता बना था, उस कविता के रचने का सच्चा सुख तो आपने ही भोगा था। वह तो उस आदमी की तरह है जिसे बिना कमाये ही बहुत सा धन मिल जाता है। ऐसे के पास विशाल सम्पत्ति हो पर उसे उसका स्वाद कभी नहीं मिल सकता। स्वाद तो केवल उसे ही प्राप्त होता है जो पसीना बहाकर धन कमाता है।

दया करके मुझे अपने अध्ययन से वंचित न करें। समझ लीजिए मैं कहीं विदेशों में चला गया हूं। मुझे दो वर्ष की छुट्टी दे दें।

जब पुत्र लौटेगा तब तो आपका है ही। जब सैनिक अपनी पूरी आत्मा से लड़ता है, तो उसे यह पता नहीं रहता कि वह किसका सैनिक है, उसका स्वामी कहाँ है अथवा स्वामी के साथ उसका क्या सम्बन्ध है। फिर भी सारे समय वह रहता तो है राजा का ही सैनिक, और अपनी सारी शक्ति के साथ राजा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को चरितार्थ करता है। यही हाल मेरा है। यह न सोचें कि मैं गुजरांवाला न जाकर आपकी अवज्ञा करना चाहता हूं।

२ दिसम्बर १८९०. मैं आज कालेज गया था, कुछ ऐसा सन्देह होता है कि अब मैं कालेज में निःशुल्क विद्यार्थी न रह सकूंगा। प्रोफेसर मिस्टर गिलवर्टसन जो मेरे कालेज की आधी फीस दिया करते थे, कहते हैं कि अब उनके पास कालेज का कोई ऐसा काम नहीं रह गया है जो वे मुझे दे सकें। हाँ, यदि वे मेरे लिए कोई उपयुक्त कार्य निकाल सके तो मैं निःशुल्क विद्यार्थी रह सकूंगा।

४ दिसम्बर १८९०. कृपापत्र मिला। मुझे तो केवल आप ही का विश्वास है। मैं जानता हूं कि आप मेरी फीस का कोई न कोई प्रबन्ध करेंगे ही; या तो स्वयं नकद भेजेंगे अथवा किसी के हृदय में प्रेरणा करेंगे। आप प्रिंसिपल और प्रोफेसर के द्वारा ऐसा कुछ प्रबन्ध करा ही देंगे जिससे मुझे फीस न भरनी पड़ेगी।

१० जनवरी १८९१. कालेज गया तो देखा कि फारसी पाठ्य-क्रम से हटा दी गयी है। बड़ा अच्छा हुआ। ईश्वर की कृपा समझना चाहिए।

१८ जनवरी १८९१. प्रिंसिपल ने मेरी फीस माफ कर दी है, उसके बदले मुझे व्याख्यानों की नकल करने का थोड़ा काम दिया गया है, मैं उसे करूंगा।

२० फरवरी १८९१. प्रिंसिपल ने रुकनदीन को आज्ञा दी है कि मैं शारीरिक व्यायाम किये बिना कालेज से घर न जा सकूं। वे समझते हैं कि मैं बहुत कमजोर और रोगी हो गया हूं।

१ अप्रैल १८९१. विश्वविद्यालय के अधिकारी गणित के कुल नम्बरों को घटाकर १५० से १३० करने वाले हैं और अन्य विषयों के नम्बर बढ़ाने वाले हैं। इसका अर्थ यह होता है कि वे अन्य विषयों को भी गणित के समान गौरवान्वित करना चाहते हैं। सचमुच यह भयानक बात है, स्पष्ट ही पापरूप। इसका अभिप्राय यह है कि वे कर्म और अकर्म के बीच का अन्तर धो डालना चाहते हैं। हमारे गणित के प्रोफ़ेसर कह रहे थे कि वे इसके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे। क्या परिणाम होगा—ईश्वर जाने !

७ अप्रैल १८९१. मैं सबेरे घूमने गया हुआ था। लौटने पर देखा, ताला टूटा हुआ है, किवाड़ खुले हुए हैं और पीतल के बर्तन लोटा आदि सब सामान गायब हो गया है। ईश्वर को अनेक धन्यवाद ! मेरी पुस्तकें सुरक्षित हैं। चोर अपनी टोपी यहां भूल गया है।

९ मई १८९१. लाला अयोध्या प्रसाद ने मुझसे कहा है कि उन्होंने मेरे लिए दो मकान ढूंढ़े हैं, एक तो मुझे इसलिए पसन्द नहीं आया कि चेल के हाकिमरायजी आर्यसमाजी वहां रहते हैं। दूसरा उतना सुविधाजनक नहीं है जितना कि यह, जिसमें मैं रहता हूँ। और एक बड़ी बुराई यह है कि इस दूसरे मकान के मालिक मुझसे कोई किराया नहीं लेना चाहते; किन्तु चाहते हैं कि मैं उनके लड़के को प्राइवेट तौर पर पढ़ाया करूँ। इसका अर्थ यह होता है कि वे एक रुपया मासिक किराये का मकान देकर और नहीं तो कम से कम २५) मासिक का काम मुझसे लेना चाहते हैं। इतना ही क्यों, मुझे मुफ्त मकान देने का उनका अनुग्रह मेरे सिर पर लदा ही रहेगा। यही कारण है कि मैं इस दूसरे मकान में भी जाना पसन्द नहीं करता हूँ।

११ मई १८९१. मेरी चारपाई का बुनाव एकदम टूट गया था। रस्सियाँ पुरानी हो गयी थीं, इसलिए मैंने पाँच आने की

रस्सियाँ लेकर उसे फिर से कसवा लिया है। मेरी चारपाई अब खूब कसी हुई नयी जैसी हो गयी है। मैं बड़ा खुश हूँ।

१९ मई १८९१. आज जब मैं कालेज गया तो सभी सहपाठी मुझे घेर गये और कहने लगे कि अब तुम्हें कालेज के बोर्डिंग में आकर रहना होगा, प्रिंसिपल साहब ने ऐसी आज्ञा दे रखी है। दो-तीन घंटे के बाद कालेज के डाक्टर से मेरी भेंट हुई। उन्होंने भी मुझ से पूछा—"क्या तुमने अपने बारे में प्रिंसिपल की नई आज्ञा नहीं सुनी है ?" मैंने कहा—"मुझे अपने माता-पिता से (आपसे अभिप्राय था) परामर्श लेना होगा।" कालेज के डाक्टर ने उत्तर दिया—"किन्तु हर हालत में प्रिंसिपल की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा।"

कालेज के समय के बाद प्रिंसिपल ने मुझसे कहा—मैंने यह आज्ञा तुमको तुम्हारी भलाई के लिए दी है। तुम कालेज के होस्टल में आकर रहो। सच्ची बात यह है–मेरे कुछ साथी एक दिन आये थे और जब उन्होंने मुझे इस अन्धी कोठरी में रहते देखा और मेरी खाने-पीने की अन्य कठिनाइयों का अनुभव किया, जैसे मुझे प्रतिदिन कालेज आने-जाने में कितना चलना पड़ता है, तो उन्हें दुःख हुआ। उन्हीं लोगों ने सहानुभूति के मारे मेरे विरुद्ध यह षडयन्त्र रचा। वे मुझे होस्टल में घसीट ले जाना चाहते हैं। कहते थे कि हम तुम्हें यहाँ नहीं रहने देंगे। हिसाब लगाकर मुझे बताया गया कि खाना-पीना, किराया आदि सब मिलाकर मुझे कुल १३॥–) देने होंगे। यह तो मैं जानता हूँ कि मनुष्य को चाहे जिस परिस्थिति में रहना पड़े, यदि वह चाहे तो सभी जगह अपने मन को एकाग्र कर सकता है। होस्टल पढ़ने-लिखने के लिए बुरी जगह नहीं। प्रान्त के बहुत से विद्यार्थी वहीं रह कर प्रथम आये हैं।

मैंने बारह आने की कुछ पुस्तकें मोल ली हैं। अब मेरे पास एक पैसा भी नहीं बचा है। मैं अयोध्याप्रसाद जी के पास जाऊँगा।

यदि आपकी यह राय बैठे कि मुझे होस्टल में नहीं जाना चाहिए तो कृपया यह लिख भेजें कि मुझे प्रिंसिपल को क्या उत्तर देना चाहिए।

२३ मई १८९१. कालेज से लौटने पर आज जब मैंने कोठरी के किवाड़ खोले तो एक साँप मेरी ओर तेजी से झपटा। वह एकदम काला विषधर था। मैं सहायता के लिए चिल्लाया और लोगों ने आकर उसे मार डाला। अब कालेज के सभी आदमी मेरे यहाँ रहने के एकदम विरुद्ध हो गये हैं। सब के सब होस्टल में बुलाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि यदि मैं चाहे जहां अपने अध्ययन पर अपना मन एकाग्र करने की योग्यता संपादन नहीं करता तो मेरे लिए ठीक ढंग से मनुष्यों के बीच में रहना ही सम्भव न होगा। जो तैरना सीखना चाहता है और पानी में पैठने से घबराता है, वह तैरने की कला कैसे सीख सकता है ?

लोग कहते हैं कि बड़े होने पर न मनुष्य को ऐसा एकान्त स्थान मिल सकता है और न ऐसा अवकाश ही मिल सकता है कि वह अकेले अपने आप में ही मगन रहे। इसलिए वे लोग चाहते हैं कि मैं एकदम अकेले रहने के अभ्यास को छोड़ कर लोगों के साथ रहने की आदत डालूं। कालेज के डाक्टर भी मुझे समझा रहे थे कि मैं शीघ्र ही भीड़-भाड़ के बीच अपने अध्ययन पर ध्यान लगाने का अभ्यस्त हो जाऊँगा। केवल यही डर है, अन्यथा मेरा होस्टल में रहना अनिवार्य सा है। मुझ से उसका विरोध न होगा। आप ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं वहाँ भी अपनी पढ़ाई पर उसी प्रकार दत्तचित्त हो सकूं जैसा यहाँ रहता हूँ।

२५ मई १८९१. मैंने हिसाब लगाकर देख लिया है यदि होस्टल में जाता हूँ तो—

(१) मुझे छुट्टी के महीनों के लिए किराये के रूप में कुछ न देना होगा।

(२) भोजन के लिए भी केवल उतने दिनों का व्यय देना

होगा जितने दिन मैं खाना खाऊंगा। यदि कोई अतिथि आ जायगा तो उसके लिए उसी हिसाब से व्यय करना होगा।

मैंने होस्टल के अध्यक्ष से कहा था कि मेरे अभिभावक इतना सारा व्यय देने में असमर्थ हैं। उन्होंने हिसाब लगाया और बतलाया कि मैं यहां जितना व्यय कर रहा हूं, उससे केवल एक रुपया बढ़ जायगा। और जब होस्टल में मुझे अच्छा भोजन मिलने लगेगा, तो वे कहते थे कि मैं अपने अन्य व्ययों में १ रुपये की कमी आसानी से कर सकूंगा। एक बात का उन्होंने वहां और सुभीता बतलाया। वहां मुझे पुस्तकें मोल न लेनी पड़ेंगी, बहुत सी मैं अपने मित्रों से मांग कर पढ़ सकता हूँ। और अन्त में उन्होंने यह आश्वासन दिया कि यदि वहाँ मुझे कोई अड़चन प्रतीत हो तो मैं छुट्टियों के बाद फिर अपना निवास बदल सकता हूं।

५ दिसम्बर १८९१. मैं आपको पत्र लिखने के लिए पोस्टकार्ड अपने साथ लिये रहा। किन्तु मैं इधर गणित का एक बहुत ही जटिल प्रश्न हल करने में लगा हुआ था, इसलिए उस दिन यह पत्र अधूरा ही मेरी जेब में पड़ा रहा। कालेज के अन्य विषयों का काम भी अभी बाकी पड़ा है। पूरे २४ घंटों के बाद मैं उस प्रश्न को हल कर सका हूँ। अब मैं कालेज के दूसरे कामों में लगूंगा।

११ फरवरी १८९२. मैं अभी तक कालेज के होस्टल में नहीं जा सका हूँ। शायद आज चला जाऊँ। मेरे मकान में फिर एक नयी चोरी हुई। मेरी तकिया, बिस्तर, गद्दा और कुछ बर्तन चले गये। किन्तु पुस्तकें सब सुरक्षित हैं। लाला ज्वालाप्रसाद और झण्डूमल कहते थे कि वे मेरे लिए नये कपड़े सिलवा देंगे। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया—गोस्वामी जी! आप चिन्ता क्यों करते हैं? हम सब तरह से आपकी सहायता के लिए उद्यत रहेंगे।

११ जून १८९२. आज कोई सज्जन मुझे देने के लिए प्रिंसिपल साहब को ५३ रुपये दे गये। प्रिंसिपल ने मुझे बुलाकर कहा—ये

रुपये ले जाओ। मैंने उस दाता का नाम पूछना चाहा किन्तु प्रिंसिपल ने उन सज्जन का नाम नहीं बतलाया। मेरा ऐसा अनुमान है कि शायद प्रिंसिपल साहब ने ही स्वयं यह रकम मुझे दी है। तब मैंने उनसे प्रार्थना की कि आप आधी रकम कालेज की फीस आदि के लिए सुरक्षित रख लें और आधी मुझे दे दें। पर उन्हें यह प्रस्ताव पसन्द न आया। इसलिए मैंने वह रकम लेकर लाला अयोध्याप्रसाद जी को दे दी है।

९ जुलाई १८९२. पिछली रात जब मैं बाजार से थोड़ा सा दूध पीने के लिए गया था, तो मेरा एक जूता खो गया। वह अवश्य नाली में बह गया। मैंने उसे ढूंढ़ने की बड़ी कोशिश की परन्तु वह मिला नहीं। प्रातःकाल मुझे एक अपने जूते को और एक पुराने जनानी जूते को जो संयोग से घर में पड़ा हुआ था पहन कर कालेज जाना पड़ा। मेरा यह जूता भी अब बहुत पुराना हो गया था। इसलिए मैंने बाजार से एक नया जोड़ा सवा नौ आने में मोल लिया है।

२ अगस्त १८९२. मैं पुनः कालेज में भरती हो गया हूं। कालेज में झण्डूमल हलवाई ने बड़े आग्रह से मुझे नित्य उसके घर भोजन करने का निमंत्रण दिया है। उसके आग्रह को मैं टाल न सका, इसलिए उसके आतिथ्य को स्वीकार करने के लिए राजी हो गया हूं। मैं देखूंगा, इसका मेरे ऊपर कैसा प्रभाव होता है। यदि वह सब भाँति ठीक सिद्ध हुआ तो उसके घर पर भोजन करता रहूंगा।

९ अगस्त १८९२. मैं झंडूमल के यहाँ भोजन कर रहा हूं। वह प्रेम के साथ खिलाता है। जब आप यहाँ आयें और मेरे लिए उसका आतिथ्य स्वीकार करना ठीक न समझें तो मैं खाना छोड़ दूंगा।

९ अकटूबर १८९२. आज से कालेज का नव वर्ष प्रारम्भ है। मैं किसी प्रोफेसर से मुझे कोई ट्यूशन दिलाने की बात नहीं कर सका। बहादुर चंद से भेंट हुई थी। उन्होंने मुझे बताया कि लद्धाराम एक्जीक्यूटिव इंजीनियर अपने लड़के के लिए प्राइवेट ट्यूटर चाहते हैं। उसे दो घंटे पढ़ाने के बदले मुझे पन्द्रह रुपया मासिक मिल जायगा। मुझे पूरी आशा है कि ईश्वर कोई न कोई मार्ग निकाल ही देगा।

९ अक्टूबर १८९२. जिस घर में रहता था, वह घोर वर्षा के कारण यकायक गिर पड़ा। झण्डूमल ने मेरा सामान और पुस्तकें किसी तरह बचा ली हैं। अभी मुझे दूसरा मकान नहीं मिला है। मैं पिछली रात झण्डूमल के घर पर सोया और उन्हीं के साथ भोजन भी किया।

१८ अक्टूबर १८९२. मैंने अपने प्रोफेसरों से ट्यूशन के बारे में बात की। उन्होंने मुझे सलाह दी है, इस तरह मेरा बहुत सा समय नष्ट होगा और विशेषकर जब परीक्षा इतनी समीप है। उनका कहना बहुत ठीक मालूम होता है। क्योंकि १५ रु० मासिक कमाने की अपेक्षा मेरा समय अधिक मूल्यवान् है।

आपको यह सूचना देते हुए दुख होता है कि हाल ही में मेरे दो मित्रों की मृत्यु हो गयी है, एक खलीलुल रहमान बी० ए० और दूसरे लाला शिवराम बी० ए० की। ईश्वर उनके परिवार वालों पर दया करे! ये दोनों घटनायें सचमुच बड़ी दुःखद हुई हैं।

३१ दिसम्बर १८९२. मेरी ही कक्षा का एक विद्यार्थी मुझ से गणित पढ़ने लगा है। मैंने अपने पारिश्रमिक के बारे में उससे कोई बात नहीं की। परन्तु वह बड़ा सज्जन है, किसी न किसी प्रकार मेरे श्रम की भरपाई कर ही देगा।

सरदार अब कुछ दिनों बाद अपनी परीक्षा समाप्त कर लेगा। जिस सहपाठी को मैंने पढ़ाना प्रारम्भ किया था, वह मेरे

पढ़ाने के ढंग से बड़ा प्रसन्न है। वह कम से कम मुझे इतना तो देगा ही जिससे मैं अपना मकान किराया और दूध का व्यय चुका सकूं। इसके अतिरिक्त सरदार मुझ से अपने साथ रहने के लिए कह रहा था। जब आप यहाँ पधारेंगे तो आपके आदेशानुसार कार्य करूंगा।

२३ जनवरी १८९३ जब मैं कालेज पहुंचा तो कालेज के चपरासी ने मुझ से कहा कि प्रोफेसर गिल्बर्टसन मुझे बुलाते थे। क्लास की घंटी बज चुकी थी, मैं दौड़ा हुआ प्रोफेसर साहब के पास गया। उन्होंने मुझे एक छोटी सी पुड़िया दी, उसे लेकर मैं क्लास में दौड़ गया। आज मेरे पास एक पैसा भी न था। तीन घंटे बाद जब मैंने वह पुड़िया खोली तो देखा कि उसमें तीस रुपया लिपटे हुए हैं। मैं पुनः उन दयालु प्रोफेसर के पास गया और प्रार्थना की कि मुझे इतने रुपयों की आवश्यकता नहीं है। मैंने चाहा कि बीस रुपया उन्हें लौटा दूं किन्तु वे पूरी रकम लेने के लिए आग्रह करने लगे। अब यदि आप आ जायं तो इन बीस रुपयों का बोझ मेरे सिर से उतार लें। यदि आप उचित समझें तो इनमें से कुछ 'जितना आप चाहें' मेरी मां को दे दें। मैं रुपया डाक से इसलिए नहीं भेजता हूं कि आपके दर्शन करना चाहता हूँ। मैं दस रुपया इसलिए अपने पास रख छोड़ना चाहता हूं कि मुझे दो माह की फीस देनी है। अपने दैनिक व्यय के लिए तो ज्वालाप्रसाद जी का मुझे सहारा है ही।

१२ फरवरी १८९३. मैं होस्टल में आ गया हूं। मैं प्रातः का भोजन होस्टल में करूंगा और सायंकालीन झण्डूमल के यहां। झण्डूमल जी ने बड़ी कठिनाई से मुझे प्रातःकाल होस्टल में भोजन करने की अनुमति दी है। मैं अब अपनी जन्मभूमि मुराली वाला को मुरारिवाला कहा करूंगा। मुरारि कहने से कृष्ण की याद आवेगी।

१८ फरवरी १८९३. झण्डूमल ने मेरे लिए दो कुरते और एक पजामा सिलवाया है। लाला ज्वालाप्रसाद ने भी मुझे उनके चाहे

जो कपड़े पहनने के लिए कह रखा है। किसी बात का कष्ट नहीं।

११ मार्च १८९३. आज रोल नम्बर मिला है। कालेज की परीक्षा में मुझे गणित में १५० नम्बरों में से १४८ नम्बर मिले हैं।

१७ अप्रैल १८९३. (एक मित्र का पत्र) तीर्थराम बधाई! तुम बी० ए० की परीक्षा में प्रान्त भर में सर्वप्रथम आये।

११ जुलाई १८९३. भाई—जिसे मैं पढ़ाता था और जो चीफ कालेज से मिडिल स्कूल की परीक्षा में बैठा था—पहले फेल हो गया था। किन्तु उसके पर्चे फिर से जाँचे गये और वह पास हो गया। बड़ी प्रसन्नता हुई!

१७ जुलाई १९९३. आज मैं नदी किनारे घूमने गया था। जब मैं नावों के पुल के पास टहल रहा था तब भाग्य से मिस्टर बैल, गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल उधर से निकले। वे बड़े उत्साह और प्रेम के साथ मुझसे मिले, बड़ी देर तक बातें करते रहे। पहले मेरे चश्मे के बारे में पूछा और फिर पूछा कि मैं छाता क्यों नहीं लगाता और इसी तरह की अनेक बातें करते रहे। रिमझिम-रिमझिम बूंदें पड़ रही थीं। इसलिए उन्होंने छाते के बारे में पूछा था। फिर मुझे उन्होंने अपनी गाड़ी में बैठा लिया और गवर्नमेण्ट कालेज तक ले आये। गाड़ी में मैंने उन्हें अनेक अंग्रेजी कवितायें, जो मुझे कंठाग्र थीं, सुनायीं। मैंने उनको यह भी बताया कि मैं अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त हर विषय की पाँच-छः पुस्तकें और पढ़ा करता हूँ। मेरे विषय में ये सारी बातें सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मेरे माता-पिता के बारे में भी पूछा—काफी धनी हैं या नहीं। मैंने कहा, वे तो बड़े गरीब हैं। उन्होंने मुझसे यह भी पूछा कि मैं परीक्षा के पश्चात् क्या करना चाहता हूँ। मेरा उत्तर था—भविष्य के विषय में मैंने कोई योजना नहीं बनायी है। हाँ, यदि कोई इच्छा है तो केवल यही कि मेरा सारा जीवन—उसकी एक-एक श्वांस ईश्वर की सेवा में, मनुष्य की सेवा में लग जाय, मनुष्य की सेवा ही ईश्वर

की सच्ची भक्ति है और लोगों को गणित की शिक्षा देकर ही मैं लोगों की सबसे उत्तम सेवा कर सकता हूँ।

यही बातें करते-करते हम लोग गवर्नमेण्ट कालेज के अहाते, में उनके घर पर पहुंच गये। वहां वे मुझे व्यायामशाला में लिवा ले गये, वहां बहुत से लड़के तरह-तरह की व्यायाम करते थे। उन्होंने मुझ से पूछा कि मैं कौन सी व्यायाम पसन्द करता हूँ। मैंने कहा—मैं तो चारपाई की व्यायाम करता हूँ अर्थात् मैं चारपाई को ऊपर-नीचे उठाकर व्यायाम कर लिया करता हूँ। उन्होंने तुरन्त एक चारपाई मँगायी। मैंने अपने ढंग से उसके दो पाये पकड़ कर उसे सौ बार ऊपर-नीचे उठाया। तब उन्होंने अपने लड़कों से भी उसी प्रकार चारपाई उठाने के लिए कहा। वे बीस बार से अधिक न उठा सके। इस प्रकार लड़कों की अनेक प्रकार की कसरतें देखकर अन्त में उन्होंने हर एक से सलाम किया और कहा—श्रीमान् जी, मैं आपकी इस दया के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ। मेरा धन्यवाद और सलाम स्वीकार करते हुए वे हँसते हुए बिदा हो गये।

४ अगस्त १८९३. मुझे यहां अनहद शब्द बहुत सुनायी देता है। यह स्थान दिव्यानन्द से भरा मालूम होता है।

१८ अगस्त १८९३. मैंने 'योगवाशिष्ठ' पढ़ना प्रारम्भ किया है।

२५ दिसम्बर १८९३. आज दादा भाई नौरोजी, मेम्बर ब्रिटिश पार्लियामेंट ३ बजे की गाड़ी से यहाँ आये। शहर ने उनका अत्यन्त भव्य स्वागत किया। लोगों के उत्साह की कोई सीमा नहीं। कांग्रेस वालों ने तो उन्हें वही गौरवास्पद स्थान दे रखा है जो हमारे यहां ब्रह्मा और विष्णु का है। शहर में स्थान-स्थान पर अनेक सुनहरी मेहराबें बनायी गयी हैं। पत्र लिखने के समय शहर में उनका जलूस निकाला जा रहा है, हजारों की भीड़ है। लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं, हृदय उमड़ा पड़ता है किन्तु मेरा हृदय

शान्त है। आखिर यह आह्लाद किसलिए ? ईश्वर को अनेक धन्यवाद कि मेरा चित्त विचलित नहीं है !

३० दिसम्बर १८९३. आप मुझसे रुष्ट हैं। क्षमा कीजिये, मुझ अनुभव-हीन नवयुवक को क्षमा कीजिये। उसकी त्रुटियों की ओर से ध्यान हटा लीजिये। लोग चढ़ने में गिर-गिर कर ही तो घोड़े पर चढ़ना सीखते हैं। तैराक डूब कर मरते देखे गये हैं। यदि आपको रुपये की आवश्यकता हो, तो मैं यहां से कुछ भेज सकता हूँ। आप किसी प्रकार कभी मुझसे रुष्ट न हों। मैंने इस वर्ष बाहरी पुस्तकें मोल लेने में रुपया व्यय नहीं किया। केवल पाठ्य-पुस्तकें भर क्रय की हैं। मुझे पुस्तकें लेने की बुरी टेव थी, पर अब उसे छोड़ दिया है। मैं अपने ऊपर तो सदा कम से कम व्यय करने की चेष्टा में रहता हूं। हां, दूध पर अवश्य कुछ न कुछ व्यय हो जाता है। मैंने कांग्रेस का अधिवेशन देखा—केवल भारत के विभिन्न स्थानों से आये हुए बड़े-बड़े वक्ताओं और व्याख्याताओं को सुनने और देखने के लिए कि उनकी भाषण-कला का मेरे ऊपर क्या-कैसा प्रभाव पड़ता है। उस दिन मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया था जब मेरे हृदय में दादा भाई नौरोजी के स्वागत में जनसाधारण की भांति छूंछी प्रसन्नता मानने की लालसा जाग्रत न हुई थी और आज यह कहना पड़ता हैं कि कांग्रेस के प्रभावशाली वक्तृत्व से मुझे कोई विशेष आह्लादकारक प्रेरणा नहीं प्राप्त हुई।

१० जनवरी १८९४. अपनी बहन की मृत्यु का संवाद मिला था। मुझे बहुत दुःख हुआ। किन्तु अपने दुःखों की चर्चा करना ठीक नहीं मालूम होता। मैं फूट-फूट कर घंटों तक रोता रहा। मैं उसे जितना प्यार करता था उतना और किसी को नहीं।

१४ जनवरी १८९४. मैं बड़ी उलझन में हूँ। प्रश्न यह है कि मुझे डिगरी लेने के लिए नया गाउन बनवाना चाहिए या नहीं; उसमें ७०) रु० लगेंगे। किसी दूसरी जगह से उसका मंगनी मिल

जाना दुस्साध्य मालूम होता है। मैंने इस वर्ष बहुत रुपया व्यय किया है। मुझे चहल के लछमनदास मिले थे। मैं गाउन उधार लेने में असमर्थ रहा। संभव हो तो आप चहल के हकीम राय से उनका गाउन मेरे लिए मांग दें।

मेरे प्रोफेसर अपना गाउन मुझे दे रहे थे परन्तु वह अमरीकन फैशन का है। कुछ थोड़े से परिवर्तन और एक नवीन 'हुड' के साथ वह मेरा काम दे जायगा। इस काट-छाँट में पांच रुपया लगेंगे। क्या किया जाय ?

× × ×

११ अप्रैल १८९४. मैंने अभी-अभी एक नई भावना पढ़ी है--

खाली हाथ वाले श्रेष्ठ होते हैं धनवानों से।
सुरा के खाली प्याले को भरने के लिए
सुरा पात्र को ही फिर झुकाना पड़ता है।

—दाग

३० अप्रैल १८९४. लाला रामशरणदास अपने साथ रहने के लिए मेरे ऊपर बड़ा जोर डाल रहे हैं। उन्होंने कहा है—मैं अपने लिए चाहे जो कमरा पसन्द कर लूं। लाला साहब रात में अपने शहर वाले मकान में चले जाते हैं और नौकर बंगले की चौकसी करते हैं। लाला साहब को एक छोटा-मोटा साधु समझना चाहिए। वे सचमुच बड़े भले हैं !

३ मई १८९४. आप आये नहीं। दया करके मेरी किसी बात से रुष्ट न हों। मेरा शिष्य बी० ए० की परीक्षा में पास हो गया है। कितना प्रसन्न हूँ !

१० मई १८९४. संसार में अपना कुछ भी नहीं। यदि हम शान्ति चाहते हैं तो हमें अपनी देह को अपना नहीं, वरन् उसी प्रभु का समझना चाहिए। हम रात-दिन उसी का काम करते रहें।

५ जून १८९४. महाराज जी ! ईश्वर बड़ा भला है। वह मुझे बहुत ही भला लगता है। वह कितना उदार है। आपको उसके साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहिए। वह कभी कठोर होता ही नहीं ! हाँ, वह खिलाड़ी अवश्य है और कभी-कभी जिसे हम कष्ट और यातना समझते हैं, वे उसके खेल की तरंगें होती हैं। अब मुझे उस प्रभु की बहुत सी बातें मालूम हो गयी हैं। मैं आपको किसी दिन सुनाऊंगा।

जिस मेज पर मैं यह पत्र लिख रहा हूं, शक्कर के कुछ दाने बिखरे हुए हैं, और तीन-चार चीटियाँ उन दानों के चारों ओर इकट्ठी हो गयी हैं। वे सब की सब मेरे काले अक्षरों की ओर ताक रही हैं कि वे कैसे मेरी कलम से इस कागज पर निकल रहे हैं। उनकी बातों का कुछ ठिकाना नहीं। उनकी वही बातें, जैसी मैंने सुनी हैं, आपको सुनाता हूँ।

किन्तु सब से पहले मैं यह बतला दूं कि यद्यपि मेरी लिखावट बहुत भद्दी है, उसे सुन्दर किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता। फिर भी चीटियों को ऐसी विचित्र प्रतीति हो रही है जैसी हम लोगों को चीन की चित्रकारी अद्‌भुत लगती है।

सबसे पहले बोलने वाली चींटी, जिसने वितण्डावाद शुरू किया, बहुत ही छोटी, बिल्कुल बच्चा चींटी है। इस बच्चा चींटी ने कहा—देख बहन, इस कलम की कारीगरी तो देख ! कैसे गोल-गोल और सुन्दर-सुन्दर अक्षर इस कागज पर ढाल रही है। इनकी बदौलत कागज का यह टुकड़ा प्रेम-पत्र बन रहा है। आदमी उसे बड़े प्रेम से उठाते और पढ़ते हैं। सचमुच यह लेखनी कागज पर मोती बिखेर रही है ! कैसा रंग, कैसा ढंग, कुछ अक्षर तो बिल्कुल हमारे भाई-बन्धु से लगते हैं—सचमुच बड़े ही सुन्दर !

इतना कह कर पहली चींटी जब चुप हो गयी तब बड़ी चींटी–कुछ बड़ी आँखों वाली चींटी ने इस प्रकार कहना शुरू किया–मेरी

बहन, तू तो नहीं समझती कि कलम तो एक मुर्दा चीज है। उसमें चित्रकारी की शक्ति कहाँ ! यह जादू करने वाली तो ये दो लम्बी-लम्बी उँगलियां हैं; जो कलम को पकड़े हुए हैं।

बातचीत का क्रम आगे बढ़ा। अब उन दोनों से बुद्धिमान तीसरी ने बोलना शुरू किया—तुम दोनों मूर्ख हो। वे दोनों उगलियाँ तो पतली-पतली गोल लकड़ियों के समान है। भला, ये उँगलियाँ क्या कर सकती हैं ! अरे, करने-धरने वाली तो वह कलाई है जो इन उंगलियों को चाहे जैसा नाच नचाती है।

अन्त में इन चींटियों की माँ बोली—नहीं, नहीं, मेरी प्यारी बेटियो, तुम सब भूल में हो। अरे, सब काम-धाम करने वाला तो वह लम्बा-चौड़ा धड़ है।

जब चींटियों की सारी बातचीत समाप्त हो गयी तब मैंने उन्हें समझाया—ऐ मेरे ही बदले हुए अहंकार, मेरे दूसरे रूप ! यह बड़ा भारी धड़ भी निर्जीव है। वह तो आत्मा के चलने से चलता है। यह सारी चमक-दमक एक आत्मा से प्रकट होती है।

× × ×

यदि आप यहां आकर ठहरना चाहते हैं तो सदैव स्वागत है, यदि आप वहीं रहना चाहते हैं और नौकर की आवश्यकता है तो और भी उत्तम है। मैं तो जिस रूप में आप चाहें उसी रूप में आपकी सेवा के लिए तैयार हूं।

मैं कभी किसी से रुष्ट नहीं होता। मैं बड़े आनन्द में हूं। लोग बात-बात में क्रुद्ध होते और अनुत्तरदायित्वपूर्ण बातें कहने लगते हैं। हमें उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। आप उनके साथ शान्ति स्थापित कर लें। आप चाहें उनका भोजन स्वीकार करें या न करें—यह दूसरा प्रश्न है। आप जैसा चाहें वैसा करें, पर मनुष्य-मनुष्य के बीच हमें शान्ति का व्यवहार रखना चाहिए। क्षमा ही साधुओं का भूषण है। मैं जानता हूं, इस तरह ईश्वर आपको अपूर्व शान्ति देगा।

६ जून १८९४. मैं आशा करता हूं कि इसी शनिवार को मैं आपके दर्शन कर सकूंगा। मैं जल्दी न आ सकूंगा, क्योंकि एक तो इधर कोई छुट्टी नहीं है और दूसरे, अभी मुझे मेरा वजीफा नहीं मिला है। और यदि मैं बिना रुपयों के ही घर चला आऊंगा तो सब को असन्तोष होगा और मुझे भी अच्छा नहीं लगता।

८ जून १८९४. मैं बड़े आन्नद में हूँ–मेरी इच्छा है कि उसके चरणों की रज मेरी आंखों का काजल बन जाय।"

(फारसी शेर का भावार्थ)

३१ अगस्त १८९४. मैं एकान्त में रहता हूँ। आपको भी अपने मकान की छत पर दुनिया से ऊपर रहना चाहिए और 'योगवाशिष्ठ' जैसी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। छत की ऊँचाई से नीचे कहीं भी इन पुस्तकों के पढ़ने से रस नहीं मिलता। उससे कोई लाभ भी नहीं होता।

२७ सितम्बर १८९४. ठीक है, मन बड़ा चंचल है। उसे वश में करना बड़ा कठिन है। उपवास करना अच्छा होता है। हल्का भोजन और परिपक्व पाचन ईश्वर की सच्चाई का अर्द्धांश प्राप्त करा देता है।

१३ नवम्बर १८९४. मेरे पिता ने लिखा है कि अपने छोटे वजीफे में से २५ रुपये बचाऊँ और दूसरे वजीफे में से दो मास तक पांच-पांच रुपया बचाऊं। इस तरह दस रुपया हो जायंगे। इन पैंतीस रुपयों के होने पर पन्द्रह रुपया वे भेजेंगे और इस प्रकार मेरी परीक्षा-फीस के ५० रुपये पूरे हो जायंगे। किन्तु मेरा निवेदन यह है कि २५ रुपयों में से सवा बारह रुपया तो मासिक फीस के कट जाते हैं, और छः रुपया मुझे उन दिनों की गैरहाजिरी के कारण देने होंगे जब मैं रोग-शय्या पर था। इसके अतिरिक्त मुझे जाड़े के कपड़े बनवाना और खाना-पीना है। अतः ऐसी हालत में मैं पांच रुपया मासिक कैसे बचा सकूंगा? कल मैंने जाड़े की पोशाक मोल ली थी—ड्रिल का

एक पाजामा, एक वास्कट और कश्मीरे का एक कोट। इन सब में मेरे ७ रु० १२ आ० व्यय हो गये।

किन्तु ये सब बातें मैं पिता जी को नहीं समझाना चाहता। मुझे विश्वास है कि मेरे चाचा और मेरे श्वसुर मेरी सहायता करेंगे। किन्तु परवाह किसी की नहीं। ईश्वर तो मेरी सहायता करेगा ही, जैसा कि अब तक करता आया है।

१६ नवम्बर १८९४. मैं आपको नहीं लिख सका, क्योंकि मेरे पास कार्ड लेने को एक पैसा भी न था। आज रात दस बजे मैं लाला जी के दफ्तर से आया हूँ और वहां से यह कार्ड लाया हूं। मेरी पोशाक सिलकर तैयार हो गयी है। मैं अपने साथ एक दूकानदार को लिवा गया था। पोशाक बढ़िया बनी है।

७ दिसम्बर १८९४. पत्र में देरी का एकमात्र कारण था कि मेरा हाथ बिल्कुल खाली था। मैंने एक पैसा किसी से उधार भी नहीं लिया, यह सोचकर कि मुझे समय पर वजीफा मिल जायगा। पर जब वह वजीफा अभी तक नहीं मिला तब मैंने इस कार्ड के लिए एक पैसा उधार लिया है।

९ दिसम्बर १८९४. मेरी राय में पुस्तकें मोल लेते समय हमें रुपयों की ओर ध्यान न देना चाहिए। पुस्तक का मूल्य चाहे जितना ऊंचा हो, एक अच्छी पुस्तक के विषय की तुलना में वह सदैव 'नहीं' के बराबर है। उन पिछले दिनों की याद कीजिये, जब छोटी-मोटी पाण्डुलिपियों के सुन्दर संस्करणों के लिए लोगों को सैकड़ों रुपये व्यय करना पड़ते थे। रुपये-पैसे की दृष्टि से ये दिन मेरे लिए कठिन बीत रहे हैं।

१६ दिसम्बर १८९४. आप मुझ से असंतुष्ट मालूम होते हैं। मैं क्या करूँ? मुझे तो अपने हृदय में एक भी ऐसी चिट नहीं दिखायी देती, जो आपके प्रति मेरे व्यवहार में मुझे रत्ती भर परिवर्तन की सूचना दे किन्तु आप रुष्ट हैं। आप सदैव मुझे क्षमा करते रहें—इसी

में मेरा और आपका कल्याण है। "आपके कड़वे शब्द मुझे मीठे लगते हैं, आपका क्रोध मुझे हानि नहीं पहुँचा सकता। प्यारे इष्टदेव! आपका विष मुझे मार न सकेगा!" मैंने अभी तक जो कुछ सीखा है, उसके बल पर मैं कह सकता हूं कि बात-बात में भड़क उठने का एक-मात्र प्रत्यक्ष कारण आपके पेट की खराबी है। आपका पाचन ठीक नहीं मालूम होता। इस नुस्खे ने मुझे बहुत लाभ किया है, यदि आप लें तो आपको भी लाभ होगा।

३ जनवरी १८९५. आज श्री गिलबर्सटन ने चेन सहित एक घड़ी मुझे दी है। यह आप की है। आप इस जेब-घड़ी को अथवा उस टाइमपीस को जो मेरे पास है, अपनी रुचि के अनुसार ले सकते हैं।

१८ जनवरी १८९५. चिन्ता न करें। मेरी चाहे जैसी दशा हो, मैं रुपये-पैसे से आपको तंग न होने दूंगा। मैं पण्डित गोपीनाथ से मिला था। वे क्या कर सकेंगे, यह शीघ्र ही प्रकट हो जायगा।

२५ जून १८९५. आप यहां आकर मुझे क्यों नहीं देख जाते। मेरा आना कठिन हो रहा है। एक बड़ा कारण तो यह है कि मेरे पास पैसा नहीं। यद्यपि वहां जाने में सिर्फ दो रुपये लगते है, फिर भी इन दिनों दो रुपये जुटाना मेरे लिए कठिन है।

९ जुलाई १८९५. सुना है कि अमृतसर कालेज के गणित प्रोफेसर अवकाश ग्रहण करने वाले हैं। किन्तु यह केवल खबर ही खबर है। मुझे कहीं न कहीं कोई जगह मिल ही जायगी। पण्डित दीनदयाल से मिला था। उन्होंने कहा—मैं तुम्हें पहले से जानता हूं।

१५ जुलाई १८९५. पेशावर स्कूल की हेडमास्टरी खाली है किन्तु वेतन बहुत ही कम ५०-६० रुपये मासिक है।

१६ जुलाई १८९५. मैंने पण्डित दीनदयाल के पांच व्याख्यान सुने। अच्छे लगे।

१७ जुलाई १८९५. मैंने श्री बैल से पेशावर स्कूल की हेड मास्टरी के बारे में बात की उन्होंने मुझे वहां न जाने की सलाह दी।

क्यों ? मैं नहीं कह सकता। कुछ भी हो, मैं आनन्द में हूं। मैं अभी आपके पास नहीं आ सकता, क्योंकि न तो मेरे पास समय ही है और न रुपया।

२० जुलाई १८९५. श्री बेल ने मुझसे अमृतसर की नौकरी के बारे में ब्यौरेवार पूछताँछ की थी। मैं अपने प्रोफेसर से वहां जाने न जाने के बारे में पूछूंगा और विशेष-विशेष बातें जानने के लिए अमृतसर कालेज के प्रिंसिपिल से मिलूंगा। मुझे जोर की सर्दी हो गयी है। पण्डित दीनदयाल बराबर व्याख्यान दे रहे हैं।

२१ जुलाई १८९५. सुना है कि अमृतसर कालेज के प्रोफेसर एक वर्ष तक और अवकाश नहीं ले रहे हैं। श्री बेल ने मेरे बारे में पब्लिक इन्सट्रकशन के डाइरेक्टर को भी लिखा है। जैसी ईश्वर की इच्छा हो ! मैं आनन्द में हूँ।

२१ अक्टूबर १८९५ (स्यालकोट). आज मैंने स्थानीय सनातन धर्म-सभा के तत्वावधान में एक धार्मिक व्याख्यान दिया। यद्यपि उन्होंने जन साधारण के कोई सूचना नहीं बांटी थी, फिर भी अहाता आदमियों से भरा हुआ था—डिप्टी कलेक्टर और अन्य बड़े-बड़े अफसर भी आये हुए थे। मैं देश-भक्ति पर भी बोला था। मैंने देखा, लोगों की आँखें आँसुओं से भरी हैं।

२ नवम्बर १८९५ (स्यालकोट). मुझे आज अमृतसर से उत्तर मिला कि रिक्त स्थान मेरा प्रार्थना पत्र पहुँचने से पहले ही भर गया था।

२१ दिसम्बर १८९५. मुझे लाहौर के अपने ही कालेज 'मिशन कालेज' में गणित के प्रोफेसर का पद मिल गया है। इस महान् दया के लिए मुझे ईश्वर से और भी अधिक प्रेम करना चाहिए।

२३ दिसम्बर १८९५. (स्यालकोट) मैंने पिछले आठ दिनों से कुछ भी भोजन नहीं किया है केवल दूध पर रहता हूँ। किन्तु मैं

अभी-अभी तीस मील की यात्रा से लौटा हूँ और कुछ भी थकावट नहीं मालूल होती।

१ जून १८९६. मेरे पिता मुझसे बहुत रुष्ट हैं क्योंकि मैं अपनी स्त्री को यहाँ लिवा लाया हूं। वे एकाध दिन में यहाँ आ रहे होंगे। पर कौन जाने !

५ जून १८९६. आपके पत्र मिले। मैं तो पूर्णतः आपका हूं। मैं किसी भी चीज को अपना नहीं समझता। इस संसार की धन-सम्पत्ति बटोरने में मुझे कोई प्रसन्नता नहीं। अपनी स्त्री के लिए आभूषण बनवाने में भी मुझे कोई खुशी नहीं। मुझे मेज-कुर्सी आदि किसी सामान की आवश्यकता नहीं। मेरे लिए तो वृक्ष की छाया मकान का काम दे सकती है, राख मेरी पोशाक का, सूखी धरती मेरे बिस्तर का और दो-चार घरों से मांगी हुई रोटियां भोजन का। यदि मुझे इतना मिल जाय तो मैं परम सुख मानूंगा। मैं भला रुपये-पैसे के पीछे आपको रुष्ट करूँगा ? आप मुझे राख लपेट कर साधु बन जाने का आदेश दें और देखिये, मैं तुरन्त आज्ञा-पालन करता हूँ या नहीं। साथ ही साथ मैं कालेज में भी बराबर काम करता रहूँगा। जो कुछ भी मुझे वहां से मिले, वह सब आपका। उसे चाहे जैसे व्यय कीजिये। मेरी स्त्री को चाहे जो दें—मैं तो आपका गरीब गुलाम हूँ। मेरा काम तो केवल काम करना है और है अपने हृदय में भगवान् के लिए छोटा-सा पूजा का मन्दिर बनाना। अन्तर की शान्ति से मुझे वह सुख मिलता है, जो बाह्य संसार की किसी वस्तु से नहीं प्राप्त हो सकता। ईश्वर के हेतु काम कर मैं जो शान्ति पाता हूँ, वही मेरे लिए यथेष्ट वेतन है। कालेज के वेतन से मुझे कोई सरोकार नहीं। आप उसे चाहे जैसे वर्तिये। ऐसी चीजों की वृद्धि अथवा कमी से मैं किसी प्रकार घटता-बढ़ता नहीं। मैं तो साक्षात् आनन्द हूँ। मेरे पिता कल से यहाँ आये हुए हैं। इसीलिए मैं आपके पास नहीं आ सकता।

११ जून १८९६. आप के दोनों पत्र मिले। मेरे पिता असन्तुष्ट न थे। और क्यों होते ? मैं अपने शरीर से बाहर रहता हूँ। मैंने उन्हें पचास रुपये दे दिये हैं, यही कुल रकम मेरे पास इस मास के लिए थी। अब मैं नये ऋण से काम चलाऊँगा।

२० जून १८९६. मैंने मिशन कालेज में एक व्याख्यान दिया। लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ। प्रिंसिपल ने मुझे उसको पुस्तकाकार प्रकाशित करने की राय दी।

२० जुलाई १८९६. मैंने कल यहाँ भाषण दिया था। पण्डित दीनदयाल, श्री गोपीनाथ, और अन्य उपस्थित सज्जन आश्चर्य में डूब गये। सब ने मुझ पर प्रेम प्रकट किया।

६ जनवरी १८९७. २८ रुपये भेज रहा हूं। कृपया आधे मेरे पिता को दे दीजिये। मैंने उन्हें वचन दिया था। अब मेरे पास अपने लिए केवल तीन रुपये बचे हैं और पूरा महीना मेरे सामने है। मैंने पिछले मास के बिल भी नहीं चुकाये हैं, एक पैसा भी नहीं। मैं किसी विद्यार्थी की सहायता भी नहीं कर सका। और वे रुष्ट भी हैं। उलाहनों पर उलाहने आ रहे हैं ! मेरे पास रसोइया भी नहीं। परेशान हूं।

१७ अप्रैल १८९७. मेरे पैर का फोड़ा अब भी कष्ट दे रहा है। बी० ए० परीक्षा का फल निकल गया। सारे प्रान्त में इस वर्ष २५ प्रतिशत परीक्षार्थी भी पास नहीं हुए। मेरा एक शिष्य प्रान्त भर में तृतीय और दूसरा चतुर्थ आया है। बहुत से तो गणित में—मेरे ही विषय में अनुत्तीर्ण हैं। मुझे इस वर्ष कोई वेतनवृद्धि नहीं मिल सकती। परिश्रम मैंने इतना किया और परिणाम नहीं के बराबर। मैं कितना उदास और दुखी हूं !

१ अगस्त १८९७. मैं इस नये मकान में आ गया हूं। यह लाहौर की हर चरनों की पौड़ियों के पास है—उस पुण्यवती गंगा के पास जो विष्णु भगवान् के चरणों को धोया करती है। यह सर्व-

प्रकार उचित है कि तीर्थराम (राम का तीर्थ) भी उनके चरणों के समीप निवास करे। जब से यहां आया हूँ, मैं भगवान् के चरणों में रहता हूँ और अपनी ही आत्मा की पवित्र गंगा में स्नान करता हूँ।

१७ अगस्त १८९७. अपने काम-काज और दैनिक व्यवहार में लगे रहने पर भी यदि हमारा मन भगवान् में डूबा रहे, हमारी चित्तवृत्ति उस अलौकिक लोक के अनिर्वचनीय शिखरों से नीचे न उतरे तब सचमुच धन्य है हमारा जीवन! अन्यथा निश्चय ही यह मानव जीवन व्यर्थ है।

२५ अक्टबर १८९७. (यह पत्र पिता को लिखा गया था।)

पूज्य पिता जी! आपको बारम्बार नमस्कार! आपके पत्र आये और अपने साथ आनन्द और परम सन्तोष भी लाये। आपके पुत्र तीर्थ राम का यह शरीर तो अब बिक गया, वह ईश्वर के हाथों बेच डाला गया। वह शरीर अब उसका नहीं। आज दीपावली है, मैंने अपना शरीर जुए में हार दिया और बदले में परम पिता परमात्मा को जीत लिया। अब आपको जिस चीज की आवश्यकता हो मेरे स्वामी से मांगिये। वह स्वयं आपको देगा अथवा मुझे आपके पास भेजने की प्रेरणा करेगा। पर आप एक बार पूर्ण विश्वास के साथ उससे मांगिये तो सही।

१९/२० दिन हुए, परमात्मा ने सब काम, सारे कर्तव्य, सारे ऋण चुकाने का पूरा भार अपने ऊपर ले लिया है? आप के काम भी वह फिर इसी प्रकार क्यों न करेगा? आप को धैर्य न छोड़ना चाहिए। जैसी उसकी इच्छा होती है, उसी प्रकार सब मनुष्यों को काम करना पड़ता है। आत्म-साक्षात्कार के जीवन का धन ही तो हम ब्राह्मणों का सर्वोपरि धन है। इस भीतरी सम्पत्ति को छोड़कर बाहरी सम्पत्ति के पीछे दौड़ना हम लोगों को कैसे शोभा दे सकता है! एक बार ही तो अपनी अन्तरात्मा के आनन्द का स्वाद चखिये।

२३ अगस्त १८९८. (हरद्वार से ऊपर ऋषिकेश से)

आपने अपने पत्र में मुझे घर लौटने का उत्साह दिलाया है। आप का पत्र गंगा की बहती धारा में विसर्जन कर दिया गया। आश्चर्य आप भी मुझ से यह पूछते हैं कि क्या मुझे अपने कर्तव्यों का पालन न करने के कारण कोई दुःख नहीं होता ?

दुख किस बात का ?

"इन चीजों की उत्पत्ति कहां से हुई ? कौन जाने !

इन चीजों का अन्त कहाँ होगा ? कौन जाने !

जो कुछ थोड़ा सा पता है, वह केवल बीच ही बीच में—वर्तमान में ! और जब सब कुछ अज्ञात ही अज्ञात है—

तब दुख काहे का ?"

और लोग क्या कहेंगे ?

उत्तर में यह उर्दू शेर काफी है—

"अपनी पगड़ी से अपना ही कफन
बना मैं आया कूचे यार में—
ताना लगाले जिसका जी चाहे !
मुझे ऐसे-वैसों की परवाह भी नहीं।"

फिर आपने आज्ञा-पालन का आदेश दिया है। मैं आपकी आज्ञा का ही पालन कर रहा हूँ। अपने शरीर के पंचनद में से द्रुत गति के साथ भगवान् के मन्दिर की ओर बढ़ रहा हूँ। मैं तो सत्य के साथ घुलमिल जाना चाहता हूँ।

आधी रात होने वाली है। पास में न कोई आदमी है और न कोई भूत-प्रेत, भीतर निजानन्द के उफान की धूमधाम है और बाहर माता जाह्नवी के प्रवाह का संगीत। मेरे भीतर शान्ति, शान्ति, शान्ति का महासागर है और मेरे बाहर कल्याण का साम्राज्य। यह मेरे मिलन की रात्रि है, इसे अंधेरी कौन कहता है—यह तो मिलन की घड़ी ने गोपनीय संसार के मुख पर काला परदा डाल रखा है।

मेरा मतलब है कि मिलन की रात्रि में भीतर और बाहर—

दोनों लोक घुलकर बह गये हैं । नेत्रों से अमृत का नद बह रहा है । ऐसे समय में मुझे सांसारिक सुखों की याद दिलाना ! राम ! राम !

मेरे घरवालों से कह दीजिये कि यदि मुझसे मिलने की इच्छा है तो केन्द्र पर आकर मिलें, जहां सब मिलते हैं, न कि परिधि पर, जहां कोई नहीं मिलता ।

* * *

गंगा जी के उन तटों पर बैठना, जहां स्वच्छ निर्मल जल इस प्रकार बहता है, जैसे संसार में शुभ्र चन्द्रिका की बाढ़ आयी हो ।

जब रात्रि में पूर्ण सन्नाटा छा जाता है,

तब प्रभु के नाम-स्मरण के आन्नद से रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।

जहां कष्ट और यातना से मुक्ति रहती है, सांसारिक जीवन आँखों से ओझल हो जाता है, ऐसी स्थिति में 'शिव' 'शिव' जाप करते हुए प्रेमानन्द के आंसू बहाना, जिससे हमारे नेत्रों का जीवन सफल हो जाय ! हे भगवान् ! मेरे लिए वह पुण्य घड़ी कब लाओगे !— भर्तृहरि ।

ऐसे दिव्यानन्द के अनुभवार्थ राजा अपने सिंहासन त्याग देते हैं, देवता पवित्र-सलिला भागीरथी के तट पर चक्कर काटा करते हैं । फिर क्या मेरा ही भाग्य ऐसा फूटा है, क्या मैं ही ऐसा अभागा हूं कि यहां पहुंच कर भी मुझे घर-द्वार और अपने कर्तव्य-अकर्तव्य की चिन्ता करनी होगी ।

लोग तीर्थों में दौड़े जाते हैं, क्या कभी तीर्थ भी लोगों के पास दौड़ते हैं ? मेरे घर वालों से कह दीजिये कि उन्हें स्वयं तीर्थ राम (तीर्थों के ईश्वर) के चरणों में चलना चाहिए । अन्यथा उन्हें भगवान् तीर्थ राम के दर्शन कैसे हो सकते हैं ! इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं । जब तक सत्य की गंगा मेरे घर में नहीं बहने लगती, मैं उसमें नहीं रह सकता, वहां मेरा हृदय कैसे श्वांस ग्रहण करेगा ? फिर मैं वहां कैसे रहूंगा !

क्या किसी ने कभी मृतक के पास भी लौटने का संदेश भेजा है ? जिन्हें मृतकों के दर्शनों की इच्छा हो वे स्वयं मर जावें । मैं मर चुका ! मैं शरीर में रहते हुए ही मर गया । अब मेरे घरवाले मुझे वापस बुलाने की चेष्टा न करें । हां, यदि वे भी मेरे जैसे बन जावें तब तो मिलना कुछ भी कठिन नहीं ।

यदि मुराली वाला मुरारि प्यारा कृष्ण बन जाय, तब तो तीर्थों का भी तीर्थ, पवित्र करने वाला वहां आ सकता है । जहां शान्ति की गंगा नहीं बहती, वहां मेरा आना नहीं हो सकता । आखिरकार, सभी की मरी हुई हड्डियां आना तो हैं यहीं पर, फिर जीते-जी स्वेच्छा से ही क्यों न यहीं अड्डा जमाया जाय !

(इसी ध्वनि का यह एक दूसरा पत्र है ।) मैं क्या अकेला हूँ ?

न कोई शिष्य पास है और न कोई नौकर-चाकर ! मनुष्यों की बस्ती भी बहुत दूर है ! यहां तो मनुष्य की छाया का भी नाम नहीं ! एकदम सुनसान, वीरान, गम्भीरतम एकान्त है । रात्रि नक्षत्रों से पूर्ण है, अर्द्ध निशा का समय है । पर क्या मैं सचमुच अकेला हूं ?

नहीं, मैं अकेला नहीं ! मेरी नौकरानी—वर्षा की बौछार अभी-अभी आयी थी, वही मुझे नहला गयी । मेरा वायु भी मेरे लिए सर्वत्र दौड़-धूप मचा रहा है । वह देखो, मेरा ही कोई सेवक अभी-अभी मेरे आदेश के प्रत्युत्तर में कह गया है—आज्ञा ! वह या तो चीता होगा या हाथी ! मेरे हजारों सेवक इन झाड़ियों में मेरे साथ डेरा डाले पड़े हैं । उनको छोटी-छोटी गुफायें सौंप दी गयी हैं । फिर मुझे कोई कैसे और क्योंकर अकेला कह सकता है ?

किन्तु नहीं, मैं सचमुच अकेला हूँ ! यहां न कोई गुलाम है, न कोई सेवक और न कोई शत्रु और न मित्र ! वह वायु नहीं, वह तो मैं ही हूँ, वह चन्द्रमा नहीं है, वह तो मैं ही हूँ, वह ईश्वर नहीं, मैं ही हूँ । वह प्रियतमा नहीं, मैं ही हूँ । मिलन किसे कहते हैं, ? केवल मैं ही मैं हूँ । लो, संसार न जाने कहां छिप गया है !

क्या मैं आलसी हूँ ?

मेरे मस्तिष्क का मानसरोवर शान्ति से भरा हुआ है। और आनन्द की धार मेरे हृदय से बह निकली है। मेरा रोम-रोम आनन्द सागर में डूबा है। विष्णु के हृदय में शान्ति का ऐसा अनन्त सागर उमड़ा कि वे उसे अपने वक्षस्थल में न संभाल सके, इसलिए उनके चरणों से पवित्र सलिल की धार गंगा के रूप में बह निकली। विष्णु की ही तरह तीर्थराम प्रभु नारायण के प्रेमानन्द से भरा हुआ है। वह अपना आनन्द अपने भीतर नहीं बटोर पाता, इसलिए वह भी अपने में से गंगा की वेगवती धारा संसार के कल्याणार्थ बाहर फैंक रहा है। फूट-फूटकर आनन्द और अभ्युदय की मधुर तरंगें चारों ओर बिखर रही हैं। फिर उसे कौन सुस्त कहता है ! मैं कहता हूँ— आइये, आइये तीर्थराम को देखिये तो सही, तुम देखते ही मुक्त हो जाओगे ! वह साक्षात् गंगा है, साक्षात् राम, परमानन्द, दिव्यानन्द। स्वयं शिवरूप, ब्रह्मरूप।

१९ सितम्बर १८९८. (हरद्वार) जब मैं बाहर देखता हूँ तो कण-कण से यही पुकार सुनायी देती है तू है, तू है। जब मैं भीतर झांकता हूँ तो सुनायी देता है—मैं हूँ, मैं हूँ। बस, ढोल और वंशी का यही मधुरतम संगीत मुझे सुनने दो, मैं और कुछ नहीं सुनना चाहता।

मैं हूँ क्या ? मैं हूँ कहां ? मेरे प्रासाद में कौन निवास करता है ? कौन, कौन ? इन कौन, कैसे, कहां, क्यों और कब का मुझ में प्रवेश नहीं—मेरे भीतर नहीं आ सकते। हरद्वार के बन्दरों ने मेरे सोचने-विचारने वाले मस्तिष्क को छीन लिया है, गंगा जी ने मेरे अन्तःकरण में बाढ़ मचा दी है, चीलों ने मन नोच-नोच खा डाला है, नदी की मछलियों ने मेरे अहंकार, मेरेपने को चुन-चुन कर खा लिया है। वायु ने पापों को चारों ओर बिखेर कर उड़ा दिया, भस्म कर दिया ! ॐ

सातवाँ परिच्छेद

संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन

एक बार उन्होंने देखा कि उनके पास महीने भर के लिए केवल तीन पैसे प्रतिदिन के हिसाब से बचे हैं। मन में कहा—कुछ परवाह नहीं, ईश्वर मेरी परीक्षा लेना चाहता है, मैं इतने से ही संतोष करूँगा। इन दिनों वे एक पंजाबी नानबाई की दूकान में जाया करते थे और सवेरे के भोजन में दो पैसे तथा सायंकाल के भोजन में एक पैसा व्यय करते थे। किन्तु कुछ दिन बाद उस दूकानदार ने कहा—जाइये साहब, आप रोज आते हैं और केवल तीन पैसे की रोटियाँ लेते हैं, उनके साथ की दाल का तो कुछ देते नहीं। दाल मुफ्त में ले जाते हैं; नहीं, साहब मैं आपके हाथ रोटियां नहीं बेच सकता। उस दिन से बालक तीर्थराम एक ही समय खाकर दिन काटने लगे!

ऐसी दरिद्रता में उन्होंने अपना अध्ययन-कार्य पूरा किया, कुछ तो विश्वविद्यालय के वजीफे प्राप्त कर और कुछ दूसरे बच्चों को निजी तौर से पढ़ा कर—किन्तु नहीं, इसके साथ ही उन्हें अपनी स्त्री और बच्चों की देखभाल भी करना पड़ती थी। गुजरांवाला के धन्ना भगत की सेवा और माता-पिता की सहायता का भार भी उन पर था। विद्यार्थी-जीवन में ही उनके पिता उनके घर वालों को उनके पास छोड़ गये थे, और क्यों न छोड़ जाते! राम ने तो अपने पिता की इच्छा के प्रतिकूल कालिज की शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया था। उनके पिता की एकमात्र इच्छा थी कि लड़का मेट्रिक पास करके नौकरी द्वारा परिवार के लिए कुछ कमाने लगे। हां, जब

इसी लाहौर में उनके अच्छे दिन आये तो इनका घर अपने गांव के मेहमानों से भरा रहने लगा और राम की भलमनसाहत, वे हर महीने कर्ज ले-लेकर उनका आगत-स्वागत करते थे। वे स्वयं दूध के बड़े प्रेमी थे और इसलिए जो भी ऐरा-गैरा उनके घर पहुँचता उसे वे खूब औंटा हुआ दूध पिलाते। ज्ञान के जिज्ञासु भी वश भर राम के पास ठहरते और भर-भर प्याला दूध पीते, क्योंकि राम के आतिथ्य का ढंग सचमुच निराला और बड़ा आकर्षक था। वे सदा सादा कपड़े पहनते थे—पुरानी चाल के पंजाबी खद्दर के बने हुए। ग्रेजुएट हो जाने के बाद भी उन्होंने सदा शुद्ध खद्दर के ही वस्त्र पहने। उनकी स्त्री ही उनके लिए कपड़े बनाती और सीती थी। अपने छोटे से जीवन में उन्होंने सदा अपने ऊपर बड़ी कड़ी नजर रखी। इस बात में सदा सावधान रहे कि कहीं कोई फिजूल अनावश्यक इच्छायें तो उनके हृदय में नहीं जम रही हैं। अपने ऊपर वे कुछ व्यय नहीं करते थे। अमेरिका में जब राम हिन्दू धर्म पर व्याख्यान देने में कड़ी मेहनत करते थे, तब भी वे अपने मित्रों से कहा करते थे—राम रोज थोड़ा सा दूध और कुछ फल आप लोगों से ले लेता है, क्या इसके लिए आप उसे क्षमा न करेंगे!

गणित में एम० ए० पास करने के बाद राम को नौकरी खोजने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उन्हें देख-सुनकर ज्ञात हो सकता है कि भारतवर्ष में उस समय किसी गरीब विद्यार्थी के लिए जीवन के कारोबार में प्रवेश करना कितना कठिन था! उनके पत्र एक प्रकार से घोर निराशा की उस सर्वसामान्य अवस्था के सूचक हैं जिसमें होकर पेट पालने के लिए प्रायः सभी भारतीय ग्रेजुएटों को गुजरना पड़ता है। भारतवर्ष में शिक्षा सरकारी नौकरियों को ही सर्वोच्च ध्येय बनाकर प्रारम्भ हुई। और ये नौकरियां भी वे थीं जिन्हें उच्च इम्पीरियल सर्विस के पदाधिकारी भारत-भूमि के दीन-हीन लाडलों में दयावश बांट दिया करते थे, जैसे बड़े-बड़े

श्रीमानों के भोजन-भाण्डार की बचत नौकरों-चाकरों को मिलती रहती है। विदेशी शासन सत्ता के अनिवार्य फलस्वरूप भारतवर्ष में शिक्षा का मुख्य ध्येय आज भी यही बना हुआ है कि आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के ग्रेजुएटों की इच्छाओं के पालन के हेतु गुलाम तैयार किये जायँ। अतः भारतवर्ष में प्रचलित शिक्षा की व्यवस्था—स्वामी राम के समय में और आज भी उतनी ही गंदी है, जो उसके अनुयायियों को अपनी इच्छा के अनुसार व्यवसाय चुनने की उतनी भी स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करती जितनी कि एक मामूली मजदूर को प्राप्त रहती है। मजदूर काम करने के लिए तैयार भर हो और उसके पेट की रोटियां कहीं नहीं गयी हैं। कुछ घंटे काम करने के बाद वह पैर पसार कर सो सकता है। काम करते समय स्वयं अपना स्वामी है, उसे अपने मालिकों की धौंस सहने की कोई आवश्यकता नहीं। हां, अब बड़े-बड़े शहरों में बेशक कुछ ऐसे पूंजीवादी संगठन हो रहे हैं, जहां उसे भी गुलाम बनाकर सब तरह से लाचार कर दिया जाता है। किन्तु भारतीय ग्रेजुएट का भाग्य ही कुछ दूसरा है ! भारतीय शिक्षा और उसके मन्तव्य को धिक्कार !

स्वामी राम की कृष्ण-भक्ति के बारे में स्वामी नारायण जो उन दिनों राम के घनिष्ठतम संपर्क में थे, इस प्रकार लिखते हैं—स्वामी जी रात और दिन कृष्ण के ध्यान में मग्न रहते थे। कृष्ण का नाम सुनते ही वे तन-बदन की सुध भूल जाते थे। यदि कहीं से वंशीध्वनि उनके कान में पड़ती तो उन्हें यही भ्रम होता कि भगवान् कृष्ण ही वंशी बजा रहे हैं। लाहौर में वे घंटों रावी नदी के किनारे भगवान् के ध्यान में डूबे हुए घूमा करते थे। उन्हें और कोई बात न सूझती थी, वे सदा गम्भीर से रहते थे। उनके एक दूसरे समीपवर्ती मित्र ने राम के ध्यान के बारे में मुझे इस प्रकार बताया था—एक बार मैंने स्वामी राम को रावी नदी के किनारे देखा। आकाश में भूरे बादल छाये थे। स्वामी राम जोर-जोर से चिल्ला रहे थे—

देखो, देखो, वही तो, वही तो मेरा कृष्ण है। ऐ भूरे रंग वाले बादल! मेरे ईश्वर, मेरे कृष्ण का रंग भी तेरे जैसा है। तू क्यों मुझे पागल बना रहा है? तूने क्यों मेरे कृष्ण को छिपा रखा है? ओ कृष्ण, तू कहां है? ओ बादल! तू मुझे उसका पता क्यों नहीं देता। तू तो आकाश में उड़ रहा है, मेरा कृष्ण कहां छिपा है? ओ हो, तू भी काला होता जाता है। ऐ बादल, क्या सचमुच तुझे मेरे कृष्ण का पता नहीं? क्या तू भी उसी के वियोग में काला पड़ता जाता है? ओ भगवान्, क्या मुझे तेरे दर्शन न होंगे! दुनियां मुझे काटने दौड़ती है और तू दिखायी नहीं देता। बताओ कहाँ जाऊँ और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ! ओ कृष्ण, तेरे लिए ही तो मैंने अपने सगे-सम्बन्धी और इष्ट-मित्र छोड़े, तेरे लिए ही मैंने झूठा आदर और झूठी लज्जा छोड़ी, पर है तू कहां? बादलों को फटता हुआ देखकर राम फिर रो पड़े। ऐ बादल! तुम तो मेरे भाई हो, जाते हो तो जाओ, पर मेरे कृष्ण से कहना अवश्य कि आकर देखें तो सही राम की आंखों में कैसी झड़ी लगी है। देखो, उससे यह कहना मत भूलना कि—

यदि लूटना हो तुझे वर्षा का मजा—
तो आ, मेरी आँखों में बैठ!
यहाँ काले, भूरे और लाल, तरह-तरह के बादल
सदा झड़ी लगाये रहते हैं।

ओह मेरा जीवन! कितना लम्बा, कितना बड़ा है तू! मैं तो अधीर हो रहा हूं। या तो मेरी प्यास बुझा दो या फिर मुझे मार डालो! तू सूर्य को चमक देता है, चन्द्रमा को सौंदर्य, फूलों को सुन्दर रंग और सुगंध, फिर मुझे दर्शन और ज्ञान देने में क्यों कृपण बनता है? इसी प्रकार कृष्ण-कृष्ण रटते हुए वे अन्त में बेसुध हो गये।

अपने भावोद्रेक में अतिशय आनंद के मारे उनकी आंखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती थी। एक बार किसी पंडित को रामायण

पढ़ते हुए सुनकर वे जोर से रो पड़े। उनके ऊपर उस कथा का ऐसा वेदनापूर्ण प्रभाव हुआ कि अन्त में पंडित को अपनी पोथी ही बंद कर देना पड़ी।

एक दिन राम चिल्ला उठे—

अरी आँखें! तुम्हारा क्या होगा?

यदि कृष्ण के दर्शन नहीं कर सकतीं, तो बंद हो जाओ, सदा के लिए मुंद जाओ। ओ हाथ! यदि तुमने भगवान् के चरण-कमलों का स्पर्श नहीं किया तो फिर मेरे किस काम के? सूख जाओ, लुंजपुंज क्यों नहीं हो जाते? हे प्रभु! यदि जीवन के बलिदान से ही तुम्हारे दर्शन होते हैं तो ये प्राण भी तुम्हें भेंट हैं।

ऐसा कह कर वे रोने लगे, आँसुओं की झड़ी लग गयी, कमीज तर-बतर हो गयी—यहां तक कि अन्त में तन-बदन की सुधि जाती रही। जब चैतन्य हुए तो एक काले नाग को फन फैलाये अपने सामने पाया। फिर क्या था, झट से उसकी ओर लपके—हे प्रभु, आओ, आओ, नाग के रूप में ही दर्शन दो! किंतु हे प्रभु, मैं तो तुम्हारा वह सौंदर्य देखना चाहता हूं, जिस पर गोपिकायें पतंगों की भाँति झपटती थीं। इतना कहना था और फिर बेसुध!

उनके उस मित्र ने, जो यह सब तमाशा देख रहा था, कमरे में आकर कहा–गोस्वामी जी! कृष्ण तो तुम्हारे भीतर हृदय में है। तुम बाहर किसे ढूंढ रहे हो?

पागलों की भाँति वे चिल्ला उठे—मुझ में! और कमीज को चीर-फाड़ कर, अपने नाखूनों से अपनी छाती नोचने लगे। और वे फिर बेसुध हो गये और घंटों उसी प्रकार अचेत पड़े रहे।

स्वामी नारायण कहते हैं कि उन्हीं दिनों एक बार उन्होंने राम को यह कहते सुना था—धन्य है आज, मैंने कृष्ण के दर्शन किये। वे आये, जब मैं नहा रहा था, मैंने उनकी पूरी झांकी देख

ली। किंतु आये और चले गये, इस दुखिया का घाव हरा हो गया, अब उनके बिना चैन कहाँ ! उन दिनों स्वामी जी को देख कर सूरदास और मीराबाई की याद आती थी।

राम बड़े अध्यवसायी विद्यार्थी थे, जैसा कि स्वयं उनके पत्रों से ज्ञात होता है। स्वामी राम ने मुझे एक बार अपने विद्यार्थी-जीवन का एक ऐसा अनुभव सुनाया था, जिसका उल्लेख यहाँ अप्रसांगिक न होगा। उन्होंने कहा था—एक रात को राम ने उच्च गणित के कुछ बहुत ही कठिन और जटिल प्रश्न हल करने के लिए उठाये और मन में यह प्रण कर लिया कि सूर्योदय के पहले ही इन सबको हल कर डालूंगा, और यदि हल न कर सका तो यह सिर इस तन से पृथक् कर दूंगा। इसी अभिप्राय से राम ने अपनी आसनी के नीचे एक तेज खंजर भी रख लिया। निस्संदेह राम का यह काम उचित नहीं कहा जा सकता किंतु सही हो या गलत राम तुम्हें बताना चाहता है कि ऐसी ही कठोर साधना से राम ने उस ज्ञान का सम्पादन किया है जो तुम इस समय उसके पास देखते हो। अच्छा, सुनो, उन चार प्रश्नों में से तीन प्रश्न तो आधी रात्रि तक हल हो गये। किंतु चौथा—चौथा बड़े चक्कर में डाले हुए था। राम उसे किसी प्रकार हल न कर सका और उषा की प्रथम रश्मियां वातायन में से झांकने लगीं। अपने प्रण का पक्का राम उठा और तेज खंजर लेकर मकान की छत पर जा चढ़ा। नहीं, उसने खंजर की बारीक नोक गर्दन पर रख भी दी। खंजर का रखना था कि उसने तुरंत थोड़ी सी खरोंच बना दी और बूंद-बूंद करके लोहू टपकने लगा किंतु लो, राम हक्का-बक्का रह गया। प्रश्न का हल आकाश में सुनहली अक्षरों से लिखा हुआ चमक रहा था ! राम ने उसे देखा और नीचे आकर कागज पर लिख लिया। शायद उससे अधिक मौलिक कार्य कभी न हुआ हो। गवर्नमेंट कालेज के प्रोफेसर मुकर्जी तो आश्चर्य में डूब गये। राम ने ऐसा अनेक बार किया था, और

ऐसे ही कठिन परिश्रम के द्वारा उन्होंने गणित का अगाध ज्ञान सम्पादन किया था।

इसी परिस्थिति में हम राम के उस करुणाजनक विदाई के गीत का मर्म समझ सकते हैं जो उन्होंने लाहौर के स्टेशन पर तब गया था जब वे लाहौर को सदा के लिए छोड़ रहे थे—

"अलविदा मेरी रियाजी ! अलविदा !
अलविदा, ऐ प्यारी रावी ! अलविदा !
अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन ! अलविदा !
अलविदा ऐ दिल ! खुदा ले अलविदा !
अलविदा ऐ दिल ! खुदा ले अलविदा !
अलविदा राम ! अलबिदा ऐ अलविदा !"

इस प्रकार अपने अतिशय प्रिय विषय—गणित शास्त्र और अपने कालेज को अश्रुपूर्ण नेत्रों से अन्तिम प्रणाम करके राम ने लाहौर से प्रस्थान किया था।

निस्संदेह वे निजी और व्यक्तिगत चीजों के त्याग का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। गणित का अध्ययन तो शायद उनके सभी व्यक्तिगत सम्बंधों और सम्पर्कों से सर्वाधिक व्यक्तिगत था। उसे भी बिदायी दी गयी। राम स्वभाव से ही भावुक थे, उनका हृदय बड़ा कोमल था। ऐसे भावप्रवण स्वभाव में त्याग की कठोरता का जन्म कैसे हुआ—कहा नहीं जा सकता। राम को एकांत से अतिशय प्रेम था। वे ईश्वर-चिंतन और ईश्वर-साहचर्य के अर्थ महीनों वनोवास किया करते थे—यह बात उनकी प्रकृति के अनुकूल ही थी। किंतु उन जैसे अत्यंत भावुक और काव्यशील स्वभाव में दर्शन शास्त्र-जनित कठोर और पूर्ण वैराग्य का उदय कैसे हुआ—यह एक विचित्र बात थी ! यथार्थ में उन्होंने जीवन के सम्बंध में कुछ अहंकारशून्य, विचार-प्रधान, तार्किक सिद्धान्त स्थिर कर लिये थे, जिनके बल और

आधार पर ही वे अपने हृदय की कोमलता, भावुकता और काव्य-शीलता को रोकते और उसे नियंत्रण में रखते थे। और इसलिए अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अधिक अनुकूल न होने पर भी वे उस अद्वैत दर्शन का अनुसरण करते रहे, क्योंकि वही उनकी दृष्टि में अंतिम तथ्य था।

आठवां परिच्छेद

संन्यास से पूर्ववर्ती जीवन

मेरी अपनी राय में राम ने जिन कारणों से संन्यासी के भगवा वस्त्र पहने, उनमें से एक कारण था लाहौर में स्वामी विवेकानन्द से उनकी भेंट ! *

---

*एक दूसरे महात्मा जिनका स्वामी राम पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था, वे थे द्वारका मठ के शंकराचार्य स्वामी माधवतीर्थ। वैसे स्वामी राम अपने अवकाश के समय वेदान्त के योगवाशिष्ठ जैसे उत्तम ग्रन्थ हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में पढ़ा करते थे, पर जब उक्त शंकराचार्य एक बार लाहौर पधारे और राम को सनातन-धर्म-सभा का मंत्री होने के नाते उनकी सेवा का अवसर मिला, तब उन्होंने राम को आदि शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का मर्म, उनकी प्रस्थान-त्रयी के भाष्य का सारांश भले प्रकार समझाया। राम में विवेक, वैराग्य, जिज्ञासा और मुमुक्षता की कमी तो थी नहीं, यही उत्तम लक्षण देखकर स्वामी माधवतीर्थ ने विशेष ध्यान देकर नवयुवक राम को आत्मसाक्षात्कार के लिए उत्प्रेरित किया था और कहना न होगा कि शंकर के वेदान्त का रहस्य तुरन्त ही राम के हृदय में ऐसा घर कर गया कि उसका रस, तत्व आजीवन उन्हें विस्मरण नहीं हुआ और वे स्वयं उसकी मूर्ति बन गये। स्वामी माधवतीर्थ जान गये थे कि एक दिन ऐसा अवश्य आयगा, जब राम सांसारिक जीवन से एकदम उपराम हो जायंगे। इसलिए उन्होंने राम को आत्मसाधना के पथ का भी निर्देश किया था और कह दिया था कि जब भी तुम्हारी प्रबल इच्छा हो, तुम संन्यास ले सकते हो। इसलिए जब राम ने

लाहौर पहुंच कर स्वामी विवेकानन्द ने पंजाब निवासियों में एक नयी जान सी फूँक दी, उनके हृदय में नये-नये विचार उठने लगे। उनका देवताओं जैसा धाराप्रवाह भाषण, उनका सर्वस्व बलिदान करने वाला त्याग, उनकी शक्ति, उनका व्यक्तित्व, उनका विशाल मस्तिष्क—सब ने मिलकर लोगों पर गहरा प्रभाव डाला। स्यात् लाहौर में 'वेदान्त' पर दिया हुआ उनका व्याख्यान उनकी वक्तृत्व-कला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था। उन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द को गुरु गोविन्द सिंह की अमृत जयन्ती देखने का अवसर मिला और उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। अपने प्रवचन में स्वामी विवेकानन्द ने 'पंजाब के' नरशार्दूल गुरु गोविन्द का वर्णन किया। स्वामी जी ध्यानसिंह की हवेली में ठहरे हुए थे। और मुझे आज की इस घड़ी में भी वह दृश्य स्पष्ट रूप से दिखायी देता है जब स्वामी जी का भाषण सुनने उस दिन हवेली के विशाल भवन में लाहौर का साफाधारी कितना विशाल जन-समूह इकट्ठा हुआ था। मैं उस समय में निरा बालक ही था, पंजाब विश्व-विद्यालय की इण्टर परीक्षा के लिए कालेज में पढ़ रहा था। किन्तु उस दृश्य की जो छाप मेरी स्मरण-शक्ति पर पड़ी, वह किसी प्रकार धोयी नहीं जा सकती। हवेली ठसाठस भर गयी थी, और बहुत से मनुष्य आंगन में जमा हो गये थे। स्वामी जी के दर्शनों के लिए उत्सुक सज्जन कंधे से कंधा भिड़ाकर भवन में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे थे। स्वामी जी ने

संन्यास लेकर किसी और नाम के स्थान में अपने गृहस्थी के नाम तीर्थराम केवल उल्टा कर दिया—रामतीर्थ, तब इससे उनके दोनों अभिप्राय हल हो गये। एक तो यह कि अब वे पूर्णतः प्रवृति मार्ग से निवृति मार्ग में आ गये हैं और दूसरे यह कि जिन शंकराचार्य ने उन्हें संन्यास लेने की अनुमति दी थी, वे स्वयं 'तीर्थ संन्यासी' थे। इस प्रकार मानों राम ने अपना स्वामी रामतीर्थ नाम रख कर अपने पथ-प्रदर्शक के प्रति अपना आभार प्रकट किया था।

जब ऐसी उत्सुक और प्रबन्ध से बाहर जाने वाली भीड़ देखी तो बोले—मैं खुली हवा में भाषण दूंगा। हवेली का घेरा, आँगन बहुत बड़ा है और उसके बीच में मन्दिर के आकार का एक ऊंचा प्लेट-फार्म भी है। स्वामी जी उस चबूतरे पर चढ़ गये और उस समय उनकी छबि—उत्तम स्वास्थ्य से दमकता हुआ विशालकाय शरीर, संन्यासी की रक्तवर्ण वेषभूषा, प्राचीन ऋषियों की याद दिलाने वाली मुखमुद्रा, बड़ी-बड़ी मनोहर आंखें, जिनका जादू सारी हवा में व्याप्त हो रहा था ! बदन पर एक दुपट्टा उन्होंने लपेटा हुआ था और सिर पर पंजाबी फैशन में नारंगी रंग का साफा बांधे थे। थोड़ी देर में जब वेदान्त-केसरी ने गरजना प्रारम्भ किया और घंटों दहाड़ते रहे, तब पंजाबी ऐसी शान्ति से सुन रहे थे, जैसे जादू मार गया हो। उनके अन्तःकरण अपने आप मानसिक क्षितिज की आनन्ददायक ऊंचाइयों पर सैर करने लगे।

लाहौर चकित हो गया, उसी प्रकार जैसा कि सुदूरवर्ती अमेरिका इस साहस और शक्तिसम्पन्न संन्यासी से चकित हुआ था। और क्यों न होता, उन्हें तो परमहंस रामकृष्ण जैसी महान् आत्मा से उत्प्रेरणा प्राप्त हुई थी। दर्शकों को ऐसा मालूम होता था कि जैसे इस महान् व्यक्ति में स्फूर्ति और ज्ञान की लौ लपलप जल रही हो। उन दिनों लाहौर में प्रोफेसर बोस का सरकस भी खेल दिखाने आया हुआ था और स्वामी विवेकानन्द का 'भक्ति' विषय पर एक दूसरा व्याख्यान इसी बोस सरकस के पण्डाल में हुआ था।

मैं उस समय स्वामी राम को नहीं जानता था किन्तु लाहौर में एक वही व्यक्ति थे जिन्होंने इन व्याख्यानों का प्रबन्ध किया था। उनकी राय थी कि विवेकानन्द जब वेदान्त पर बोलते थे तभी उनकी प्रतिभा चरम सीमा पर पहुंचती थी, क्योंकि वही उनका असली विषय था। स्वामी राम ने मुझसे कहा था—बोस के सरकस से स्वामी जी के साथ ध्यानसिंह की हवेली को जाते समय मैंने कहा था

कि भक्ति-विषयक व्याख्यान में उनकी प्रतिभा का उत्कर्ष चरम सीमा पर नहीं पहुँचा। तब इसके बाद उनके आगामी व्याख्यान के लिए वेदान्त का विषय घोषित किया गया। स्वामी विवेकानन्द के साथ राम की इस भेंट का परिणाम, निस्संदेह, यह हुआ कि यौवनसम्पन्न राम की साधु-जीवन व्यतीत करने एवं संसार पर्यटन कर विवेकानन्द की भांति वेदान्त-प्रचार की हृदयस्थ लालसा और भी बलवती हो उठी। स्वामी विवेकानन्द पहले ही से व्यावहारिक दृष्टिकोण से वेदान्त की व्याख्या प्रारम्भ कर चुके थे। जैसे आधुनिक शिक्षित भारत ने पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में जाने के कारण अपनी भगवद्-गीता में निहित कर्मयोग शिक्षा का महत्व समझने की चेष्टा की है, वैसे ही स्वामी विवेकानन्द ने शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त दर्शन को भक्ति, कर्म, यहां तक कि देश-सेवा, मनुष्य-सेवा आदि अनेक पहलुओं से समझना-समझाना प्रारम्भ किया था। स्वामी विवेकानन्द प्रथम पुरुष थे, जिन्होंने राजनीति के क्षेत्र में भी वेदान्त का प्रयोग किया। और यह स्वामी विवेकानन्द से भेंट होने का ही फल था कि स्वामी राम ने अपना संकल्प पक्का कर लिया। उन्हें स्वामी विवेकानन्द में अद्वैत वेदान्त की उस व्यापकता का प्रयोग और व्याख्या करने वाला मिला जिसे वे अभी तक अपने भीतर ही भीतर पका रहा थे। यह स्वामी विवेकानन्द का ही आदर्श था, जिसने स्वामी राम के मूक आत्मानुभव को जिह्वा प्रदान की। बस, वे हिमालय पर्यटन के लिए निकल पड़े। और वहां से लौटते ही उसी व्यावहारिक वेदान्त की शिक्षा देने लगे, जो स्वामी विवेकानन्द का विषय था, किन्तु राम की उत्प्रेरणा में एक विलक्षण मस्ती थी, ऐसी दिव्य मस्ती, जो अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। स्वामी राम ने वेदान्त के उस पहलू की पुनः नये सिरे से एवं और भी व्यापक ढंग से व्याख्या की जिसका निर्देश स्वामी विवेकानन्द पहले कर चुके थे। हां, एक बात है, स्वामी राम की भाषा में वह सुघड़ता और प्रौढ़ता नहीं है जो स्वामी

विवेकानन्द की भाषा में देखी जाती है और न उनमें वक्तृत्व-कला का वह जोर और सब को उखाड़ देने वाला तर्क और व्यंग्य ही है, जो स्वामी विवेकानन्द में था। वे शरीर से भी स्वामी विवेकानन्द के समान बलिष्ट न थे किन्तु राम भी उनसे बढ़े-चढ़े थे अपने अनंतज्ञान-उत्प्रेरित और समाधिस्थ आह्लाद में, अचिन्त्य चैतन्य की उस दमक में जो सदा उनके मस्तक पर खेला करती थी, अपने संगीत की मधुरता में, भक्तिमय कन्यासुलभ लज्जाशील सुन्दर सुकुमारता में, हृदय को द्रवीभूत करने वाले उस भावोद्रेक में जिसने उनके भीतर से संसार के सभी विचार चुन-चुन बाहर निकाल फँके थे और जिसके फल-स्वरूप वे बार-बार अपने मूक आह्लाद की समाधि में डूब जाते थे। स्वामी विवेकानन्द उनसे बढ़कर दार्शनिक, बढ़कर वक्ता और बढ़कर नरशार्दूल संन्यासी थे और स्वामी राम उनसे बढ़कर थे अपने गम्भीर समाधिजन्य परमानन्द में, जो एक अटल आधार शिला की भाँति उनके प्रफुल्ल, मधुर और काव्यशील संचरण में, उनके सहानु-भूतिपूर्ण सदय व्यवहार में, अपनी परिस्थिति के साथ पूर्ण शान्तिमय मस्ती में जो सदा उनका पल्ला पकड़े रहती थी। फिर इन दोनों महात्माओं में बौद्धिक सम्बन्ध इतना अपूर्व और इतना व्यापक था कि हम दोनों को अपनी संसार-यात्रा में वेदान्त विषयक बिल्कुल एक-सा संदेश देते हुए पाते हैं। यहां तक कि अपने देशवासियों को उन्होंने देश-भक्ति और राष्ट्र-निर्माण के विषय में एक जैसे उपदेश और आदेश दिये हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, स्वामी राम ने लाहौर में स्वामी विवेकानन्द से संन्यास आश्रम की त्यागमय ज्वाला को ग्रहण किया था और दो वर्ष भी नहीं बीते थे कि उन्होंने भगवे वस्त्र पहन लिये। वे जो कवि जैसे भावुक हृदय वाले गृहस्थ थे, वे जिनकी भावनाओं की तड़प से मन और उसकी वासनायें—दोनों पानी-पानी होकर बह जाती थीं, साधु हो गये। वाह्य कारण कुछ भी रहा हो, वस्तुतः उनका यह कार्य किसी प्रकार किसी बाहरी संसर्ग का

परिणाम न था, वरन् वह तो था उनके अपने स्वाभाविक भीतरी मानसिक और आध्यात्मिक विकास का अवश्यम्भावी प्रतिफल।

इस प्रकार पंजाब के अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण-परिवार में जन्म लेकर वे बचपन से लेकर युवावस्था तक बराबर धीरे-धीरे स्वयं अपना निर्माण करते रहे। उन्होंने थोड़ा-थोड़ा, क्षण-क्षण, दिन-प्रतिदिन अपने आप को सजाया था। यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने हृदय की आँख में अपने भविष्य-जीवन का सम्पूर्ण चित्र पहले ही से अंकित कर लिया था, क्योंकि जब वे निरे बच्चे ही थे तभी ऐसा मालूम होता था, जैसे वे किसी सुनिश्चित उद्देश्य के लिए जान-बूझ कर और गम्भीरता के साथ यत्न कर रहे हैं। उस धनहीन ब्राह्मण-बालक के हर एक पग में हमें एक ज्ञान-सम्पन्न-हृदय की दृढ़ता दिखायी देती है, जो न किसी भी परिस्थिति में अपने पथ से विचलित होती और न जो भयंकर से भयंकर कठिनाई से सहम सकती थी। वे एक अनुकरणीय विद्यार्थी थे। उन्हें अध्ययन का व्यसन था, इस आशा से नहीं कि उन्हें कोई सांसारिक लाभ होगा, वरन् उस दिन-दूनी रात-चौगुनी ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए, जो प्रातः-कालीन सूर्य के दर्शन होते ही उनकी आत्मा को भड़का देती थी। उनका दैनिक अध्ययन क्या था, मानों वे अपने हवन-कुण्ड की वेदी में श्रद्धापूर्वक आहुतियाँ चढ़ाया करते थे।

नये कपड़े न सिलवाना, एक रोटी कम खाना, कभी-कभी बिल्कुल निराहार रह जाना उनके लिए मामूली बात थी और किस लिए? केवल इसलिए कि अर्द्ध-रात्रि में पुस्तकें पढ़ने के लिए तैल जुट जाय। सायंकाल से लेकर सूर्योदय तक अपने अध्ययन में तल्लीन रहना तो उनके विद्यार्थी-जीवन की एक साधारण सी घटना थी। विद्या से उन्हें इतना प्रेम था और इस प्रेम ने उनके हृदय को इतना वशीभूत कर लिया था कि विद्यार्थी-जीवन की भौतिक आवश्यकताओं और साधारण छोटी-मोटी सुविधाओं का उन्हें कोई ध्यान ही न था।

भूख और प्यास, सर्दी और गरमी का उस अद्‌भुत ज्वाला पर कोई प्रभाव न पड़ता था, जो ज्ञान के लिए उनके हृदय में सदा जलती रहती थी। उनके विद्यार्थी-जीवन को देखने वाले आज भी गुजरांवाला और लाहौर में जीवित हैं। जिन्होंने गोस्वामी जी को शुद्ध हृदय से रात और दिन अकेले, बिना किसी सहायता के परिश्रम करते हुए और बिना हथियार जीवन से लड़ते हुए देखा है। इन लोगों को कुछ ऐसे अवसरों की याद है, जब कि दान-पुण्य का ढिढोरा पीटने वाले इस देश में भी इस ब्राह्मण बालक को लगातार कई दिनों तक प्रायः नहीं के बराबर भोजन मिलता था किन्तु फिर भी, आश्चर्य होता था कि कैसे उसके मुख-मण्डल की प्रत्येक नस-नाड़ी में एक अनिर्वचनीय सुख और शान्ति झलक मारती रहती थी।

अतएव हम कह सकते हैं कि जो ज्ञान स्वामी राम ने अपने आगामी जीवन की शिक्षाओं में प्रयुक्त किया है, वह उन्होंने महत्तम तपश्चर्या और कठिनतम परिश्रम के द्वारा दाना-दाना करके संचय किया था। जब हम यह याद करते हैं कि कैसी घोर दरिद्रता और जटिल परिस्थितियों में यह कली धीरे-धीरे खिलती हुई एक ही साथ हमारे सामने एक महान् कवि, दार्शनिक, विद्वान् और गणितज्ञ के रूप में प्रकट हुई तब हमारा हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो जाता है। जबकि गवर्नमेंट कालेज लाहौर के प्रिंसिपल ने उनका नाम प्रान्तीय सिविल सर्विस के लिए भेजने की इच्छा प्रकट की तो स्वामी राम ने सिर झुका कर और आंख में आँसू लाकर यों कहा—मैंने इतना अथक परिश्रम इसलिए नहीं किया कि अपनी फसल को लोगों के हाथ बेचूं, वह तो सब में बाँटने के लिए जमा की है। और लो, उन्होंने सरकारी शासन-यन्त्र में उच्च पदाधिकारी होने की अपेक्षा एक शिक्षक बनना ही अधिक पसन्द किया।

विद्यार्थी-जीवन में राम सब से दूर, परिस्थितियों से अछूते केवल अपने बौद्धिक विकास में ही आकण्ठ निमग्न रहते थे। हाँ,

इस एकान्त जीवन में वे सहवास करते थे केवल संसार की महान् से महान् विभूतियों के साथ अपनी पुस्तकों के द्वारा। अपनी ही उच्च अभिलाषाओं की पूर्ति में डूबे हुए न उन्हें अपने दायें ओर देखने का अवकाश था, न बायें ओर ! वे अपने आदर्श के ही अनुसार अपनी जीवन-वीणा के तार खींच रहे थे। वे, जो उन्हें विद्यार्थी-जीवन के दिनों में पहचानते थे, अत्यंत श्रद्धापूर्वक स्वीकार करते हैं कि उनका जीवन प्रारम्भ ही से एक धार्मिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संग्रथित हो रहा था। विद्यार्थी-जीवन में स्वामी राम भीतर ही भीतर बढ़ रहे थे। वे बार-बार अपने आप को पिघलाते और उसे सांचे में ढालते, फिर पिघलाते और फिर ढालते, ताकि अन्त में पूर्णता की सिद्धि हो सके। अपनी मूर्ति की वक्र रेखाओं को काढ़ने के लिए वे रात-दिन हथौड़ा हाथ में लिये रहते थे कि अंत में सौंदर्य की प्रतिमा प्रकट हो। शुभ से श्रेष्ठ, और श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर वे नित्य आत्मोन्नति में आगे बढ़ते जाते थे। जब वे गणित के प्रोफेसर हो गये, तो एक छोटी-सी पुस्तक उन्होंने सब से पहले लिखी, वह थी—गणित का अध्ययन कैसे करना चाहिए ? उसमें उन्होंने यह पाठ पढ़ाया है कि बराबर चिकना-चुपड़ा, माल-मसालेदार भोजन पेट में ठूंसते रहने से तीक्ष्ण-बुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और प्रमादशील हो जाता है। इसके विरुद्ध हलके भोजन से मस्तिष्क सदैव स्वतंत्र और खुला हुआ रहता है और यही सफल विद्यार्थी-जीवन का एक गुप्त भेद है। दूसरी परमावश्यक बात जो उन्होंने बतायी वह यह है कि अपने कार्य पर समुचित ध्यान केन्द्रित करने के लिए हृदय को पूर्णतः वासनारहित होना चाहिए। केवल एक इस बात के अभाव में और कोई दूसरा ऐसा उपाय नहीं है जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने मस्तिष्क को ठीक ढंग से कार्य में संलग्न कर सकें।

इस प्रकार अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों का सार निचोड़ कर उन्होंने हमें उक्त छोटी सी पुस्तिका में अनेक सीधे-सादे उपदेश

दिये हैं। वे केवल लेखक बनने के लिए कभी नहीं लिखते और न वक्ता बनने के लिए बोलने खड़े होते हैं, किन्तु जब सचमुच उनके पास दूसरों को देने योग्य कोई चीज होती है तभी वे कलम उठाते या ओंठ खोलते हैं।

स्वामी होने पर तो वे सदैव ईश्वर में, ब्रह्मभाव में डूब रहते थे, वहां उस नम्र और लज्जालु बालक का कहीं पता भी नहीं चलता, जैसे कि वे बचपन में मालूम होते थे। उनकी वाणी प्रबल हो गयी थी, उनका चरित्र वाचाल हो उठा था, उनका अनुभव दूसरों को उत्प्रेरित करने वाला तथा उनका व्यक्तित्व आकर्षक, चुम्बक जैसा अपनी ओर खींचने वाला। उनकी उपस्थिति से आस-पास का सारा वायुमण्डल ही मुग्ध हो उठता। उनके संसर्ग में श्रोता का हृदय मानों किसी सुरम्य आराम की झांकियों की सैर करने लगता। एक क्षण यदि हृदय की सच्चाई से अभिभूत होकर अनायास ही आंखों से आँसू निकल पड़ते तो दूसरे ही क्षण उनकी जादूगरी मुस्कराहट से आत्म-संतोष की श्वांस आने लगती। एक सच्चे कवि की भाँति वे जीवन की छोटी से छोटी साधारण वस्तु को भगवान् के सर्वोच्च अवतार के रूप में प्रतिष्ठित कर देते थे। उनके स्पर्श ने यदि किसी को कवि बनाया तो किसी को चित्रकार, यदि किसी को जीवन के रहस्य की ओर प्रेरित किया तो किसी को सैनिक बना डाला। बहुत से साधारण मस्तिष्क तो उनकी प्रेरणा से ऐसे ऊँचे उठ गये कि वे अपनी मानसिक शक्ति में एक निश्चित उत्थान का अनुभव करने लगे।

नवाँ परिच्छेद

पर्वत और एकान्त प्रेम

स्वामी राम को पर्वत बड़े प्यारे थे। वे गंगोत्री की हिम-शिलाओं पर चढ़े थे और चढ़े थे ऊँची 'बन्दर पूंछ' पर और फिर यमुनोत्री से बीच के सभी हिमाच्छादित शिखरों को पार करते हुए गंगोत्री को लौटे थे। अमरीका में वे शास्ता पर्वतों पर चढ़े थे। वहाँ से पुनः भारतवर्ष लौटने पर उन्होंने सहस्र-तरु-ताल पर चढ़ाई की थी जहाँ से भिलिंग गंगा का उदय होता है। जो स्वामी राम किशोरावस्था के समय विद्यार्थी-जीवन में शरीर से इतने निर्बल और दुबले-पतले थे, कैसे उनमें सहसा हिमालय की हिम-शिलाओं के वक्षस्थल पर खेलने-कूदने का अनुराग भर गया, और कैसे उन्होंने बिना समुचित वस्त्रों के, एक प्रकार से बिल्कुल नंग-धड़ंग घनघोर हिमवर्षाओं की अवहेलना करते हुए उस चिरन्तन हिम-स्थली में रहना पसन्द किया—यह सोचने की बात है, क्या साधना की सम्पन्नता से ऐसा बल प्राप्त किया जा सकता है? नहीं, वह अनुराग तो उनमें उस समाधिजन्य उत्प्रेरणा के फलस्वरूप आया था जिसकी एकांत लौ उनके भीतर अक्षय रूप से जल रही थी। पर्वतों की सैर का ऐसा बढ़ा-चढ़ा अनुराग हमें उनके आंतरिक जीवन की सूचना और परिचय देता है, जो उनके भीतर पूर्ण रूप से खिल चुका था। जिसकी प्रेरणा से वे हिमालय की चिरंतन हिम-शिलाओं को प्यार करते थे, प्यार करते हुए प्रसन्न होते थे और प्रसन्न होते कभी थकते न थे।

मैदानों में नीचे उतरने पर लखनऊ में उनका फोटो लिया

गया। यद्यपि किसी फोटोग्राफ से मनुष्य को ठीक रूप में नहीं समझा जा सकता, तथापि उसके द्वारा एक साधारण प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता ही है। और लखनऊ के इस चित्रांकन में वे ऐसे पवित्र दिखायी देते हैं जैसे कोई हिमाच्छादित धवल शिखर! उनका मुखमण्डल अन्य सब चेहरों से भिन्न है, जो केमरा के क्षेत्र में आ गये थे। उनके इस चित्र में भौंहों के ऊपर हिम की शुभ्रता फूटी सी पड़ती है। मुझे तो उनकी इन आंखों में कृष्ण-आवेश की अदृश्य झलक के दर्शन होते हैं।

उन्होंने हिमालय के पर्वतों में एकान्तवास करते समय निम्नांकित पत्र लिखे थे—

गंगोत्री,
सितम्बर १९०१.

पवित्र सलिला गंगा राम का वियोग न सह सकी और अन्त में एक मास होते ही होते उसने फिर राम को अपने पास बुला ही लिया। यद्यपि राम की गंगा सब भांति श्री, शक्ति और सम्पत्ति-सम्पन्ना है, फिर भी राम से मिलने पर वह अपने आनन्दाश्रुओं के वेग को किसी प्रकार न रोक सकी। गंगोत्री पर प्यारी गंगी के टटके सौंदर्य एवं विनोदशील चुहुल का वर्णन कौन कर सकता है! यहां उसके चिर सहचरों का निर्मल चरित्र, हिमालय के धवल शिखरों और निष्पाप देवदार वृक्षों का चरित्र किसके हृदय को आकर्षित न करेगा? देवदार के वृक्षों का सीधा तना तो फारसी कवियों की प्रियतमा के लम्बे कद की स्पर्द्धा करता सा मालूम होता है और उनकी शान्तिदायिनी श्वांस से हृदय प्रफुल्लित होकर खिल उठता है, आनन्द में एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता है।

यमुनोत्री की यात्रा के बाद गंगोत्री पहुंचने में यात्रियों को साधारणतः दस दिन से कम का समय नहीं लगता। केवल तीन ही दिन में राम यमुनोत्री छोड़कर गंगोत्री पर पहुंच गया। उसने एक

ऐसे मार्ग का अनुसरण किया था, जिस पर नीचे मैदान के किसी निवासी के पैर शायद ही कभी पड़े हों। पर्वतीय इस मार्ग को छाया-पथ के नाम से पुकारते हैं। लगातार तीन रात्रि राम ने जंगल की एकान्त गुफाओं में काटीं। मार्ग में न कोई बस्ती और न कोई झोपड़ी दृष्टिगोचर हुई। दो पैरों वाला भी इस यात्रा में कहीं कोई न दिखायी दिया।

छाया-पथ यह इसलिए कहलाता है कि प्रायः वर्ष भर इस पर घनी छाया रहती है। किसकी ? तुम सोचते होगे—पेड़ों की ? नहीं, इस पथ का अधिकांश भाग बादलों से घिरा रहता है। यमुनोत्री और गंगोत्री के समीपवर्ती गांवों के गड़रिये अपनी भेड़ों को चराते हुए वर्ष के दो-तीन मास हर वर्ष इन्हीं जंगलों में बिताते हैं। वे प्रायः दो हिमाच्छादित शिखरों—बन्दरपूंछ और हनुमान-मुख के समीप मिलते हैं। यही दोनों शिखर उन विश्वविख्यात भगिनी सरिताओं के स्रोतों को जोड़ते हैं। इस सारे पथ में फूलों की ऐसी अंधाधुन्ध बाढ़ रहती है कि सारा मार्ग सुनहले फर्श से ढका मालूम होता है। पीले, नीले और गुलाबी फूल तो रंग-बिरंगे ढेर के ढेर lily, voilets, daisies, tulips गुलगुल, धूप, अतिशय प्यारे रंगों वाली ममिरी, केशर, इत्र्स और अत्यन्त मनोहर सुगंध देने वाले तरह-तरह के अनेक फूल, भेड-गद्दा, अपूर्व ब्रह्म कमल आदि अनेके पौधे वहां पाये जाते हैं, जिससे ये पर्वत ऐसे सुरम्य बिहार बन जाते हैं कि जहाँ पृथ्वी और आकाश का स्वामी भी रहने की ईर्ष्या कर सकता है।

* * *

कहीं-कहीं पर तो हवा के झोंकों पर सुगन्ध का ऐसा तूफान उठता है कि राम का हृदय मधुर संगीत की भांति नाच उठता है। वायु पर सवार सुगंध का यह विशाल सरोवर—एकदम मधुर और एकदम कोमल—दो प्रेमी हृदयों के सम्मिलन की मुस्कराहट के समान मधुर और उनके वियोगजनित अश्रुओं की भांति कोमल। इन

दीर्घाकार पर्वतों की चोटियों पर सुन्दर खेत ऐसे सुशोभित रहते हैं, जैसे बेल-बूटेदार कालीन बिछे हों। इन पर देवता गण या तो भोजन करने उतरते होंगे अथवा नृत्य उत्सव के लिए। कलकल ध्वनि वाले निर्झर और नुकीले पहाड़ों से गरजने वाले नद यत्र-तत्र इस अद्भुत दृश्य की शोभा बढ़ाते रहते हैं। किसी-किसी चोटी पर मानों दृष्टि के सारे बन्धन कट जाते हैं। चाहे जिस ओर दृष्टि दौड़ाइये—कहीं कोई रुकावट नहीं, न कोई पहाड़ी और न कोई असन्तुष्ट बादल। उन्मुक्त हो चाहे जहां बिचरो। कोई-कोई उच्च शिखर तो मानो आकाश में छेद करने की स्पर्द्धा सी करते हैं। वे अपनी उड़ान में रुकना जानते ही नहीं, ऊंचे उठते-उठते मानो सर्वोच्च आकाश से एक हो रहे हैं।

राम का वर्तमान निवास पर्वतीय रंग-मंच पर एक छोटी सी सुरम्य झोपड़ी में है। चारों ओर हरियाली का फर्श बिछा हुआ है। इस एकान्त प्राकृतिक उद्यान में गंगा की शोभा देखते ही बनती है। राम-बूटी का यहां कोई पार नहीं। गौरैया जैसी अनेक प्रकार की चिड़ियां यहां रात-दिन चहचहाती रहती हैं। जलवायु बड़ा उत्साह-वर्द्धक है। गंगा की कलकल और पक्षियों का कलरव दोनों मिलकर स्वर्गीय उत्सव का दृश्य उपस्थित करते हैं। यहां गंगा की घाटी काफी चौड़ी है। किंतु इस लम्बे-चौड़े मैदान में भी गंगी का प्रवाह बहुत तेज है। फिर भी राम अनेक बार उसके आर-पार जाता आता रहता है। कभी-कभी केदारनाथ और बदरीनाथ भी राम बादशाह को बड़े प्रेम से आने के निमन्त्रण भेजते हैं किन्तु ज्योंही प्यारी गंगी को राम के वियोग का संकेत मिलता है त्योंही वह उदास और दुखी होने लगती है। राम भी उसे दुखी करना पसन्द नहीं करता ! उसकी उदासी किसे अच्छी लगेगी ?

सुमेरु दर्शन

यमुनोत्री की गुफा में रहते समय राम का दैनिक भोजन था

मर्चा (एक प्रकार का पहाड़ी अन्न) और आलू और वह भी चौबीस घंटों में केवल एक बार। फलतः कुछ दिनों में मंदाग्नि हो गयी। इसी रुग्णावस्था के चौथे दिन बड़े तड़के गरम चश्मे में नहाने के बाद राम सुमेरु यात्रा के लिए निकल पड़ा—केवल एक कोपीन पहन कर—न कोई जूता, न कोई पगड़ी और न कोई छाता। पांच हृष्ट-पुष्ट पहाड़ी गरम कपड़े पहन कर राम के साथ हुए। नारायण और तुलाराम नीचे घरसाली भेज दिये गये।

सबसे पहले हमें शिशुरूपिणी यमुना तीन-चार स्थलों पर पार करनी पड़ी। कुछ दूरी पर यमुना घाटी का मार्ग एक विशायकाय Avalanche हिम-शिलाखण्ड से अवरुद्ध था—४०-५० गज ऊँचा और डेढ़ फरलांग के लगभग लम्बा। एकदम सीधे दो पर्वत शिखर दीवालों की भांति सगर्व दोनों ओर खड़े हुए थे। जैसे सचमुच राम बादशाह का पथ रोकने के लिए उन्होंने कोई षडयंत्र रचा हो? राम कब परवाह करता है! सुदृढ़ अचल संकल्प-शक्ति के आगे बाधायें ऐसे भागती हैं जैसे आंधी के आगे बादल। हम लोगों ने पर्वत की पश्चिमीय दीवाल पर चढ़ना प्रारम्भ किया। कभी-कभी हमें पैर जमाने के लिए एक इंच भी भूमि नहीं मिलती थी। केवल एक ओर हाथों से सुगन्धित किन्तु कंटीली गुलाब की झाड़ियों को पकड़ कर और दूसरी ओर पर्वतों की चा-नामक कोमल घास के नन्हें-नन्हें डंठलों में पैर की उंगलियां गड़ा कर हम बदन को संभाले रहते थे। किसी भी क्षण हम मृत्यु के मुख में गिर सकते थे। यमुना की घाटी में बर्फ के ठंडे बिस्तरों से भरा हुआ एक गहरा खड्ड हमारे स्वागत के लिए मुंह फैलाये खड़ा था। जरा भी जिसका पैर कांपता वही आराम से सुशीतल हिम समाधि में जाकर सो जाता। निचाई से आने वाली यमुना की धीमी-धीमी मर्म-ध्वनि अब भी हमारे कानों में पड़ती थी, जैसे कब्रिस्तान में मृत्यु कालीन बाजा बजता हो। इस तरह हम लोग पूरे पौन घंटे तक बराबर मानो

मृत्यु के मुख में चलते रहे। सचमुच विचित्र परिस्थिति थी—एक ओर मृत्यु हमारे लिए मुंह बाये खड़ी थी और दूसरी ओर ऐसी भीनी-भीनी सुगंध वाली शीतल और मधुर वायु के झोंके आ रहे थे जिससे चित्त एकदम खिल उठता था। इस भयानक और दुरूह चढ़ाई के बाद हम लोगों ने उस भयंकर अवरोधक को पार कर लिया। वह भयंकर हिमशिलाखण्ड और यमुना पीछे छूट गयी। हमारी टुकड़ी पुनः एक सीधे खड़े पर्वत पर चढ़ने लगी। किन्तु कोई रास्ता, कोई पगडंडी—कुछ भी दृष्टिगोचर न होता था। केवल एक बड़ा भारी सघन जंगल जिसमें वृक्षों की टहनियां भी ठीक समझ में न आती थीं। राम का शरीर कई जगह छिल गया। Oak और birch देवदार और चीड़ के इस गम्भीर वन में एक घंटे तक संघर्ष करने के बाद अन्त में हम लोग एक ऐसी खुली जगह में पहुंचे जहां वनस्पति अपेक्षाकृत बहुत छोटी थी। वायुमण्डल में विद्युत जैसी लहरें फैल रही थीं, सुगंध के फब्बारे छूट रहे थे। इस चढ़ाई ने पहाड़ियों को बेदम कर दिया। पर इस व्यायाम से राम का चित्त प्रफुल्लित हो उठा—यहां की धरती अधिकतर चिकनी थी। फिर भी चारों ओर एक से एक मनोहर दृश्य—सुन्दरतम फूलों का कानन और हरियाली की बहार ने हमारी इस कठोर यात्रा के श्रम को हमारी चित्तवृत्ति से सदा दूर ही रखा।

× × ×

और उन दिनों बीमार रहने वाला राम! वह तो और बीमार हो गया होगा! नहीं, उस दिन बिल्कुल चंगा रहा। न कोई रोग, न कोई थकावट, शिकायत का नामोनिशान नहीं। कोई भी पहाड़ी उससे आगे न निकल सका। हम लोग ऊपर-ऊपर चढ़ते ही गये, जबकि हर एक को भूख लग आयी। इस समय हम उस प्रदेश में पहुंचे हुए थे, जहां कभी पानी नहीं बरसता, गिरती है केवल बर्फ अत्यन्त सौंदर्यमयी उदारता के साथ!

यहां इन नंगे और वीरान शिखरों पर हरियाली का भी नामो-निशान नहीं दिखायी देता। हमारे आगमन के पहले ही सुन्दर हिम-पात हुआ था।

राम के स्वागत के लिए साथियों ने एक पत्थर की बड़ी चट्टान पर कालीन की भांति एक लाल कम्बल बिछा दिया और पिछली रात जो आलू उबाले गये थे, भोजन के लिए परोस दिये। साथियों ने भी वही सीधा-सादा बासी भोजन बड़े अनुग्रह के साथ खाया।

......भोजन करने के बाद हम लोग तुरन्त ही उठ खड़े हुए। दृढ़ता के साथ हम लोग आगे बढ़े किन्तु ऊपर की चढ़ाई कठिन थी। एक नवयुवक थक गिर पड़ा, उसके फेफड़ों और हाथ-पैरों ने आगे चढ़ने से इन्कार कर दिया। उसका सर चक्कर खाने लगा। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एक दूसरा साथी बेहोश होकर गिर पड़ा। उसने कहा—मेरा सर घूम रहा है। वह भी उस समय वहीं छोड़ दिया गया। शेष टुकड़ी आगे बढ़ी। किन्तु थोड़ी देर बाद तीसरा साथी भी गिरा। उसकी नाक फूट गई, रक्त बहने लगा। दो साथियों को लेकर राम ने आगे मार्ग लिया।

तीन अत्यन्त सुन्दर बरार (पहाड़ी हिरन) हवा की तरह दौड़ते हुए निकल गये।

लो, चौथा साथी भी लड़खड़ाने लगा और अन्त में हिमाच्छा-दित शिला पर लेट गया। यहां कहीं तरल जल नहीं दिखायी देता। किन्तु शिलाओं के नीचे से, जहां वह आदमी लेटा था, गंभीर घर-घर की आवाज आती थी। एक ब्राह्मण, इस समय भी राम के साथ था, वही लाल कम्बल, एक दूरबीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिये हुए। यहां हवा बिल्कुल पतली है, जिससे सांस लेने में बड़ी कठिनाई होती है। फिर भी आश्चर्य ! दो गरुड़ हमारे सिरों के ऊपर उड़ते हुए निकल गये। अब, बहुत पुरानी, अत्यन्त प्राचीन

कालीन गहरे काले रंग की बर्फ की एक ढलवां चढ़ाई चढ़ना थी। विकट काम था। साथी ने कुल्हाड़ी से उस रिपटने वाले वर्फ में कुछ गड्ढ़े बनाना चाहे, जिससे उनमें पैर जमा कर ऊपर चढ़ा जाय। किन्तु वह पुरातन हिमखण्ड इतना कड़ा था कि उस विचारे की कुल्हाड़ी टूट गयी। और ठीक उसी समय एक बर्फ के अन्धड़ ने आ घेरा। राम ने उस विचारे दुखी-हृदय को सान्त्वना देने की चेष्टा की। भगवान् कभी हम लोगों का अनिष्ट नहीं कर सकता, इस हिमवर्षा से हमारा मार्ग निस्संदेह सुगम हो जायगा। सचमुच हुआ भी यही। उस भयानक हिमपात से ऊपर चढ़ना कुछ आसान हो गया। नुकीली पर्वतीय छड़ियों की सहायता से हम लोग उस ढाल के ऊपर चढ़ गये और लो, हमारे सामने साफ, चौरस, चमचमाती हुई बर्फ का मीलों विशाल लम्बा-चौड़ा मैदान प्रस्तुत था। शुभ्र रजत जैसी आभा से जगमग फर्श-चारों ओर से एकदम समतल। हर्ष—परम हर्ष! जाज्वल्यमान क्षीरसागर, चमकदार, परमोत्तम, विचित्र, विचित्र से विचित्र। राम के हर्ष का वारापार न था। उसने अपनी पूरी चाल से दौड़ना शुरू किया, कंधों पर लाल कम्बल डालकर, और केनवस के जूते पहन कर ऐसी तेजी से दौड़ा, जैसा कभी न दौड़ा होगा।

इस समय राम बिल्कुल अकेला था। एक भी साथी नहीं—आत्मा का हंस भी तो अन्त में अकेला ही उड़ता है।

लगभग तीन मील तक राम दौड़ता चला गया। कभी-कभी टांगें बर्फ में धँस जाती थीं और निकलती थीं बड़ी कठिनाई से। लो, अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्बल बिछा दिया और बैठ गया, राम एकदम अकेला संसार के गुलगपाड़े और झंझटों से एकदम ऊपर—समाज की तृष्णा और ज्वाला से एकदम परे। नीरवता की चरम सीमा, शान्ति का साम्राज्य! शक्ति का अतुल विस्तार।

शब्द का नामोनिशान नहीं, है केवल आनन्द घनघोर। धन्य, धन्य, उस गम्भीर एकान्त को सहस्र वार धन्य !

बादलों का घूंघट भी यहां पतला पड़ जाता है और उस पतले परदे में होकर सूर्य की किरणें छन करके फर्श पर ऐसे गिरना शुरू होती हैं कि बात की बात में उस शुभ्र रजत हिम को प्रदीप्त स्वर्ण में परिणत कर देती हैं। कितना उपयुक्त नामकरण हुआ है इस स्थान का सुमेरु पर्वत—सोने का पहाड़ !

ओ दुनिया के भोले-भाले लोगो ! देखो, देखो, क्या किसी सुन्दरी के कपोलों की गुलाबी आभा, चमक से चमकदार हीरा की प्रभा, सुन्दर से सुन्दर राजप्रासाद की कला—इस सुमेरु की अतुलनीय मनोहरता और सौंदर्य की तुलना में एक क्षण के लिए भी टिक सकती है ! नहीं, नहीं ! अभी और ऐसे असंख्य सुमेरु तुम्हें अपने ही भीतर मिलेंगे, जब तुम एक बार भी अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात् कर लोगे। सारी सृष्टि "मिट्टी के ढेले से लेकर बादल तक, शस्य-श्यामला भूमि से लेकर नीलाम्बर तक और उस सृष्टि के भीतर रहने वाले सभी सजीव प्राणी—चीटीं से लेकर आकाश में उड़ने वाले गरुड़ तक तुम्हारे स्वागत के लिए उठ खड़े होगे।" कोई देवता भी तुम्हारी अवज्ञा का साहस नहीं कर सकता।

× × ×

भीमताल

टेहरी से प्रस्थान करने के बाद आज उत्तराखण्ड की पहाड़ियों का मनोहर दौर, ६०० मील की छोटी सी यात्रा–परिभ्रमण समाप्त हो गयी।

इस समय ठीक मध्याह्न है। भीमताल की लम्बी चौड़ी झील चमकते हुए सूर्य की सुनहली किरणों से दहक रही है। यौवन-सम्पन्ना पहाड़ियां हरे-हरे दुशालों के घूंघट में अपने चेहरे छिपाये हुए चारों ओर से आंखें चढ़ाये ताक रही हैं।

एक छोटी सी सफेद रंगी हुई नाव राम को लेकर झील के विशाल समतल लहर-विहीन वक्षःस्थल पर तैर रही है, जैसे महादेव के मस्तक पर दोज का चन्द्रमा खेलता हो।

नीचे दिये हुए पत्र स्वामी राम ने हिमालय से, अमरीका से लौटने पर, लिखे थे—

वशिष्ठ आश्रम

आज संध्या समय वर्षा रुक गयी। तरह-तरह के अद्‌भुत भेष धारण करने वाले मोटे-पतले बादल विभिन्न दिशाओं में उड़ रहे हैं। सूर्य के प्रकाश से चमत्कृत ये बादल स्वयं अपनी चमक से सम्पूर्ण दृश्य को आभामय सरोवर में परिणत कर देते हैं। आकाश-मण्डल के ये खिलाड़ी बालक कैसे तरह-तरह के लुभावने रंग धारण करते हैं! ओहो, कौन चित्रकार उनका यथार्थ चित्रण कर सकता है? कौन निरीक्षक उनके क्षण-क्षण पर बदलने वाले रंग और छायाओं का विश्लेषण कर सकता है! चाहे जिधर आंख उठाओ, आंख गुलाबी, नारंगी, बैंजनी, हरे-पीले रंगों की दमक से भर जाती है, उनके क्षणिक परिवर्तनों का क्या कोई वर्णन हो सकता है? हां, इस दृश्य के बीच कभी-कभी उस चिरन्तन मधुर शस्य-श्यामला भूमि पर हमारे नेत्र गड़ जाते हैं। आभा के इस अतुलनीय वैभव से स्वतः आनन्द का उद्रेक होने लगता है और राम की आँखों से बरबस प्रेम के आंसू बह निकलते हैं। बादल विलीन हो जाते हैं और एक चिरन्तन संदेश हमें छोड़ जाते हैं। क्या वे प्रभु के पास से अमृत का प्याला भर-भर लाते और फिर उसी के पास चले जाते हैं? ऐसे ही वास्तव में होते हैं आकर्षक पदार्थ! वे प्रकट होते हैं और क्षण भर राम की प्रभा छितरा कर न जाने कहां विलीन हो जाते हैं! पागल हैं वे सचमुच जो इन नाशमान् बादलों के प्रेम में फंस जाते हैं। जान-बूझकर ही लोग इन नश्वर चीजों के चंचल बादलों को पकड़ने की जिद करते हैं और उनके लोप होने पर बच्चों की भांति रो

पड़ते हैं। कैसे मजे की बात है! ओ हो! राम तो अपनी हंसी किसी प्रकार नहीं रोक पाता।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपना सारा समय इन बादलों (दृश्य-जगत्) के बारीक से बारीक परिवर्तनों को ध्यानपूर्वक देखने और उन्हें यथार्थतः लिपिबद्ध करने में ही व्यतीत कर देते हैं। शोक! इन जीवों का क्या कहा जाय! उनके चारों ओर प्रभा का सरोवर लहरें मार रहा है, और वे उसमें अपने प्रकाश की प्यास बुझाने की परवाह नहीं करते। इन्हीं लोगों को दुनिया वैज्ञानिक और दार्शनिक कहती है। वे बाल की खाल निकालने ही में डूबे रहते हैं, उन्हें प्यारे के उस ज्योतिर्मय सर का पता ही नहीं चलता, जिसके बालों की खोज में ये लगे रहते हैं। इसीलिए तो राम की हंसी रोके नहीं रुकती।

कैसा धन्य और आनन्दमग्न है वह जिसकी दृष्टि नाम-रूप के इन बादलों से कुण्ठित नहीं होती, जो उस लुभावने प्रकाश के सहारे उसके आदि-स्रोत (आत्मा) तक पहुंच जाते हैं, जिनका प्रेम असली लक्ष (ईश्वर), को वेधता है, जो बीच ही के रास्ते में सूख जाने वाले चश्मों की भाँति भ्रष्ट न हो सागर तक पहुंच जाते हैं। मन को प्रसन्न करने वाले सम्बन्धों को नाश होना ही है। वे तो केवल चिट्ठी-रसा हैं। बस, प्रभु के उस प्रेमपत्र को सावधानी से संभालो, जो वे तुम्हारे लिए लाये हैं। दियासलाई की काड़ी को तो शीघ्र जल ही जाना है किन्तु धन्य है वह जिसने उसके द्वारा अपना दीपक स्थायी रूप से जला लिया है। कोयला और भाप तो अल्पकाल में चुक ही जायंगे पर भाग्यवान् है वह नाव जो घातक विनाश के पहले ही पहले अपने घर (बन्दरगाह) पर जा लगती है। जीवित यहां वही रह सकता है जो चाहे जिस पदार्थ को ईश्वर की ओर बढ़ने का साधन बना लेता है, जिसे हर एक चीज में ईश्वर की झाँकी दिखायी देने लगती है। यह दुनियां, उसके तारे, उसके पर्वत और नदियां,

उसके राजा और वैज्ञानिक बनाये गये हैं सब उसी के लिए। यह निस्संदेह बिल्कुल सत्य है और राम तुम से सत्य ही सत्य कहता है।

खेत और प्राकृतिक दृश्य—शहरों की धूल और गर्दभरी, चित्त को बिगाड़ने वाली सड़कों को याद करके इनके आकर्षण से चित्त पुलकित हो उठता है। वे मनुष्य में परिच्छिन्नता की भावना को उत्तेजना नहीं देते, वे उसे बरवश शरीर के घोंसले में नहीं घुसेड़ते। उनकी उपस्थिति में, उनके सहवास में मनुष्य अपेक्षाकृत आसानी से साक्षी का आसन ग्रहण कर सकता है। भीतरी दृष्टि से वनस्पति जगत् में उतना ही, शायद उससे भी अधिक संघर्ष, प्रयास और चंचलता होती है जितनी कि किसी सभ्य-मानव समाज में देखी जाती है किन्तु उस समय उसका संघर्ष भी Cedar, oak and pines देवदार, चीड़ आदि के कानन में अपने आप को उनसे अलग समझता हुआ निर्द्वन्द्व विचरता है। प्रकाशरूप साक्षी को उस संघर्ष से कोई वेदना नहीं होती। जिस प्रकार कोई भी इस जंगल में मंगल के साथ विचर सकता है, उसी प्रकार जब वह व्यक्ति शहरों की हलचल में निर्द्वन्द्व घूमता है, जो अपने आप शरीर के साथ तदात्म न होता हुआ अपने शरीर को उस जंगल का केवल एक पेड़ समझ लेता है, उसके लिए संसार और स्वर्ग में क्या अन्तर रह जाता है! सारी सृष्टि आनन्द का उद्यान बन जाती है। ब्रह्मानुभव से भरे हुए ऐसे महात्मा संसार के प्रकाशक होते हैं। वह प्रकाश निर्द्वन्द्व दर्शक के रूप में प्रकट होता हुआ, सारी सृष्टि, समस्त दृश्य-जगत् का प्राण-रूप होता है।

प्राण-सरिता सवेग बह रही है। परमात्मा के सिवा और किसका अस्तित्व है ? जब कोई है नहीं, फिर मुझे भय किसका हो ! प्राणी मात्र मेरे प्रभु का प्राण है, उसके सिवा कोई है नहीं, मैं भी तो वही हूं। सारा संसार हिमालय का आनन्द-कानन है। जब उजाला होता है तब फूल हँसने लगते हैं, चिड़िया गाती हैं, निर्झर हर्ष से

नाचने लगते हैं। यहाँ उजालों का उजाला प्रकाश का सागर लहरा रहा है, आनन्द की हवा बहती है।

इस सुन्दर कानन में राम हँसता है, गाता है और ताली बजा कर नाचता है।

क्या कोई राम की खिल्ली उड़ाता है, अरे ! वह तो वायु की सरसराहट है ? क्या कोई दिल्लगी उड़ाता है, वह तो पत्तियों की खड़खड़ाहट है ! राम का ही प्राण चश्मों में, देवदारों में, चिड़ियों में, वायु की सनसनाहट में स्वांस ले रहा है, क्या वह कभी राम को ढक सकेगा ?

* * *

वसून की चोटी—वशिष्ठ आश्रम

आनन्द ! आनन्द ! चन्द्रमा छिटक रहा है, चारों ओर शुभ्र शान्ति का सागर उमड़ा है। राम के घासफूस के बिस्तर पर चन्द्रिका खेल रही है। साधारण से अधिक ऊंची श्वेत गुलाब की झाड़ियां, जो इस पर्वत पर पूर्ण निर्भय और उन्मुक्त हो अंधाधुन्ध उगती हैं, अपनी परछायी से चन्द्र-प्रकाशित विस्तर को ऐसे सजाती हैं और झूम-झूम कर ऐसी प्रसन्न होती हैं, मानो वे उस शान्ति भरी चन्द्रिका के छोटे-छोटे सुन्दर स्वप्न हों, जो राम के सामने निर्द्वन्द्व हो सोते हैं।

सो जा, मेरे बच्चे सो जा !

और नींद में ही गुलाबी स्वप्नों का मजा ले !

यमुनोत्री, गंगोत्री, सुमेरु, केदार और बदरी के हिमनिर्झर यहां से इतने पास मालूम होते हैं, मानो हम हाथ बढ़ा कर उनको छू सकते हैं। वास्तव में हीरा जैसी आभा से देदीप्यमान शिखरों का एक अर्द्धवृत्त इस वशिष्ठ आश्रम को घेरे हुए है, मणि-माणिक जैसे इन पर्वतों के हिमाच्छादित शुभ्र शिखर एक साथ चन्द्रिका के क्षीर-सागर में स्नान करते हैं और शीतल पवन के झोंके के रूप में उनकी गम्भीर सोहम् श्वास-प्रश्वास यहां निरन्तर सुनायी देती है।

इस पर्वत की बर्फ अब प्रायः सारी की सारी पिघल चुकी है और चोटी के पास का विस्तीर्ण खुला हुआ क्षेत्र पूर्णतः नीले, गुलाबी, पीले और धवल पुष्पों से भर गया है, कोई-कोई तो इनमें से अत्यन्त सुगन्धित हैं। लोग यहां आने से घबराते हैं, उनका विश्वास है कि यह परियों का उद्यान है। उनकी इस धारणा का फल यह है कि देवताओं का यह सुरम्य आराम प्राकृतिक सौंदर्य को नष्ट करने वाले अपवित्र मनुष्यों के संसर्ग से बचा हुआ है। राम इस पुष्प-शय्या पर बड़ी कोमलता से, अतीव सावधानी से विचरण करता है, कारण वह किसी नन्हें से मुस्कराते हुए फूल के मुख को पैरों की अकोमल दाब से चोट नहीं पहुंचाना चाहता।

कोयल, फाखता एवं अन्य अनेक प्रकार के गाने वाले पक्षिवृन्द प्रातःकाल नित्य राम का मनोरंजन करते हैं, कभी-कभी विकराल वेशधारिणी मक्षिका भी गुफा की छत के पास आकर अपनी विचित्र रहट जैसी संगीत-ध्वनि के साथ भनभनाने लगती है कि राम की हंसी रोके नहीं रुकती। मध्याह्न के समय पक्षिराज गरुड़ इतने ऊंचे उड़ते हैं कि काले बादलों के साथ एकरूप से हो जाते हैं—यही गरुड़ तो विष्णु को अपनी पीठ पर सवार करते हैं न ?

समीपवर्ती पर्वतीय सरोवर के चारों ओर हरे-भरे कानन के दिग्गज वृक्षों का कैसा जमघट है, मानों कोई सुरम्य नगर बसा हो। भला, इन्हें कौन सी शक्ति एकता के बन्धन में बांधे हुए है, सब अलग अलग, न कोई सम्बन्ध, न कोई व्यक्तिगत नाता-रिश्ता। हां, उनका एक सामाजिक संगठन कहा जाता है, क्योंकि आखिर वे सब उसी एक सरोवर में ही तो अपनी जड़ें फैलाये हुए हैं। उसी एक पानी का प्रेम उन्हें आपस में बांधे हुए है। सो उसी एक सत्—सत्य के प्रेम और भक्ति में हमें एक हो जाना चाहिए। हम एक आनन्द कानन में, एक हृदय में, एक राम में आकर मिलें।

जगदेवी की हरियाली

मेह ने बसून पर्वत के शिखर की प्रायः सभी गुफाओं को झील बना दिया था, अतः शिखर-स्थित अप्सराओं के उद्यानों को राम ने छोड़ दिया। वह नीचे उतर कर एक अत्यन्त मनोरम, उच्च और चौरस हरे-भरे मैदान में ठहर गया, जहां सुरम्य समीर नित्य अठखेलियां किया करती है। चमेली श्वेत और पीली अन्य अनेक सहोदरा पुष्पों के साथ यहां बहुतायत से उगती है। रक्तवर्ण, गुलाबी और रंग-बिरंगे जंगली फूलों की तो यहां बाढ़-सी आयी है। अभी-अभी नई बनायी हुई झोंपड़ी के एक ओर एक विशाल हरा-भरा मैदान दो तेज बहने वाले निर्झरों के बीच दुआबा-सा बनाये हुए है। सामने का चित्रपट कितना चित्ताकर्षक—बहता हुआ पानी, नयी-नयी कोपलों से ढकी हुई पहाड़ियां, लहरियादार जंगल और खेत! हरियाली के बीच-बीच में नंगी चिकनी पत्थर की चट्टानें राम के लिए सिंहासन और मेजों का काम देती हैं। यदि छाया की आवश्यकता होती है तो पास के कुंज सहर्ष उसका स्वागत करते हैं।

तीन घंटों में ही जंगल निवासी गड़रियों ने एक झोपड़ी तैयार कर दी। अपनी शक्ति भर उसे उन्होंने मेह से अगम्य बनाया। रात्रि में आंधी और मेह का भयंकर तूफान आया। प्रत्येक तीन-तीन मिनट पर बिजली चमकती थी और भयानक गरज होती थी–ऐसी कि आस-पास के पर्वत कँपते और दहल उठते थे। भगवान् इन्द्र लगातार तीन घंटे तक वज्र चलाते रहे। अधाधुंध बर्षा हुई। विचारी झोपड़ी बुरी तरह चूने लगी। ऐसे भयंकर तूफान को सहना उस के वश का न था, छत ने जवाब दे दिया, यहाँ तक कि राम को पुस्तकों को भीगने से बचाने के लिए छाता खोलकर रखना पड़ा। कपड़े पानी से सराबोर हो गये। हां, धरती पर काफी घास बिछा रहने से वहां कीचड़ ने प्रवेश न किया किन्तु वह भी पानी से, जो छत से बंद-बूंद कर टपकता था, एकदम तर-बतर हो गया। राम

को इस झड़ी में मछली और कछुवे के जीवन का मजा आया। उस रात जल-जीवन के अनुभव ने राम को एक विशेष आनन्द दिया।

अपने जीवन की पूरी आयु में से एक रात कम कर दो और बिल्कुल न सोओ —

धन्य है वह झंझावात जो हमें प्रभु के संसर्ग में लाकर खड़ा कर देता है। "ओ पर्वतों को हिलाने वाले प्यारे! मैं तुझे किसी भी मूल्य पर—ओ ब्रज! मैं तुझे सैकड़ों गुना मूल्य पर, सहस्रों गुना मूल्य पर भी बेचने के लिए तैयार नहीं हूँ। तू तो मेरे लिए अनन्त सौन्दर्य का आगार है।

ओ शुक्र (सर्वशक्तिसम्पन्न) चाहे तू दूर-दूर (गरजते हुए बादलों में) निवास करे! ओ! वृत्रघ्न (संदेह निवारक) चाहे तू मेरे हाथों के पास (सरसराती वायु के रूप में) आजा—यहाँ तो हर समय आकाशमण्डल में गूंजने वाले गीत (चित्त को भेदने वाली प्रार्थना) तेरे लिए निकलती रहती है जो लम्बी अयाल वाले घोड़ों की भाँति तेरी सवारी के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं! फिर तू तेजी के साथ उसके समीप क्यों न आयेगा, जिसने (अपने जीवन का) रस तेरे लिए निचोड़ा हो। आ, और मेरे हृदय में पैठ और मेरे जीवन की सुरा (सोम) का पान कर।

मनुष्य इसलिए नहीं बनाया गया कि अपना सारा जीवन छोटी-छोटी शंकाओं और समाधानों में खपा दे। ओ, यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरी क्या गति होगी, इस मूर्खता का क्या परिणाम होगा—मैं कैसे जीवित रहूंगा। राम को कम से कम उतना आत्म-गौरव तो रखना ही चाहिए जितना कि पानी की मछलियां, हवा की चिड़ियाँ—नहीं, नहीं, धरती के पेड़ रखते हैं। उन्हें कभी किसी ने झंझावात की तेजी पर अथवा धूप की प्रखरता पर बड़बड़ाते सुना है क्या! वे तो प्रकृति के सुर में सुर मिलाकर ही जीवित रहते हैं। मेरी आत्मा, मैं ही स्वयं जलरूप से घनघोर वर्षा करता हूँ। तूफान

में मेरा बल कितना सुन्दर खिलता है। हृदय से सदैव शिवोहम् की हूक उठती रहती है।

दिन और रात—एक भी ऐसी नहीं जाती, जब पानी की एक तेज बौछार न मार जाती हो और जैसा कि उल्लिखित कालिदास के पहले श्लोक में दर्शाया गया है, राम नित्य ही अपने पर्वत-पर्यटन में इसी घनघोर वर्षा में जाता है। यहां आस-पास, पड़ौस में कोई गुफा भी नहीं, अतः गरजने वाले घन ही राम के लिए छाता बन जाते हैं और राम उनकी अपूर्व वर्षा का स्वाद लेता है—ओ कैसा दिव्य !

कैसे आनन्दमग्न हैं वे कानन के देवदार और चीड़ आदि वृक्ष जिनका वर्णन दूसरे श्लोक में हुआ है, जो कँपते और थरथराते रहते हैं, फिर भी अपने शरीर को गंगा की झाग की ठंढी फुहार का निशाना बनाने में कभी कुण्ठित नहीं होते।

ओ, वैसा सौभाग्य कब मिलेगा जब झंझावात की शीतलता, प्रलय के सौंदर्य के आगे हम सहर्ष अपना वक्षःस्थल खोल सकें !

सहस्र-तरु-ताल
जुलाई १९०५

एक के बाद एक—अनेक मीलों तक गगनचुम्बी शिखरों पर टहलना, नीचे घाटी में दूर-दूर तक फैले हुए मधुर सुगंध और सौंदर्य से लहराते हुए जंगलों को देखना—दाईं ओर के और बाईं ओर के फूलों से भरे खड्डों पर दृष्टिपात करना—सुकोमल मखमली घास से ढके हुए सुविशाल मैदानों में चलना, जहां दिल लुभाने वाले कोमल पुष्प तुम्हारे पैर की उंगलियों में उलझ जाते हों—दूरस्थ कैलाश से सवेग गिरने वाले जलप्रपातों के शुभ्र सौंदर्य का निरीक्षण करना, चंचलतम कस्तूरी मृगों का बिजली जैसी तेजी से तुम्हारी आंखों के सामने से निकल भागना—जिन सुन्दर वाहनों पर सवार होने की ईर्ष्या चन्द्रमा के हृदय को आतुर कर सकती है, गरुड़ पक्षिराजों के

दीर्घाकार चित्र-विचित्र पंखों की फड़फड़ाहट कभी इस ओर, कभी उस ओर, क्षण-क्षण पर कैलासकुसुम-ब्रह्म कँवल को तोड़ने के लिए झुक पड़ना, जो सचमुच सोने में सुगंध की कहावत को चरितार्थ करते हैं, उन कुलियों की तल्लीनता का मजा लेना जो मासी, लेसर और गुग्गल खोदने में एक दूसरे के साथ होड़ लगाये रहते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों का मानो यहां अटूट भाण्डार खुला हुआ है—इस मनोहर स्थल पर प्रभु के गीत गाना, ॐ की ध्वनि लगाना—इससे बढ़कर समय का कौन सा उपयोग हो सकता है ! सांसारिक जीवन के कोलाहल और गर्द से दूर—बहुत दूर स्वच्छ और चमकते-दमकते जल से पूर्ण गंभीर लम्बी-चौड़ी नीली झीलों में, कैलाश-समीर द्वारा उल्लसित नन्हीं-नन्हीं लहरों के बीच, पवित्र, निर्मल और टटके हिम से घिरे हुए जलाशयों में आता है कौन ? स्वयं रक्तरंजित, दमदमाता हुआ आदित्य, कुछ लज्जा और कुछ शंका के साथ जैसे रमणी दर्पण में अपना मुंह देखती है ! ऐसे ही गगनचुम्बी एकान्त में सचमुच सूर्य को अपना विश्व विमोहिनी प्रताप देखने का अवसर मिलता है । इतनी ऊँचाई पर भला झोपड़ी और कुटी कैसे टिक सकती है ! रात्रि उन कन्दराओं में काटी जाती है, जहाँ वायु सोने के लिए फड़फड़ाती है ।

वह हर्ष, वह उल्लास, वह आनन्द जो झुलसाने वाला शरीर-चेतना की व्यावहारिक कर्म-भूमि को त्यागने से आता है, वह सूर्य और वायु के साथ तदात्म हो जाने की प्रफुल्लता, वह एकमेवाद्वितीयम् के दिव्य और अनन्त गंभीर और विशालकाय अरण्य में विचरण करने का अनिर्वचनीय स्वाद कहां मिलता है—यहाँ !

में मेरा बल कितना सुन्दर खिलता है। हृदय से सदैव शिवोहम् की हूक उठती रहती है।

दिन और रात—एक भी ऐसी नहीं जाती, जब पानी की एक तेज बौछार न मार जाती हो और जैसा कि उल्लिखित कालिदास के पहले श्लोक में दर्शाया गया है, राम नित्य ही अपने पर्वत-पर्यटन में इसी घनघोर वर्षा में जाता है। यहां आस-पास, पड़ौस में कोई गुफा भी नहीं, अतः गरजने वाले घन ही राम के लिए छाता बन जाते हैं और राम उनकी अपूर्व वर्षा का स्वाद लेता है—ओ कैसा दिव्य !

कैसे आनन्दमग्न हैं वे कानन के देवदार और चीड़ आदि वृक्ष जिनका वर्णन दूसरे श्लोक में हुआ है, जो कँपते और थरथराते रहते हैं, फिर भी अपने शरीर को गंगा की झाग की ठंढी फुहार का निशाना बनाने में कभी कुण्ठित नहीं होते।

ओ, वैसा सौभाग्य कब मिलेगा जब झंझावात की शीतलता, प्रलय के सौंदर्य के आगे हम सहर्ष अपना वक्षःस्थल खोल सकें !

सहस्र-तरु-ताल
जुलाई १९०५

एक के बाद एक—अनेक मीलों तक गगनचुम्बी शिखरों पर टहलना, नीचे घाटी में दूर-दूर तक फैले हुए मधुर सुगंध और सौंदर्य से लहराते हुए जंगलों को देखना—दाईं ओर के और बाईं ओर के फूलों से भरे खड्डों पर दृष्टिपात करना—सुकोमल मखमली घास से ढके हुए सुविशाल मैदानों में चलना, जहां दिल लुभाने वाले कोमल पुष्प तुम्हारे पैर की उंगलियों में उलझ जाते हों—दूरस्थ कैलाश से सवेग गिरने वाले जलप्रपातों के शुभ्र सौंदर्य का निरीक्षण करना, चंचलतम कस्तूरी मृगों का बिजली जैसी तेजी से तुम्हारी आंखों के सामने से निकल भागना—जिन सुन्दर वाहनों पर सवार होने की ईर्ष्या चन्द्रमा के हृदय को आतुर कर सकती है, गरुड़ पक्षिराजों के

दीर्घाकार चित्र-विचित्र पंखों की फड़फड़ाहट कभी इस ओर, कभी उस ओर, क्षण-क्षण पर कैलासकुसुम-ब्रह्म कँवल को तोड़ने के लिए झुक पड़ना, जो सचमुच सोने में सुगंध की कहावत को चरितार्थ करते हैं, उन कुलियों की तल्लीनता का मजा लेना जो मासी, लेसर और गुग्गल खोदने में एक दूसरे के साथ होड़ लगाये रहते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगंन्धित द्रव्यों का मानो यहां अटूट भाण्डार खुला हुआ है—इस मनोहर स्थल पर प्रभु के गीत गाना, ॐ की ध्वनि लगाना—इससे बढ़कर समय का कौन सा उपयोग हो सकता है! सांसारिक जीवन के कोलाहल और गर्द से दूर—बहुत दूर स्वच्छ और चमकते-दमकते जल से पूर्ण गंभीर लम्बी-चौड़ी नीली झीलों में, कैलाश-समीर द्वारा उल्लसित नन्हीं-नन्हीं लहरों के बीच, पवित्र, निर्मल और टटके हिम से घिरे हुए जलाशयों में आता है कौन? स्वयं रक्तरंजित, दमदमाता हुआ आदित्य, कुछ लज्जा और कुछ शंका के साथ जैसे रमणी दर्पण में अपना मुंह देखती है! ऐसे ही गगनचुम्बी एकान्त में सचमुच सूर्य को अपना विश्व विमोहिनी प्रताप देखने का अवसर मिलता है। इतनी ऊँचाई पर भला झोपड़ी और कुटी कैसे टिक सकती है! रात्रि उन कन्दराओं में काटी जाती है, जहाँ वायु सोने के लिए फड़फड़ाती है।

वह हर्ष, वह उल्लास, वह आनन्द जो झुलसाने वाला शरीर-चेतना की व्यावहारिक कर्म-भूमि को त्यागने से आता है, वह सूर्य और वायु के साथ तदात्म हो जाने की प्रफुल्लता, वह एकमेवाद्वितीयम् के दिव्य और अनन्त गंभीर और विशालकाय अरण्य में विचरण करने का अनिर्वचनीय स्वाद कहां मिलता है—यहाँ!

दसवां परिच्छेद

फिर प्रारम्भिक जीवन का वर्णन

स्वामी राम चल खड़े हुए अपने घर से, विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा के उद्देश्य से, जैसी कुछ भारतवर्ष में उस समय प्राप्त हो सकती थी, लाहौर के किसी कालेज में भरती होने के लिए और उनके पिता रुष्ट हो गये। पूरे एक वर्ष तक वे फिर अपने गांव मुरारिवाला नहीं गये। उनके इस साहसपूर्ण प्रवास और प्रयास में उनके मामा रघुनाथमल और गुजराँवाला के उसी विचित्र योगी—गुरु धन्ना भगत ने उनकी सहायता की थी। कालेज जीवन के द्वितीय वर्ष में उन्होंने अपने मामा को लिखा था—मेरी सबसे बड़ी आवश्यकता है अध्ययन के लिए किसी एकांत स्थल की, और मेरी सब से बड़ी मांग है समय की। हे भगवान्! मुझे कभी इन तीन चीजों की कमी न देना (१) एकांत (२) समय और (३) ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा। मामा जी, बस, यही मेरे हृदय की सबसे गहरी इच्छा है और सब तो ईश्वर जानते ही हैं।

उन्होंने इन्टरमीडिएट परीक्षा सन् १८९० में पास की थी। वे प्रान्त भर में २५ वें स्थान पर आये थे।

कुछ दिनों बाद उनके पिता ने, जो राम को किसी न किसी काम में लगा देने के लिए अधीर हो रहे थे, जब यह सुना कि राम तो अभी और आगे पढ़ने का संकल्प कर चुका है तब उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। वे आये और लाहौर में राम की स्त्री को उन के साथ कर गये। इतना ही नहीं, इस सच्ची लगन वाले विद्यार्थी को उन्होंने किसी भी प्रकार की सहायता देना अस्वीकार कर दिया।

स्वामी राम का विवाह विरोके नामक ग्राम में हुआ था, जब वह बिल्कुल छोटे बच्चे थे।

उन्होंने सन् १८९३ में बी० ए० की परीक्षा पास की थी। यह उनका दूसरा प्रयास था। पहली बार वे विश्वविद्यालय के नियमों की एक छोटी सी त्रुटि के कारण फेल कर दिये गये थे।

ऐसा कहा जाता है कि दूसरी बार की परीक्षा में परीक्षक ने तेरह प्रश्न पूछे और परीक्षार्थियों को यह सूचना दी कि वे कोई से नौ प्रश्न हल करें। स्वामी राम ने तेरहों प्रश्न हल किये और परीक्षक को यह सूचना लिख दी कि कोई से नौ जांच लें।

उन्होंने अपने पिता को लिखा था—आपका पुत्र प्रांत में प्रथम आया है और उसे ६०) रुपये का वजीफा मिला है। यह सब ईश्वर की कृपा का फल है। ऐसा फल मनुष्य के अपने प्रयत्न से प्राप्त नहीं होता।

इसके साथ एक दूसरा पत्र उन्होंने अपने सच्चे संरक्षक अपने मामा को लिखा था—मुझे दो वजीफे मिलेंगे, एक २५) रुपये मासिक का और दूसरा ३५) रुपये मासिक का। यह सब भगवान् की दया है।

वे अब गणित में एम० ए० करने के लिए लाहौर के गवर्नमेण्ट कालेज में भरती हुए। यह मई १८६३ की बात है। उस समय उनकी अवस्था केवल साढ़े उन्नीस वर्ष की थी। उन्होंने इंग्लैंड जाकर गणित में 'ब्लू रिबन' की प्रतिस्पर्द्धा के लिए स्टेट स्कालरशिप (सरकारी वजीफा) के लिए प्रार्थनापत्र भेजा था, किन्तु वह वजीफा किसी दूसरे को मिला। बहुत दिनों बाद उन्होंने मुझ से कहा था—राम ने सीनियर रेंगलर बनने की बात सोची थी किन्तु यदि यह शरीर नहीं बन सका, तो दूसरे भारतीय (मिस्टर परांजपे से तात्पर्य है) ने वह ख्याति पायी। देखिये, किस प्रकार निष्काम-हृदय व्यक्ति की इच्छायें पूरी हुआ करती हैं।

उन्होंने १८ फरवरी सन् १८६४ को लिखा था—संसार में ऐसी कोई चीज नहीं जिस पर हम भरोसा कर सकें। वे ही ईश्वर की कृपा के भागी होते हैं जो केवल उस पर श्रद्धा करते हैं। वे ही सच्चे संत हैं। ऐसे महात्माओं के चरण-कमलों में सारा संसार अपने समस्त वैभव और सम्पदा के साथ अत्यन्त दीन भाव से लोट-पोट हुआ करता है।

गवर्नमेण्ट कालेज में रहते समय उन्होंने केवल दूध पर जीवन-निर्वाह करना प्रारम्भ किया, गेहूँ की रोटी खाना छोड़ दिया। हां, कभी-कभी उबला हुआ चावल ले लेते थे। उनका भोजन बड़ा सादा होता था और वस्त्र तो और भी सादे। उन्होंने सदैव मोटा और सस्ता खद्दर ही पहना।

सन् १८६५ में स्कूल मास्टर का काम अपने हाथ में लेकर वे स्यालकोट गये। वहां मिशिन हाई स्कूल में सेकेण्ड मास्टर के स्थान पर उनकी नियुक्ति हुई। यहां एक मनोरंजन घटना हुई। एक बार उन्हें अपने एक मित्र से १० रुपये की छोटी सी रकम उधार मांगनी पड़ी। मित्र ने प्रसन्नता से रुपये दे दिये। जब तक राम स्यालकोट में रहे, अपने इस उपकारक को बराबर दस रुपया मासिक लौटाते रहे।

स्यालकोट से वे अपने चाचा को एक पत्र में इस प्रकार लिखते हैं—स्यालकोट की सनातन धर्म सभा में मेरे आने से एक नयी जान सी आगयी है। उन लोगों के लिए इस प्रकार थोड़ा-बहुत काम कर देने से मुझे बड़ा आनंद मिलता है। उस मस्ती के आगे दुनिया के राज्य भी फीके मालूम होने लगते हैं। सभी लोग—भारतीय और अंग्रेज—मुझ से पूर्ण संतुष्ट हैं और सभी दया करते हैं।

सन् १८६६ में होस्टल के सुपरिंटेंडेण्ट हुए, इसकी सूचना उन्होंने धन्ना भगत को इस प्रकार दी थी—छात्रावास के मुसलमान निरीक्षक ने छात्रावास के भवन में गोमांस पकवा कर बड़ी गलती की। यह तो जान-बूझकर हिन्दू विद्यार्थियों के दिल को चोट

पहुंचाना था। वे वहाँ से अलग कर दिये गये और मैं उनके स्थान पर नियुक्त हुआ हूँ।

सन् १८९६ में वे लाहौर के मिशन कालेज में गणित के मुख्य प्रोफेसर होने के लिए बुलाये गये।

वे सदैव पर्वतों पर जाया करते थे और गरमियों की लम्बी छुट्टियां काश्मीर और अमरनाथ में बिताते थे। कभी-कभी वे हरद्वार और हृषीकेश भी जाया करते थे और पूर्ण एकांत में समय बिताते थे। कुछ दिनों बाद उन्होंने यह प्रोफेसरी छोड़ दी, क्योंकि उनकी एकमात्र इच्छा थी कि वे अपना सारा समय ईश्वरचिन्तन के साथ प्रकृति के साहचर्य में बितायें और इस पद का भारी काम उन्हें ऐसा अवकाश न देता था। अतः उन्होंने ओरियंटल कालेज में रीडरशिप का स्वीकार कर लिया, जिसमें प्रतिदिन केवल दो घंटे काम करना पड़ता था; जिससे उन्हें पर्याप्त अवकाश और एकांत मिल जाता था, जो उनकी हार्दिक इच्छा थी।

सन् १९०० में उन्होंने अपना अनोखा सामयिक पत्र 'अलिफ' निकालना शुरू किया। अलिफ फारसी का प्रथम वर्ण है। अपने प्रेस का नाम भी उन्होंने आनंद प्रेस रखा। सन् १९०० के जुलाई मास में वे लाहौर छोड़ कर सदा के लिए हिमालय के अरण्यों में चले गये।

उनके मित्र और प्रशंसक एक बड़ी संख्या में लाहौर के रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुए और जब स्वामी राम उनसे बिदा होकर जाने के लिए तैयार खड़े थे, तब उन्होंने स्वामी राम की ही बनायी हुई एक उर्दू गजल 'अलविदा' गाना शुरू किया।

१९०१ के प्रारम्भ में एक वर्ष तक पर्वतों में अज्ञातवास करने के अनन्तर वे साधु बन गये और संन्यासी के भगवा वस्त्र धारण कर लिये।

अगस्त १९०१ में उन्होंने एक लम्बी यात्रा की जिसमें गंगोत्री, यमुनात्री, केदारनाथ, बदरीनारायण की मनमानी सैर हुई। रात

और दिन आनन्द-सागर में डूबे हुए वे हिमालय के हिमपूर्ण शुद्ध और पवित्र वक्षस्थल पर खेला करते थे।

बदरीनारायण की यात्रा के बाद सन् १९०१ में स्वामी राम नीचे मैदानों में—मथुरा आये। वहां उन्होंने एक छोटे आकार के सर्व-धर्म-सम्मेलन के दो अधिवेशनों का सभापतित्व किया। ये सम्मेलन स्वामी शिवगणाचार्य द्वारा संगठित हुए थे।

सन् १९०२ में वे जापान गये। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में दो वर्ष प्रवास करने के बाद वे पुनः ८ दिसम्बर १९०४ को भारत लौट आये।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

स्वामी रामतीर्थ जापान में

सन् १८९३ में शिकागो में होने वाले सर्व-धर्म-सम्मेलन से हमें संसार के अनेक सुप्रसिद्ध व्यक्तियों का पता चला। इनमें पूर्वीय देशों के कलकत्ता-निवासी श्री स्वामी विवेकानन्द, लंका निवासी श्री अंगारिक धर्मपाल, जापान के श्री कंजो हिराई और जेंशिरो नगूची सर्वाधिक विख्यात हुए। दूसरी बात यह हुई कि समस्त संसार के धार्मिक नेता उत्सुकता से सोचने लगे कि यदि इस सम्मेलन का कोई दूसरा अधिवेशन हो, तो अच्छा! किन्तु यह दुःख की बात है कि उस अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर संसार में फिर कभी वैसा सर्व-धर्म-सम्मेलन नहीं हुआ।

भारतवर्ष में एक घोषणा भर प्रकाशित हुई थी कि एक ऐसे ही अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन टोकियो में होगा। यह घोषणा जापान के स्वर्गीय श्री ओकाकुरा के कुछ बंगाली मित्रों ने की थी। शायद यह घोषणा समय से पहले प्रकाशित हो गयी। उन दिनों श्री ओकाकुरा जल्दी में किसी कार्यवश भारतवर्ष आये हुए थे। संभव है, उन्होंने अपनी ऐसी इच्छा स्वर्गीय आदरणीया निवेदिता बहिन से प्रकट की हो और जापान लौटने पर वे शायद उसके लिए प्रबन्ध भी करने वाले हों किन्तु श्री ओकाकुरा तो अभी कलकत्ता में ही थे कि टोकियो के समाचार-पत्रों ने उस समाचार को उड़ाया और अपने यहां उसका विरोध भी किया। चूंकि श्री ओकाकुरा स्वयं जापान में न थे, अतएव जापान में उनकी अनुपस्थिति के कारण किसी ने उसका स्वागत न किया।

स्वामी रामतीर्थ उन दिनों टेहरी गढ़वाल के आस-पास रहते थे। वे रात-दिन निरन्तर ध्यान में डूबे रहते थे। वे वेदान्तिक चेतना के एक बन्धनहीन अल्हड़ आह्लाद का उपभोग कर रहे थे। उनकी अधिकांश कवितायें इसी समय लिखी गयी थीं किन्तु सर्वोत्तम कविता तो वे स्वयं हो रहे थे।

वे प्रायः मौन रहते किन्तु जो उनसे भेंट करने जाते, उन्हें उनके पास परमात्मा की सुगंध आती। उनकी आँखें ज्ञान के विशुद्ध प्रकाश से चमकती रहतीं, उनके मुखमण्डल पर सदा एक अत्यन्त उच्च पवित्रतम भावना का निर्मल तेज बरसता रहता। अपने पैरों तले की घास को वे अनेक प्यार भरे नामों से पुकारते, और न जाने कितनी गंभीर मधुर भावना से उसका स्पर्श करते। वे गंगा जी को मेरी गंगी कहते—यहां तक कि उन्होंने अपनी पेंसिल, कलम और कागजों को भी मीठे-मीठे नाम दे रखे थे और इस प्रकार अपनी ही सृष्टि के सहवास में समय बिताते थे।

मानो उनके यहां आनन्द की भीड़ मची रहती थी, आत्मा की कम्पनशील मधुरता से सभी आनन्द अपने-आप उनके पास खिंचे चले आते थे। वे आनन्द को नहीं खोजते थे, वरन् आनन्द स्वयं उनसे साहचर्य की प्रार्थना करते थे। ऐसी स्थिति में वे काम-काज को एक ओर परे फेंक हिरण की भांति चारों ओर दौड़ने लगते, कभी हिमशिलाओं पर चढ़ते, कभी हिमालय की गुफाओं में घुस जाते, कभी नदियों में नहाते रहते, कभी अँधेरी रात्रियों में ही सड़कों पर दौड़ने लगते। भय और मृत्यु का सामना करते, जैसे कोई शारीरिक व्यायाम कर रहे हों, उन्हें अपने लिए कुछ न चाहिए था। उनके आनन्द ही उनके लिए देव रूप बन गये थे। वे उन्हीं के साहचर्य में मस्त रहते थे। अनेक बार लोगों ने उन्हें आनन्द से आत्म-विस्मृत, अर्द्ध-चैतन्यावस्था में देखा। बिना कहे-सुने चुपचाप कभी किसी शून्य गुफा में जा पड़ते और बिना कुछ खाये-पिये लगा-

तार कई दिनों तक उसी में पड़े रहते। कभी गंगा-तट पर बैठ जाते, जहां आनन्दाश्रु अपने-आप उनके नेत्रों से झरने लगते। इस त्रिवेणी की याद से उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। तीन नदियों का संगम, दो उनके नेत्रों के निर्झर और एक आकाश के नेत्र की गंगा—तीनों का सम्मिलन टेहरी में होता था।

आदमी उनके पास जाते थे किन्तु उन्हें आदमियों के पास जाने की इच्छा न थी। तत्कालीन टेहरी महाराज उनके बड़े भक्त थे। राजा साहब प्रायः स्वामी जी के दर्शनार्थ आते थे किन्तु स्वामी जी अपने उल्लासमय दीर्घ अट्टहास और अपनी काव्यधारा के उज्ज्वल प्रकाश से राजा की इस श्री-सम्पन्न भेंट के अवसर को उतना ही महत्व देते थे जैसे उन्हें किसी उत्तम अश्व को देखने का निमंत्रण मिला हो। लाहौर छाड़ने के बाद तीन वर्ष के हिमालय-प्रवास का अधिकांश समय प्रकृति के नंगे वक्षस्थल पर ही बीता और इस प्रकार प्रकृति देवी के साथ उनके परिचय की घनिष्ठता इतनी अधिक बढ़ गयी कि जब वे नीचे मैदानों में उतरे तो वे पूर्णतः उसके गुह्यतम रहस्य से भरे हुए थे और आत्मविश्वास के बल पर वे प्रायः कहा करते थे कि प्राकृतिक तत्व तो मेरे मित्र हैं, प्रकृति देवी स्वयं मेरी आज्ञाओं की प्रतीक्षा में रहती है—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मेरा शरीर है, नदियां मेरी नसें हैं, पहाड़ मेरी हड्डियां। जैसे मेरा हाथ मेरे शरीर के किसी हिस्से को खुजलाने के लिए अपने-आप चला जाता है, उसी प्रकार प्रकृति स्वतः मेरी आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तत्पर रहती है। हिमालय के शिखरों पर बर्फ के तूफान, जहां दूसरे बच नहीं सकते, मेरे लिए सुकोमल स्वच्छ मख-मली बर्फ की चादर बिछा देते हैं, जिससे पैर रखने में कोई कष्ट न हो। चट्टानों पर मोजा या जूता पहन कर चलना पाप, घोर पाप है। नंगी भूमि के स्पर्श से नंगे पैर में सर्वज्ञता उत्पन्न हो जाती है—मेरे मांस को शिलाओं के मांस से स्पर्श करना होगा, पूर्णरूप में एक

दूसरे को पूर्णरूप से समझने के लिए। जब हम लोग हृदय से हृदय मिला कर एक दूसरे से बातें करते और एक दूसरे को समझते हैं तो हमारा प्रेम चुपचाप पृथ्वी के भीतर चलता हुआ दोनों वक्षस्थलों में प्रवेश कर जाता है। खुदी की 'ई' गिरा देने से मनुष्य खुदा हो जाता है। आओ, इस 'ई' को बहती गंगा में बहा दो। नर नारायण है, यदि उसके हृदय का प्रेम ऊपर ईश्वर की ओर उठता है और ईश्वर के आशीर्वाद के साथ पुनः एक दूसरी धार में उसके पास लौट आता है। मैं शिव हूँ, मालाबार और कोरोमण्डल मेरी दो टांगें हैं, राजपूताने की मरुभूमि मेरा वक्षस्थल है, विन्ध्याचल पर्वत मेरी कमर है, पूर्व और पश्चिम की ओर मैंने अपनी बाहें फैला रखी हैं। हिमालय मेरा जटा-जूट सम्पन्न सिर है और मेरे ही जटाजूटों में वह शुद्ध-पवित्र निर्मल गंगा लहराती फिरती है। मैं भारतवर्ष हूं, मैं मनुष्य हूं, पशु हुं, पक्षी हूं, ईश्वर हूं। ऐसी थी हमारे राम की भाषा! उनकी भाषा में यदि एक ओर उनके आंसुओं की वर्षा है तो दूसरी ओर उनके अट्टहास का प्रखर प्रकाश। इसमें यदि शान्त और गंभीर ध्यान और समाधि का तुषारपात है तो उदासी भरी पतझड़ की सूखी पत्तियों का बवण्डर भी है, जो उन पत्तियों को हवा के झोंकों की इच्छा के अनुसार इधर-उधर—चारों ओर बिखेर रहा है। उन्होंने कहा था—लोग मेरे निरन्तर परिश्रम की यातना को नहीं देख पाते, जो मेरी जड़ों को फूलों से हरे-भरे वसन्त की प्रफुल्लता खिलाने में करना पड़ता है। संसार केवल मेरे आनन्द और आह्लाद में हाथ बटाना चाहता है, वह मेरी घोर तपस्या को नहीं जानता।

उनके हृदय में एक संदेश था, जिसे वे देना चाहते थे, उनके पास आनन्द का भाण्डार था, जिसे वे सारे संसार में बाँटना चाहते थे। सत्य की लगन भीतर ही भीतर उनके हृदय में धड़क रही थी, जैसी कि किसी अवतार में अपनी कार्य-सिद्धि के लिए अनन्त बेचैनी होती है।

भीतर ही भीतर उनकी उत्सुकता उग्र रूप धारण कर रही थी, वे उस ज्ञान के आचार्य बन रहे थे, जिसे वे वेदांत के नाम से पुकारते थे। किन्तु उनका वेदान्त उनका अपना वेदान्त था। मुसलमान की नमाज में, भागवत की भगवद्-भक्ति में, शहीद के उत्सर्ग में, देशभक्त उग्र नेता के आवेग में, 'शैली' के काव्य में, 'स्पीनोजा' के दर्शन में, 'शम्सतवरेज' की मस्ती में, अपने प्रेमी के लिए प्रेमविभोर महिला के संगीत में वे अपने वेदान्त को देखते और समझते थे। जो कुछ भी भीतर ही भीतर इस प्रकार उनके हृदय में इकट्ठा हो रहा था, वह वहां कैसे समाता ? उसने हृदय की पतली चादर को फोड़ कर उनके गीतों और निबन्धों के रूप में बहना प्रारम्भ कर दिया था। इसका काल का उनका संपूर्ण आत्म-चरित्र उनके उस सामयिक प्रकाशन के प्रथम पांच अंकों में पूरा-पूरा व्यक्त हुआ है जिसे उन्होंने 'अलिफ' का नाम दिया था—यह बतलाने के लिए कि वर्णमाला का पहला अक्षर सीखना ही उनके लिए बहुत है, आगे के वर्णों की उन्हें आवश्यकता नहीं।

एक दिन टेहरी के राजा साहब स्वामीजी के पास यह समाचार लेकर आये कि टोकियो में एक सर्व-धर्म-सम्मेलन—संसार भर के धर्मों की एक व्यापक सभा होने वाली है, ठीक वैसी-जैसी १८९३ में शिकागो में हुई थी। यह १९०२ की बात है। राजा साहब ने यह भी कहा कि उसके लिए जो तिथियां दी गयी हैं, उन पर स्वामी जी टोकियो पहुँच सकते हैं; यदि वे अविलम्ब ही यहां से चल दें और पूर्व की ओर जाने वाला पहला जहाज पकड़ लें। स्वामी जी तैयार हो गये और लगभग एक सप्ताह में ही वे जापान जाने वाले जहाज पर बैठे दिखायी दिये।

बीच के कई बन्दरगाहों पर हिन्दू व्यापारियों ने उनका स्वागत किया। जापान पहुँचने पर वे याकोहामा में एक दिन के लिए मेसर्स बसायामल आशोमल के अतिथि हुए और दूसरे ही दिन उक्त फर्म

के एक साथी को लेकर टोकियो आये। यहां उन्होंने सीधे उस भवन की राह ली, जो उस समय 'इण्डो-जापानी क्लब' के नाम से प्रसिद्ध था और जिसका मैं उस समय मंत्री था तथा कुछ अन्य भारतीय विद्यार्थियों के साथ उसी क्लब में रहता था। अब वह क्लब उन्नत होकर इण्डो जापानी सोसायटी के नाम से संगठित हुआ है और साथ ही उसका कार्य पूर्वापेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

ज्योंही याकोहामा के आदमी ने क्लब में प्रवेश करके दो भगवा वस्त्रधारी साधुओं का परिचय कराया त्योंही एक प्रसन्नता की लहर चारों ओर दौड़ गयी। उनमें से बड़े स्वामी के मुंह से चिड़ियों की स्वाभाविक चहचहाहट की भांति ओम्-ओम् की मधुर ध्वनि गुंजार रही थी—उसका प्रभाव जादू से भी बढ़कर था। स्वामी राम के साथ उनके शिष्य स्वामी नारायण भी थे। मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता था, पर मैं तो उत्साह के मारे पागल जैसा हो गया। उनकी भाषा ऐसी—इतनी विचित्र थी, उनके मुख-मंडल पर ऐसा आध्यात्मिक तेज था कि चुपचाप उनके आज्ञापालन के सिवा मैं कुछ न कर सकता था। मुझसे छोटे स्वामी जी ने पूछा—आप किस देश के निवासी हैं? मेरी आँखों में आँसू छा गये—मधुर और प्रेमीभरी आवाज से कहा—सारा संसार मेरा घर है।

झट बड़े स्वामी जी ने मेरी आंखों की ओर देखा और बोले—भलाई करना मेरा धर्म है।

बस, इन दो वाक्यों में हम एक दूसरे से मिले।

मुझे उस दिन बौद्ध विश्वविद्यालय में एक वृहत् समाज के सामने व्याख्यान देने जाना था। मैंने स्वामी जी को निमंत्रण दिया—उसी दिन जब वे टोकियो पहुँच थे, लोगों से बोलने के लिए कहा। वे तैयार हो गये। हम सब ट्रामकार में जा बैठे। मैंने कांच की खिड़की से अपना सिर टिका लिया, मुझे ध्यान ही न था—कहां बैठा हूं। और वही ओम् का मधुर शब्द गुनगुनाने लगा, उसकी ध्वनि से

मेरे हृदय के अन्तस्तल में संगीतमय गुदगुदी पैदा हो रही थी। इसके सिवा मैंने व्याख्यान की कोई तैयारी न की थी। मैं गया, उठा और बोला। श्रोतागण मुग्ध हो गये। मैंने स्वामी राम का भी परिचय दिया। वे बोले—जैसे अग्नि की चिनगारियां बिखर रही हों। आस्ट्रेलिया से भी बौद्ध थियोसोफिस्ट आये हुए थे। सब सुनकर ध्यानावस्थित हो गये। उस दिन उनके साथ उसी मंच पर जापान के कारलायल श्री कंजोयूचीमुरा ने भी भाषण दिया।

हम लोगों को लौटते समय रात्रि अधिक हो गयी थी। राम बोले—मुझे एक ऐसा आदमी चाहिए, जैसे तुम हो, जिसने अपने हृदय की निर्द्वन्द्व शांति में अपना चमत्कारिक व्याख्यान तैयार किया हो, जो टोकियो की सड़कों में—टोकियो की सबसे अधिक शोर-गुल वाली सड़क पर चक्कर काटता हुआ भी ऐसा कर सकता हो। ठीक, बिल्कुल ठीक ऐसा। यही शांति तो जीवन का रहस्य है। इसी को मन की एकाग्रता कहते हैं। यही वह संगीतमय मौन है, जहां बड़े-बड़े विचारों का उदय होता है, वे स्वप्न प्रकट होते हैं, जो मनुष्य जाति को उन्नति के पथ पर ले गये हैं। शांतिपूर्ण आनन्द की इस दशा में ही ज्ञानरश्मियां यकायक मनुष्य के मस्तिष्क में चमक उठती हैं। मानसिक शांति की इस पूर्ण अवस्था में किसी प्रकार का शारीरिक तनाव भी नहीं रहता, जैसे शरीर प्रकृतिस्थ हो गया हो। यही वेदान्त का योग है। यह सचमुच बड़ी भारी चीज है। स्वामी राम ये बातें बड़े उत्साह से कह रहे थे। किन्तु मैं कुछ न सुन सका, क्योंकि मेरे हृदय में उस आनन्द की हलचल मची हुई थी जो किसी नवयुवती को अपने स्वप्नों के अनुरूप पुरुष के प्रेम में वशीभूत होने पर सर्व प्रथम हुआ करती है। मेरे हृदय के अंतस्तल में इतना आन्दोलन मचा हुआ था कि उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनना मेरी शक्ति के बाहर हो रहा था। मैं इधर-उधर दौड़ रहा था। जैसे कभी यों ही बिना किसी प्रयोजन उनके कमरे में घुसता और फिर

यों ही अकारण बाहर चला आता। न तो मैं उनके पास बहुत देर तक ठहर ही सकता था और न बहुत देर तक उनसे दूर ही रह सकता था। मैं किसी प्रकार अपने को रोक नहीं पाता था। मैं उनसे प्रेम करने लगा, वे मेरे हृदय में चुभ गये। सच तो यह है कि यदि मैं लड़की होता तो उन्हें पाने के लिए अपना सर्वस्व ही लुटा देता। किन्तु एक बात सुनिश्चित है कि जो कुछ वे कह रहे थे, उसका एक शब्द भी मैंने नहीं सुना, फिर भी आश्चर्य यह कि एक-एक शब्द जो उनके मुंह से निकलता था, मेरे हृदय-कोष में बड़ी सावधानी से संचित हो जाता था और इस समय भी मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, उसका एक-एक अक्षर सत्य है।

* * *

दूसरे दिन मैं पुरानी पुस्तकों की एक दूकान से दो बड़े-बड़े ग्रंथ जिनमें सन् १८९३ में सर्व-धर्म-विश्व-सम्मेलन का कार्य विवरण एवं भाषणादि छपे थे, उठा लाया और घर आकर उनको राम की मेज पर रख दिया।

"ओह, ठीक यही चीज, इसी पुस्तक की इच्छा राम के हृदय में उठी थी। कैसे तुम्हारे हाथ लगी? प्रकृति माता स्वयं अपने हाथों से राम की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही है।"

हम लोग बड़ी देर तक उस विश्व-सम्मेलन की चर्चा करते रहे, जो टोकियो में होने वाला था। जब स्वामी जी को पता चला कि वास्तव में वैसा कोई सम्मेलन नहीं होने वाला है तो वे जी खोल कर हँसे और बोले—प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं! राम को हिमालय के उस एकान्त-निवास से निकाल संसार का पर्यटन कराने के हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली। वह झूठा समाचार क्या-क्या गुल खिला रहा है! राम तो स्वयं अपने आप धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्वसम्मेलन नहीं करना चाहता, तो न करने दो उसे, राम तो अपना सम्मेलन करेगा ही।

राम के पहुँचने के ठीक दूसरे दिन पूना के प्रोफेसर छत्रे टोकियो में अपने सर्कस का पहला प्रदर्शन करने वाले थे। सभी भारतीय छात्र और स्वामी राम साथ-साथ उसे देखने गये। इस स्थान में सुप्रसिद्ध पूर्वीय विद्वान और टोकियो इम्पीरियल यूनीवर्सिटी के संस्कृत प्रोफेसर श्री प्रोफेसर तकात्कुसु से राम की भेंट हुई। चलते समय उन्होंने मुझसे कहा—मैं इंग्लैण्ड में प्रोफेसर मेक्समूलर के यहां बहुत से पण्डितों और दार्शनिकों से मिला हूँ। दूसरी जगहों में भी मेरी ऐसे लोगों से भेंट हुई है। परन्तु मैंने ऐसा महान व्यक्ति कहीं नहीं देखा, जैसे स्वामी राम हैं। वे तो अपनी सम्पूर्ण दार्शनिक विचार-धारा के जीते-जागते उदाहरण हैं, ऐसे अर्थपूर्ण कि कुछ कहते नहीं बनता। उनमें वेदान्त और बौद्धधर्म एक स्थान पर एकत्र हुआ है। वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि और एक सच्चे दार्शनिक हैं।

श्री के० हिराई ने भी उनको वहीं देखा था और उनकी अलौकिकता, त्रिगुणातीत अवस्था की बड़ी प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा था कि राम की अलौकिकता ने तो उनके स्थूल शरीर को भी दिव्य बना दिया है।

मैं उनके पास दूसरी कतार में बैठा हुआ तमाशा देख रहा था और हमारे सामने थी श्रीसम्पन्न भद्र महिलाओं की एक पूरी पंक्ति, अपने रंग-बिरंगे किमोनोज और तड़क-भड़कदार ओविस—एक प्रकार का अति श्रेष्ठ सिर को ढँकने वाला वस्त्र पहने हुए। हिमसदृश उज्ज्वल गर्दनों की यह पूरी कतार, कैसी सुन्दर, कैसी आकर्षक ! मैं इस जीते-जागते सौंदर्य के अनुपम दृश्य को एक निगाह देखने का लोभ संवरण न कर सका, किन्तु तुरन्त मेरे मन में हुआ कि यदि कहीं स्वामी जी ने मेरी आखों को चोरी करते पकड़ लिया तो··· ?

यकायक उनके मुख से निकला, जैसे मेरी आँखों की इस भावमय चोरी का अनुमोदन कर रहे हों—पूरन जी, गर्दनों की यह

पंक्ति तो ऐसी लगती है जैसे काली-काली धारीदार चट्टानों से गंगा इतनी अधिक स्वच्छ पतली-पतली धाराओं में फूट पड़ी हो।

जब हम पण्डाल से बाहर निकले तो रात्रि बहुत हो गयी थी, न कोई रिक्सा ही मिला और न ट्राम-कार। स्वामी जी पैदल चल खड़े हुए और हम लोग पीछे-पीछे। वे बहुत ही तेज चलने वाले थे, हम लोगों को उनके साथ चलना कठिन हो गया।

प्रतिदिन संध्या समय लोग उनके पास इकट्ठे हो जाते थे—भारतीय और जापानी उनके वचनों को मंत्रमुग्ध हो, ध्यान से सुनते थे। केवल मैं अपनी आंखें बन्द करके एक ऐसे उत्साह में डूबा रहता, जो मेरे संयम से बाहर होता। मैं कुछ भी न सुनता और सब कुछ सुनता। मेरे होंठ ओम्-ओम् से कँपते रहते।

उन्होंने टोकियो के कामर्स कालेज में एक बहुत ही महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया जिसका विषय था 'सफलता का रहस्य'। उसकी विचित्र आभा ने विशाल जनता का ध्यान आकृष्ट किया। रूसी राजदूत ने जब समाचार पत्रों में उस व्याख्यान को अंकित देखा तो स्वामी जी से भेंट करने की इच्छा प्रकट की किन्तु स्वामी जी सन्-फ्रांसिस्को चल चुके थे।

"मैं जापान में 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' गाता हुआ उतरा और पूर्णमदः पूर्णमिदम् गाता हुआ ही जा रहा हूँ। संस्कृत श्लोक का अर्थ है—यह भी पूर्ण, वह भी पूर्ण, पूर्ण से निकले पूर्ण, फिर भी बाकी रहता पूर्ण।" इस प्रकार उन्होंने उस विशेष अवसर पर बड़े प्यार से मेरे नाम की ओर संकेत किया था। उन्होंने कहा—मैं सर्व-धर्म-विश्वसम्मेलन के लिए नहीं निकला था, मैं तो आया था पूरन को मार्ग दिखाने। बस, मैं तुरन्त उनके प्रेम के मारे सर मुड़ा कर साधु बन गया—इसलिए नहीं, कि मैंने उनसे कुछ शिक्षा पायी थी, क्योंकि मैं उस समय उनकी बात समझता ही न था। और आज भी सन्देह है कि उनकी हर एक बात समझता हूं या नहीं।
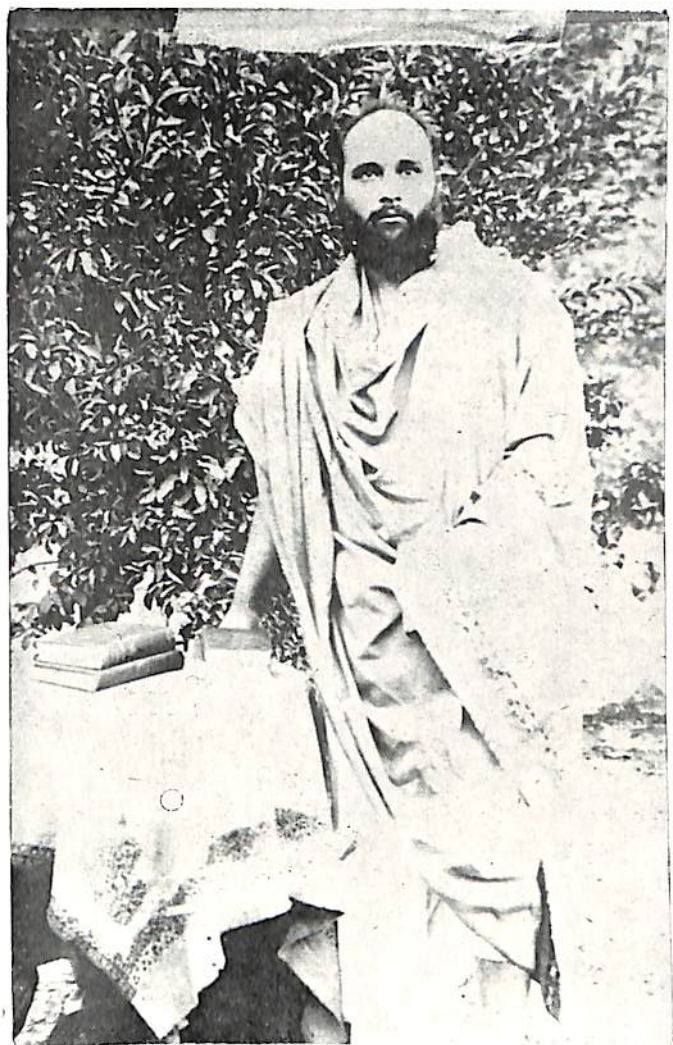
सरदार पूरन सिंह

उनके अमरीका को प्रस्थान करने के लगभग दो मास बाद टोकियो में मेरा फोटो लिया गया। मेरे बहुत से मित्र कहने लगे—ऐसा लगता है जैसे तुमने अपनी केंचुली उतार कर उन्हीं की रूप-रेखा ग्रहण कर ली हो। मैंने दो-एक व्याख्यान भी दिये, जो सामयिक पत्रों में प्रकाशित हुए। किन्तु आश्चर्य, उनमें वही विचार और बहुत से स्थलों पर तो ठीक वही शब्द थे जो उनके अमेरिका के भाषणों में पाये जाते हैं। इसके बाद मैंने भारतवर्ष में अनेक स्थानों में व्याख्यान दिये और उनके पास अपने व्याख्यानों की टाइप की हुई प्रतियां भेजीं। उनके हृदयस्थ विचार मैं पहले ही यहां सुनाने लगा था।

राम ने मुझसे कहा कि उन्होंने जापानियों की एक चीज भारतवर्ष में सुनी थी। वे एक ऐसी छड़ी बनाते हैं, जो इच्छानुसार स्टूल (बैठक) और छाता में बदली जा सकती है। मुझे आश्चर्य हुआ! क्योंकि मैंने ऐसी विचित्र चीज कभी न देखी थी। मैं उन्हें केनकोवा पार्क (जापानी बाजार) में ले गया और वहाँ उसके बारे में पूछताछ की। लो, वहाँ हमें वही चीज मिली, जिसे वे चाहते थे। उसे देखकर वे ऐसे प्रसन्न हुए जैसे बच्चे खिलौना पाकर हर्ष से नाच उठते हैं। वे घंटों उससे खेलते रहे। जोर-जोर से हंसते, कभी उसे स्टूल बनाते, कभी छाता और कभी छड़ी बनाकर टेक-टेक कर चलने लगते। जब हम केनकोवा में यह सौदा कर रहे थे तो अनेक दूकानों की सौदा बेचने वाली लड़कियां उनके पीछे हो लीं और एक सिरे से दूसरे सिरे तक बराबर उनके पीछे-पीछे घूमती रहीं। एक भी ऐसी न थी, जिसने दूकान छोड़कर उनका पीछा न किया हो। वे उनके वस्त्र छूने लगीं और साग्रह उन्हें ताकती रहीं। उन्होंने आपस में कहा—यह तो हम सबसे अधिक सुन्दर है। वे मुझसे जापानी में बोलीं—(राम जापानी न समझते थे) कैसा मजा है, हम सभी इस अपूर्व सौंदर्य की प्रतिमा के साथ शादी करने के लिए

तैयार हैं। वे हंसती और खिलखिलातीं, हंसी-मजाक करतीं और उनके साथ खेलना चाहती थीं। स्वामी जी कुछ असमंजस में पड़ गये, उनकी भाषा वे जानते न थे। मुझसे पूछा—ये क्या कहती हैं। मैंने जान-बूझकर झूठी बातें बना दीं। मैंने कहा—ये वेदान्त पर आपकी बातें सुनना चाहती हैं, ये वेदान्त सीखने के लिए आपके पास आना चाहती हैं। क्या आप इन्हें पढ़ायेंगे! राम ने सिर झुकाया और बोले—कह दो इनसे, राम के यहां सदैव इनका स्वागत होगा। राम तो इनका भी उतना ही है जितना औरों का।

वे लगभग एक पक्ष तक टोकियो में रहे और फिर उस जहाज में अमरीका चले गये जो पूना के प्रोफेसर छत्रे ने अपना सरकस ले जाने के लिए किराये पर लिया था।

सफलता का रहस्य

टोकियो में 'सफलता के रहस्य' पर बोलते हुए स्वामी राम ने निम्नलिखित व्याख्यान दिया था—

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं मालूम होता कि भारतवर्ष से एक अभ्यागत आकर आपके समक्ष एक ऐसे विषय पर भाषण करे, जिसे प्रत्यक्षतः जापान ने भारत की अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी से ग्रहण किया है। यह बात हो सकती है किन्तु एक से अधिक ऐसे कारण हैं जिनके बल पर राम यहाँ शिक्षक के रूप में खड़ा है।

किसी विचार को दक्षता के साथ कार्य-रूप में लाना एक बात है और उसके आधारभूत मौलिक अर्थ को हृदयंगम करना एक बिल्कुल दूसरी बात है। चाहे कोई राष्ट्र वर्तमान समय में कतिपय मौलिक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करता हुआ भले ही खूब फल-फूल रहा हो किन्तु यदि राष्ट्रीय मस्तिष्क भले प्रकार उन सिद्धान्तों को

समझता नहीं है, यदि उनके पीछे कोई सुनिश्चित ठोस आधार नहीं, तो उस राष्ट्र के पतन की सम्भावना बराबर बनी रहती है। एक श्रमिक जो किसी रासायनिक क्रिया को सफलता पूर्वक व्यवहृत करता है, वस्तुतः रसायन-शास्त्र-वेत्ता नहीं है। एक कोयला झोंकने वाला जो सफलता के साथ किसी वाष्प इंजिन को चला लेता है, इंजीनियर नहीं हो सकता, क्योंकि उसे केवल यांत्रिक अभ्यास हो गया है। तुमने उस डाक्टर की कथा पढ़ी होगी, जो शरीर के क्षत-विक्षत अंग को पूरे एक सप्ताह तक रेशमी पट्टी से बांध कर अच्छा किया करता था किन्तु उसे नित्य अपनी तलवार से छूना अनिवार्य मानता था। पट्टी के द्वारा बाहरी गर्द से रक्षा होने के कारण घाव अच्छे हो जाते थे। किन्तु वह कहता था कि उसकी तलवार के स्पर्श में ही घावों को चंगा करने की अद्भुत शक्ति है। और ऐसा ही उसके रोगियों का विश्वास हो गया। किन्तु इस अन्धविश्वासमूलक कल्पना से बीसों रोगियों को असफलता के सिवा और कुछ हाथ न लगा, क्योंकि उनके घावों में केवल पट्टी के अतिरिक्त अन्य उपचारों की आवश्यकता थी। अतएव हर बात में यह परमावश्यक है कि यथार्थ सिद्धान्त और यथार्थ अभ्यास सदा साथ-साथ चले।

दूसरी बात यह है कि राम जापान को अपना ही देश मानता है। और उसके निवासियों को अपना देशवासी। राम तर्कपूर्ण आधार से यह सिद्ध कर सकता है कि प्रारम्भ में आपके पूर्व पुरुष भारतवर्ष से ही यहां स्थानान्तरित हुए थे। आपके पूर्व पुरुष राम के पूर्व पुरुष हैं। अतः राम एक भाई के समान, न कि किसी अपरिचित की भांति हाथ मिलाने आया है। एक और कारण है जिसके बल पर भी राम इसी अधिकार का दावा कर सकता है। राम अपने जन्म ही से, अपनी प्रकृति, चाल-ढाल, स्वभाव और हृदय से, जापानी है। इन प्रारम्भिक शब्दों के अनन्तर राम अब अपने विषय पर आता है।

सफलता का भेद एक खुला हुआ भेद है। इस विषय पर प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कह सकता है और स्यात् तुमने इसके साधारण सिद्धान्तों की व्याख्या सुनी भी होगी। किन्तु विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक है कि लोगों के हृदय में उसे भली भांति पैठाने के लिए उस पर जितना अधिक बल दिया जाय उतना ही थोड़ा है।

पहला सिद्धान्त—काम

सबसे पहले हमें यह प्रश्न चारों ओर से घेरने वाली प्रकृति से करना चाहिए। कल-कल ध्वनि से बहने वाले निर्झर और एक ही स्थान में वद्ध रहने वाले तालाब अपनी मूक और असंदिग्ध भाषा में हमें निरन्तर एक ही उपदेश दिया करते हैं—निरन्तर काम करो, अहर्निश काम करो। प्रकाश हमें देखने की शक्ति प्रदान करता है। प्रकाश ही प्राणिमात्र का प्राण और मुख्य आधार है। आओ, देखें स्वयं प्रकाश के द्वारा इस प्रश्न पर क्या प्रकाश पड़ता है। राम उदाहरण के लिए एक लैंप, साधारण दीपक को ही लेगा! दीपक की चमक और प्रकाश का अंतरंग रहस्य क्या है? वह कभी अपने तैल और बत्ती का बचाव नहीं करता। तैल और बत्ती अथवा उसकी क्षुद्र आत्मा निरन्तर जलती रहती है, तभी उसका प्राकृतिक परिणाम होता है प्रकाश और प्रताप। लो, लैंप का संदेश हो चुका—'अपने आप' का बचाव करो और तुम्हारा नाश हो जायगा। यदि तम अपने शरीर के लिए सुख और विश्राम चाहते हो, यदि अपना सारा समय भोग-विलास और इन्द्रिय-सुखों में गँवाते रहते हो तो तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि अकर्मण्यता मृत्यु रूप है। केवल काम और क्रिया ही हमारा जीवन और प्राण है। एक ओर चौहद्दी से घिरा हुआ तालाब है

और दूसरी ओर बहती हुई सरिता। दोनों की तुलना करो। बहती हुई नदी का जल मोती जैसा स्वच्छ, तरो-ताजा, निर्मल, पीने-योग्य और चित्ताकर्षक रहता है। इसके विरुद्ध एक सीमाबद्ध तालाब का पानी कितना गंदा, बदबूदार, मैला और चिपचिपाने वाला होता है। यदि तुम सफलता चाहते हो तो कार्य का मार्ग, सरिता की निरन्तर गति का अनुसरण करो। जो मनुष्य अपने तैल और बत्ती का व्यय न करेगा, अपितु उसकी रक्षा में ही अपना सारा समय लगा देगा, उसके लिए आशा का कोई मार्ग नहीं। नदी की नीति को ग्रहण करो, जो सदा आगे ही आगे बढ़ती है। जो सदैव अपने आप को परिस्थितियों के अनुकूल बनाती हुई अपना व्यवहार बढ़ाती जाती है, गति ही जिसका जीवन हो रहा है। कार्य, निरन्तर कार्य, अटूट कार्य ही सफलता का पहला सिद्धांत है। "नित्य प्रति उत्तम से उत्तमतर बनते जाओ"। यदि तुम इस सिद्धान्त का अवलम्बन करो तब बड़ा बनना तुम्हारे लिए उतना ही आसान होगा जितना छोटा रह जाना।

दूसरा सिद्धान्त—आत्म-त्याग

प्रत्येक व्यक्ति सफेद, श्वेत वस्तुओं को प्यार करता है। आओ, देखें—श्वेत वस्तुयें क्योंकर मनुष्य मात्र की प्रेमपात्र बन जाती हैं। हमें श्वेत की सफलता का पता लगाना होगा। काली चीजों से सभी लोग घृणा करते हैं। उन्हें तुच्छ समझते है, फेंक देते हैं। यह एक तथ्य है, हमें इसके कारण की खोज करनी होगी। प्रकृति-विज्ञान हमें रंगों के प्रदर्शन का रहस्य बतलाता है। लाल लाल नहीं है, हरा हरा नहीं है, काला काला नहीं है। वस्तुतः जैसा हम देखते हैं, वह वैसा नहीं है। गुलाब के लाल पुष्प में वह लालिमा कहाँ से आती है? वह स्वयं उसकी फेंकी हुई चीज है। सूर्य की किरणों के

और सब रंग तो उसने अपने अन्तर में पचा लिये हैं। किसी को गुलाब द्वारा पचाये हुए इन रंगों का पता नहीं चलता। हरा पत्ता प्रकाश के अन्य सब रंग अपने में आत्मसात् कर लेता है और केवल उस एक हरे ताजे रंग को बाहर प्रकट करता है जिसे वह अपने भीतर लेने से इन्कार करता है, और बाहर फेंक देता है। काली वस्तुओं का यह स्वभाव होता है कि वे प्रकाश के सारे रंगों को खा लेती हैं और प्रकाश का नामोनिशान भी बाकी नहीं छोड़तीं। उनमें आत्म-त्याग की भावना नहीं रहती—उदारता रंच-मात्र भी नहीं होती। वे रश्मि की एक रेखा भी नहीं त्याग सकतीं। सूर्यरश्मि जो उन्हें अपने हिस्से में मिलती है, वे सब की सब खा जाती हैं। प्रकृति हमें आदेश देती है कि इसी प्रकार वह मनुष्य—जो अपने में से रत्ती भर भी अपने पड़ोसियों को नहीं देता, वह काला, कोयला जैसा काला हो जायगा। श्वेत वस्तुओं के सद्गुण को ग्रहण करो और तुम सफल हुए बिना नहीं रह सकते। श्वेत से राम का क्या अभिप्राय है ? यूरोप निवासी श्वेतांग ! नहीं, केवल श्वेतांग यूरोपियन ही नहीं, स्वच्छ दर्पण, स्वच्छ मोती, सफेद फाखता, स्वच्छ हिम—संक्षेप में पवित्रता और सच्चाई सूचक सभी सुन्दर चिन्ह इस विषय में, तुम्हारे पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं। उनका मार्ग ग्रहण करो, और असंदिग्ध रूप में आत्म-त्याग की भावना को सीख लो। जो कुछ दूसरों से लिया हो उसे दूसरों को ही दे डालो। स्वार्थमय संचय के पथ से हट जाओ और अपने आप स्वच्छ बन जाओगे। बीज यदि चाहता है कि एक सुन्दर कलिका के रूप में खिले तो पहले उसे अपने आप को खाद में गला देना होगा। पूर्ण आत्म-बलिदान अन्न में फल लाता है, उसका फल लाना अनिवार्य है। सभी शिक्षक और उपदेशक राम की इस बात को मान्य करेंगे कि हम जितना ही अधिक वितरण करते हैं, उतना ही अधिक पाने के हम अधिकारी बनते जाते हैं।

तीसरा सिद्धान्त—आत्म-विस्मृति

विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव होगा कि जब वे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में भाषण करते हैं तो ज्योंही "मैं भाषण कर रहा हूँ" यह विचार उनके मन में जोर से प्रकट होता है त्योंही व्याख्यान फीका पड़ जाता है। काम करते हुए अपनी क्षुद्र आत्मा को भूल जाओ, पूर्णतः उसमें अपने आप को डुबो दो, तब अवश्यमेव सफलीभूत होगे। यदि कुछ सोचते हो तो स्वयं सोच-विचार बन जाओ, अवश्यमेव सफलता मिलेगी, यदि काम करते हो तो काम बन जाओ, सफलता अवश्य मिलेगी।

मैं कब स्वतंत्र हूँगा ?
जब मिट जायगी "मैं" !

दो भारतीय राजपूतों का एक किस्सा है। वे एक बार अकबर, भारतवर्ष के बड़े मुगल बादशाह के पास पहुंचे और नौकरी के लिए प्रार्थना करने लगे। अकबर ने उनकी योग्यता के बारे में पूछताँछ की। उन्होंने कहा—वे शूरवीर हैं। अकबर ने आज्ञा दी—प्रमाण ! दोनों ने तुरन्त म्यान से अपनी अपनी तलवारें निकाल लीं। क्षण भर के लिए अकबर के दरबार में बिजली कौंध गयी। खंजरों की चमक उनकी अंतरंग वीरता की सूचक थी। लो, दूसरे ही क्षण बिजली की इन दोनों कौंधों ने दोनों शरीरों को एक कर दिया। दोनों ने अपनी अपनी तलवार को दूसरे की छाती पर गड़ा दिया—नहीं, दोनों ने उसे दूसरे की छाती में ऐसी धीरता से घुसेड़ दिया, जो संसार में बहुत ही कम देखी जाती है। उनकी वीरता का प्रमाण पूरा दुआ। शरीर गिर पड़े, आत्मायें मिल गयीं। सब ने उनकी वीरता पर साधुवाद दिया। किस्से से हमें विशेष प्रयोजन नहीं, इस उन्नत युग में ऐसी शूरता से हमारे हृदय को चोट पहुंच सकती है किन्तु उससे हमें एक शिक्षा मिलती है। वह शिक्षा है, अपने 'क्षुद्र

अहम्' का त्याग करो और सफलता तुम्हारे हाथ जोड़ेगी। अन्यथा हो ही नहीं सकता। राम कहता है—काम करते-करते सफलता की इच्छा मर जाय और सफलता तुम्हारे सामने खड़ी है।

चौथा सिद्धान्त—सार्वभौमिक प्रेम

'प्रेम' सफलता का एक दूसरा सिद्धान्त है। प्रेम करो और लोग तुम से प्रेम करेंगे।। बस, यही लक्ष है। हाथ, यदि जीवित रहना चाहता है, तो उसे शरीर के अन्य अंगों से प्रेम करना होगा। यदि वह अपने को सबसे पृथक कर ले और सोचे कि मेरी कमाई से दूसरे अंग क्यों लाभ उठायें तो हाथ का काम हो चुका, उसका मरण अनिवार्य है। यदि हाथ अपनी स्वार्थ-वृत्ति पर डट ही जाय तो उसे मुख में उस खान और पान को रखने की क्या आवश्यकता जिसे वह केवल अपने परिश्रम के बल पर प्राप्त करता है—चाहे उसने वह परिश्रम कलम के द्वारा किया हो अथवा तलवार के द्वारा। उस स्थिति में उसे भोजन के उत्तमोत्तम पदार्थ अपने चर्म में ही घुसा लेने चाहिए। और तभी वह दूसरे अंगों को अपनी कमाई से से वंचित कर सकता है। हां, यदि उसे अपना फुलाना ही इष्ट हो तो वह किसी विषैली मक्खी से भी अपने को कटवा सकता है। किन्तु सूजन हानि के सिवा लाभ नहीं पहुंचा सकती। सूजन की मोटाई स्वास्थ्य का लक्षण नहीं। फूला हुआ हाथ अवश्य एक न एक दिन अपने स्वार्थ के कारण मर मिटेगा। हाथ केवल तभी फल-फूल सकता है, जब वह व्यवहारतः शरीर के अन्य अंगों के साथ अपनी वास्तविक आत्मीयता का अनुभव करे, और अपनी भलाई को सम्पूर्ण शरीर की भलाई से किसी भी प्रकार पृथक् न समझे।

जिसे हम सहयोग कहते हैं, वह इसी प्रेम का बाह्य रूपान्तर है। तुमने सहयोग, सहकारिता के लाभों के विषय में बहुत कुछ सुना होगा, राम को यहां उसके गुण गाने की आवश्यकता नहीं।

तुम्हारे हृदयस्थ प्रेम से ही उसका जन्म हो। प्रेम रूप बन जाओ और सफलता तुम्हारी बनी बनायी है। जो व्यापारी ग्राहकों के लाभ में ही अपना लाभ नहीं मानता, वह सफल नहीं हो सकता। फलने-फूलने के लिए उसे अपने ग्राहकों से प्रेम करना होगा। उसे अपने सम्पूर्ण हृदय से उनकी भलाई पर ध्यान रखना होगा।

पाचवाँ सिद्धान्त—प्रसन्नता

सफलता के सम्पादन में एक दूसरी बात जो महत्वपूर्ण कार्य करती है—वह है प्रसन्नता। आप जापानी लोग, राम के भाई हैं। राम को प्रसन्नता है कि आप लोग स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त हैं। तुम्हारे हरे-भरे चेहरों पर प्रसन्नता की मुस्कराहट देख कर राम को बड़ी प्रसन्नता होती है। तुम हंसते हुए फूल हो। तुम मनुष्य-जाति की मुस्कराने वाली कलिका हो ; तुम प्रसन्नता के अवतार हो। सो राम चाहता है कि आप अपने जीवन के इस शुभ लक्षण को अपने इतिहास के अन्त तक स्थिर रखें। राम आप को बतायेगा—यह कैसे हो सकता है !

अपने परिश्रम के फल के लिए कभी चिन्तित मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। भय को हृदय में स्थान मत दो। न सफलता की बात सोचो और न असफलता की। काम के लिए काम करो। काम स्वयं अपना पारितोषक है। भूतकाल के पीछे उदास मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो—वर्तमान में—प्रत्यक्ष वर्तमान में काम करो। दिन-रात काम करो। इस प्रकार की भावना तुम्हें हर एक परिस्थिति में प्रसन्न रखेगी। एक सजीव बीज में फलने-फूलने का गुण होता है, प्रेम पूर्ण सहानुभूति का अटल नियम है कि उस सजीव बीज को आवश्यकतानुसार वायु, जल, पृथ्वी और प्रकाशादि मिलना ही चाहिए। ठीक इसी भांति एक प्रसन्नचित्त कार्यकर्ता को हर प्रकार की सहायता का वचन प्रकृति ने पहले ही

से दे रखा है। "आगे का मार्ग अपने आप सूझ पड़ेगा, यदि जितना ज्ञात है, उतना यथार्थ रूप में पार कर लेते हो।" यदि अंधेरी रात्रि में तुम्हें बीस मील की यात्रा का अवसर आ पड़े और यदि हाथ का दीपक केवल दस फुट तक ही प्रकाश फेंकता हो तो उस सम्पूर्ण अंधेरे मार्ग की चिन्ता से क्यों मरे जाते हो ? तुम्हें तो अंधेरे में एक पग भी नहीं धरना पड़ेगा। इसी प्रकार एक सच्चे, कार्य-तत्पर कार्यकर्त्ता को कभी अपने पथ में कोई अकाट्य बाधा नहीं मिलती— यह प्रकृति का एक अनिवार्य नियम है। फिर भविष्य की घटना की चिन्ताओं से क्यों अपने हृदय के उल्लास को ठंढा करते हो ? वह मनुष्य, जिसे तैरना बिलकुल नहीं आता, यदि वह भी एक बार सहसा झील में गिर पड़े तो वह भी कभी डूब नहीं सकता, यदि केवल अपने शरीर को सम-भारत्व के बराबर बनाये रखे। मनुष्य का भार विशेषत्व (Specific gravity) जल के भार-विशेषत्व से कम होता है, अतः जल के धरातल पर उतराने में उसको कोई बाधा नहीं हो सकती। किन्तु ऐसे अवसर पर साधारण प्राणी एकदम अस्थिरचित्त हो जाते हैं, मात्र पानी के ऊपर रहने की चेष्टा में ही पानी में डूब जाते हैं। इसी प्रकार प्रायः भविष्य की सफलता के लिए चिन्ताकुल होने ही से असफलता का सूत्रपात होता है।

आओ, अब हम उस विचारधारा का निरीक्षण करें, जिसके कारण हम भविष्य की ओर आंखें लगाये रहते हैं। इसका उदाहरण यों हो सकता है कि मनुष्य स्वयं अपनी छाया को पकड़ना चाहता है। वह चाहे अनन्त काल तक ऐसा उद्योग करता रहे, वह कदापि, त्रिकाल में भी उसे पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकता। पर यदि वह छाया से मुंह मोड़ ले और सूर्याभिमुख हो जाय तो लो ! वही छाया उसके पीछे दौड़ना प्रारम्भ कर देगी। जिस क्षण तुम सफलता से मुंह मोड़ लेते हो, ज्योंही तुम फलादि की चिन्ता से मुक्त हो जाते हो, और वर्तमान कर्तव्य पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर देते हो,

बस, उसी क्षण सफलता तुम से आ मिलती है। नहीं, नहीं, तुम्हारा पीछा करने लगती है। अतएव सफलता का पीछा मत करो, सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ और तभी, उसी समय सफलता स्वयं तुम्हें ढूंढने लगेगी। न्यायालय में न्यायाधीश को वादी-प्रतिवादी, वकील अथवा चपरासियों को खोजना नहीं पड़ता। वह तो केवल न्यायासन पर बैठ भर जाय और न्यायालय का सारा व्यवहार अपने आप चल पड़ता है। राम के प्यारे मित्रो! यही अन्तिम तथ्य है। पूर्ण प्रसन्नता के साथ अपने कर्तव्य-कर्म में जुट पड़ो और सफलता के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता होगी, वे सब अपने-आप आ मिलेंगी।

छठा सिद्धान्त—निर्भीकता

दूसरी बात, जिस पर राम आपका ध्यान खींचना चाहता है और बारम्बार आदेश करता है कि आप उसे अपने अनुभव से सिद्ध करें, वह है निर्भीकता। एक भ्रू-निक्षेप से शेरों को वश में किया जा सकता है। एक ही दृष्टिनिक्षेप से शत्रु परास्त किये जा सकते हैं। निर्भीकता की एक ही झड़प से विजय प्राप्त की जा सकती है। राम ने हिमालय की सघन घाटियों में विचरण किया है। राम को शेर, चीते, भालू एवं अनेकों विषैले जीव-जन्तुओं का सामना करना पड़ा। परन्तु राम को कभी किसी ने हानि नहीं पहुंचायी। जंगली पशुओं पर सीधे उनकी आंखों पर भ्रू-निक्षेप किया गया, दृष्टियां मिलीं, हिंसक पशुओं ने आँखें नीची कर लीं। और जिन्हें हम अत्यन्त भयानक वन्य पशु समझते हैं, वे चुपचाप खिसक गये। यही तथ्य है। निर्भीक बनो और तुम्हें कोई हानि नहीं पहुंचा सकता।

शायद तुमने कभी देखा हो कि कबूतर कैसे बिल्ली के सामने अपनी आंखें बन्द कर लेता है, और शायद अपने मन में सोचता हो कि जैसे मैं बिल्ली को नहीं देखता हूं वैसे ही बिल्ली भी मुझे न

देखती होगी । किन्तु होता क्या है ? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और कबूतर बिल्ली के पेट में जा पड़ता है । निर्भीकता से चीता भी वश में किया जा सकता है और भयातुरता के सामने बिल्ली भी शेर बन जाती है ।

तुमने यह भी देखा होगा कि कंपते हुए हाथ से कोई द्रव पदार्थ एक बर्तन से दूसरे बर्तन में सफलतापूर्वक नहीं उँडेला जा सकता किन्तु कैसी आसानी से एक सुदृढ़ और निर्भीक हाथ बिना एक बूंद गिराये उस बहुमूल्य द्रव का आदान-प्रदान कर लेता है । प्रकृति स्वयं हमें बार-बार उच्च स्वर से इसी निर्भीकता की शिक्षा देती रहती है ।

एक बार एक पंजाबी सिपाही किसी जहाज पर एक भयानक रोग से आक्रान्त हो गया और डाक्टर ने उसे जहाज से नीचे फैंक देने का अन्तिम दण्ड सुना दिया । डाक्टर ! कभी-कभी ये डाक्टर भयंकर दण्ड दे डालते हैं । सिपाही को इस बात का पता चल गया । साधारण प्राणी भी कभी-कभी मृत्यु के सामने निर्भीकता की झलक दिखा जाता है । असीम शक्ति से वह तुरन्त बिस्तर से उठ बैठा और एकदम निर्भय हो गया । तुरन्त सीधा डाक्टर के पास पहुंचा और पिस्तौल तान कर बोला—मैं बीमार हूं ? क्या मैं बीमार हूं—सच-सच बोलो, नहीं तो मैं अभी मारता हूं । डाक्टर ने तुरन्त ही उसे स्वस्थ होने का प्रमाणपत्र दे दिया । निराशा कमजोरी है, उससे बचो । निर्भीकता ही शक्तिपुंज है । राम के शब्दों पर ध्यान दो—निर्भीकता । और निर्भय बनो ।

सातवां सिद्धांत—आत्म-निर्भरता

सफल जीवन का नैसर्गिक, अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त, एक प्रकार से सफलता का प्राण, सफलता की मुख्य कुँजी है आत्म-निर्भरता और आत्म-बिश्वास । यदि राम से एक शब्द में

राम का सम्पूर्ण दर्शन शास्त्र भर देने का आग्रह किया जाय तो राम यही कहेगा—वह है आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान। ऐ मनुष्यो! देखो, सुनो, अपने आपको पहचानो। सत्य, अक्षरशः सत्य है कि जब तुम स्वयं आप अपनी सहायता करते हो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करता है। नहीं, वह तुम्हारी सहायता करने के लिए बाध्य है। यह बात सिद्ध की जा सकती है। इस तथ्य का साक्षात् किया जा सकता कि तुम्हारी ही आत्मा, वास्तविक आत्मा ईश्वर, अनन्त ईश्वर, सर्वशक्ति-सम्पन्न ईश्वर है। यह एक सच्चाई है, एक सत्य है, तुम स्वयं प्रयोग करके देख लो। निश्चय से, पूर्ण निश्चय से अपने ऊपर निर्भर करो और फिर जगत में तुम्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं, तुम्हारे लिए दुनिया में कुछ भी असम्भव नहीं।

सिंह जंगल का राजा है। वह स्वयं अपने ऊपर निर्भर रहता है। उसमें साहस है, शक्ति है, कोई बाधा उसका मार्ग नहीं रोक सकती। क्यों? क्योंकि उसे अपने में विश्वास है। और हाथियों को देखो, जिन्हें विशालकाय होने के कारण पहली दृष्टि में यूनानियों ने सच ही 'चलते-फिरते पर्वत' के नाम से पुकारा था, वे सदा अपने शत्रुओं से सशंकित रहते हैं। वे सर्वदा झुण्डों में रहते हैं और सोते समय अपने चारों ओर पहरेदार नियत कर लेते हैं। एक भी उनमें से अपने ऊपर निर्भर नहीं करता और न अपनी विशाल शक्ति का अनुभव करता है। वे अपने को शक्तिहीन मानते हैं और एक सिंह के समक्ष झुण्ड का झुण्ड भाग खड़ा होता है, जब कि एक हाथी, एक ही चलता-फिरता पहाड़ बीसों शेरों को अपने पैरों से रौंद कर मिट्टी में मिला सकता है।

एक बड़ी शिक्षाप्रद कहानी है। दो भाई थे। दोनों को अपनी पैतृक सम्पत्ति में एकसा—समान भाग मिला था। किन्तु कुछ काल के अनन्तर एक तो दरिद्रता की सीमा पर पहुंच गया और दूसरे ने अपनी सम्पत्ति दस गुना बढ़ा ली। जो लखपति हो गया

था, एक बार उससे प्रश्न किया गया—इतना अन्तर कैसे हुआ ? तो उसने उत्तर दिया कि मेरा भाई सदा कहता है—जाओ, जाओ, और मैं सदा कहता हूं—आओ, आओ। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक भाई हर समय नौकरों से कहा करता था—जाओ, जाओ, और यह काम कर लाओ। इतनी आज्ञा देने के अतिरिक्त उसने कभी गुदगुदे मखमली गद्दों से नीचे पैर नहीं रखा। और दूसरा सदा कमर कसे अपने काम में जुटा रहा। उसने सदा अपने नौकरों से कहा—आओ, आओ, इस काम में मेरा हाथ बटाओ। वह अपनी शक्ति पर निर्भर करता और शक्ति भर नौकरों से काम लेता था। फल यह हुआ कि उसकी सम्पत्ति कई गुना बढ़ गयी। दूसरा अपने से 'जाओ, जाओ' ही कहता रहा। वे चले गये और उसकी आज्ञा मानकर उसकी सम्पत्ति भी बिदा हो गयी और अन्त में रह गया वह बिल्कुल अकेला। राम कहता है—आओ, आओ, राम की सफलता और आनन्द का उपभोग करो। अतः भाइयो, मित्रो और देशवासियो ! एक ही तथ्य है—मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। यदि जापान के लोगों ने राम को अपने विचार प्रकट करने के और भी सुअवसर दिये तो राम तर्क से यह सिद्ध करके दिखा देगा कि किसी भी वाह्य शक्ति पर—देवी-देवता या कथा-पुराण पर आश्रित रहने के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है, अपना केन्द्र तो अपने अन्तर में है। स्वतन्त्र मनुष्य भी एक प्रकार से बद्ध है, क्योंकि स्वतंत्र है। उसी स्वतंत्रता से हम श्री-सम्पन्न बनते हैं और अपनी उसी स्वतंत्रता के कारण हम गुलाम हो जाते हैं। फिर हम क्यों रोयें-धोयें और झक मारें ? अपनी सच्ची वास्तविक स्वतंत्रता ही का उपयोग क्यों न करें जिससे शारीरिक और सामाजिक सभी बन्धन कट जाते हैं।

जो धर्म आज राम जापान को सुना रहा है, वह ठीक वही धर्म है जो आज से शताब्दियों पूर्व भगवान् बुद्ध के अनुयायी यहाँ

लाये थे। किन्तु आज उसे वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए उसकी नयी व्याख्या होनी चाहिए। हम उसे पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन की प्रभा से आलोकित कर देंगे।

राम के धर्म के आवश्यक और आधारभूत सिद्धान्त 'गेटी' के शब्दों में यों व्यक्त किये जा सकते हैं—

"सुनो, है क्या मनुष्य का बड़े से बड़ा काम—
तो मेरे पहले था ही नहीं कहीं यह जगत् !
वह सब तो है मेरी सृष्टि, मेरी ही कृति !
वह मैं ही हूँ जिसने सूर्य को चमकाया—
आकाश में, समुद्र की गिरि-गुहा से निकालकर !
वह मैं ही हूँ, जिसकी प्रसन्नता के लिए,
चन्द्रमा रंग बदला करता है नित्य-नित्य"

बस, एक बार इसका अनुभव करो और इसी क्षण तुम मुक्त हो। एक बार इसे प्रत्यक्ष करो और तुम सदा सफलीभूत हो। एक बार इसे हृदयंगम करो और नरक की भयानक गंदी कोठरियाँ तुरन्त स्वर्ग के आनन्द-कानन में परिणत हो जायंगी।

———

बारहवाँ परिच्छेद

स्वामी रामतीर्थ अमरीका में

...... के इस भू-भाग में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो स्वामी रामतीर्थ को बराबर बड़े प्रेम से याद करते रहते हैं। वे कहते हैं कि स्वामी जी का जीवन एक सच्चे त्यागी महात्मा का जीवन था। उन्होंने केलीफोरनिया की पर्वतीय घाटियों में रहने वाले शिक्षाहीन देहातियों का हृदय भी जीत लिया था। वे स्थानीय सामयिक पत्रों में प्रकाशित होने वाली अपने व्याख्यानों की प्रशंसात्मक आलोचनाओं को रद्दी के टुकड़ों की भांति समुद्र में फेंक देते थे। वे अपने भाषणों के लिए कभी कोई प्रवेश फीस न लेने का बड़ा आग्रह करते थे। उनके एक धनी-मानी मित्र ने जब यह उलाहना दिया—"स्वामी जी, पर इस प्रकार आपके व्याख्यानों के लिए सभायें करने का व्यय कैसे जुटाया जा सकता है?" तब उन्होंने झट उत्तर दिया—"निस्संदेह, तुम इन सभाओं का सारा व्यय स्वयं उठा सकते हो।" संक्षेप में, जितने भी हिन्दू कभी अमरीका आये स्वामी राम सबसे महान् थे, एक सच्चे महात्मा, एक सच्चे ऋषि। उनके जीवन में हमें हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सिद्धान्तों की झलक दिखायी देती है और उनकी आत्मा में उस सार्वभौमिक आत्मा—परमात्मा का प्रतिबिम्ब था, जिसे वे अनुभव कर रहे थे।

(लाला हरदयाल एम० ए० के अमरीका से भेजे हुए 'मोडर्न-रिव्यू' जुलाई सन् १९११ के लेख से अनूदित)

जब स्वामी राम शास्ता स्प्रिंग्स में ठहरे हुए थे तो वे एक

साधारण मजदूर की भांति काम करते थे। वे पर्वतों से लकड़ी काट-काटकर अपना आतिथ्य करने वाले डा० हिलर के गृह-भाण्डार में जमा किया करते थे। उन्होंने मुझसे कहा था—शास्ता में राम को कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी, क्योंकि अमरीका जैसे देश में राम शारीरिक श्रम सम्बन्धी अपने कर्तव्य को निबाहे बिना रहना पसन्द न करता था किन्तु राम को एकांत से बड़ा प्रेम था। एक बार राम शास्ता पर्वत की चोटी पर चढ़ने में सर्वप्रथम आये थे। इस स्पर्द्धा में बहुत से अमरीकन भी सम्मिलित हुए थे, किन्तु राम को उनके द्वारा भेंट किये जाने वाला उपहार स्वीकार न हुआ। उस संवाद-पत्र की प्रतियां जिसमें इस चढ़ाई का वर्णन छपा था, इतनी तेजी से बिकी थीं कि लोगों को आश्चर्य होता था। राम एक **Marathon** मेराथन रेस भी दौड़े थे—पूरे तीस मील की। राम तो केवल दौड़ने के आनन्द के प्रेमी थे और राम ही प्रथम निकले। यहां इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि एक ऐसा समय था जब वे लाहौर में विद्यार्थी और प्रोफेसर थे, तब लोगों को आशंका थी कि कहीं उन्हें अपने स्वास्थ्य से एकदम हाथ न धोना पड़े। युवावस्था के प्रारम्भ में वे अत्यन्त क्षीणकाय और दुर्बल थे, स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ था कि उसके सुधरने की कोई आशा न की जाती थी। केवल अपने दृढ़ संकल्प के बल पर उन्होंने अपने शरीर को ऐसा पुष्ट बनाया था।

राम ने शास्ता नदी की तेज धार के आर-पार अपने लिए एक झूला ठांग रखा था। उसमें बैठकर वे अपनी प्यारी चिड़ियों के साथ एक-स्वर होकर चहचहाया करते थे—राम के शब्दों में ऐसा आनन्द तो सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्र के अधिनायक के भाग्य में भी नहीं हो सकता। यदा-कदा वे वेदांत पर व्याख्यान देने के लिए अपने पर्वतीय एकांत से निकल पड़ते थे। वे 'भारत' पर भी भाषण करते थे। उन्होंने भारत की ओर से अमरीकनों के प्रति एक अपील निकाली

थी, जिसने उस समय लोगों का यथेष्ट ध्यान आकर्षित किया था।

डा० हिलर और उनकी पत्नी, राम ने मुझे बताया था, बड़े भले, दयालु और अतिथि-सेवी थे। दम्पत्ति वृद्ध थे, राम उन्हें हँसाया करते थे। वे राम को बहुत पसन्द करते थे और चाहते थे कि राम सदा उनके साथ बना रहे। उन्होंने मुझे बताया था—एक दिन एक बहुत ही धनवान् महिला राम के पास आयी। राम उसे गंगा कहने लगे थे। उसने अपना सब कुछ—जर-जमीन-घर—राम को भेंट करना चाहा। और राम के हाथों संन्यासवेष धारण करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु राम तो कुछ चाहता नहीं था। उसका हृदय बेशक बड़ा विशाल और बड़ा उदार था। ईश्वर कल्याण करे, उसका हृदय महान् था!

"किन्तु क्या स्वामी जी, अमरीका सचमुच भारतवर्ष की अपेक्षा उस तत्व का अधिक पालन कर रहा है जिसे आप वेदान्त कहते है?" मैंने पूछा।

और स्वामी जी कहने लगे—नहीं, अमरीका तो मेरे वेदान्त का केवल भौतिक जगत् में व्यवहार करता है। राम चाहता है कि सभी राष्ट्र इस सच्चाई का मानसिक और आध्यात्मिक जगत में भी व्यवहार करें। अमरीका और समस्त पाश्चात्य जगत वाह्य दृष्टि से चारों ओर फैला हुआ है और भारतवर्ष तो अनेक शताब्दियों से मानसिक स्तर पर भी इतना अधिक संकुचित हो गया है कि उसका रोग किसी भी पाश्चात्य देश से अधिक करुणाजनक हो उठा है। उसका पतन पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ है। एक ओर आध्यात्मिक जगत का द्वार बन्द किया और दूसरी ओर मानसिक स्तर पर अपने भीतर ही सिकुड़ कर रह गया। खुली रही केवल भौतिक जीवन की एक छोटी सी खिड़की, जिससे उसकी श्वास भर चल रही है। वेदान्त पूर्ण सत्य है। यदि उसका पूर्ण रूप से पालन न किया जायगा, वह मार डालेगा। दो में से एक बात—या पूर्ण सत्य अथवा

मृत्यु—इस जीती-जागती सच्चाई में बीच का सत्य-असत्य मिश्रित कोई सुनहला मार्ग नहीं निकाला जा सकता। राम यह नहीं कहता कि भारतवर्ष के हृदय में सत्य की भूख नहीं है, किन्तु है वह ऐसी जैसी किसी दीर्घ-कालीन अजीर्ण के रोगी को झूठी भूख लगा करती है और राम ने कभी तुम्हें बताया था कि भारतवर्ष को एक प्रकार का दार्शनिक अजीर्ण सा हो गया है। हमारी सभी परम्परायें, रीति-रिवाज, जाति-पांति, चिरकालीन विश्वास और धार्मिक मान्यतायें केवल हमें हमारी आध्यात्मिक व्याधियों का पता दे सकती हैं, उनमें कोई जीवन नहीं। बहुत दिनों तक मानसिक स्तर के एक ही ढर्रे पर, जो प्रारम्भ में चाहे जैसा सुन्दर रहा हो, जीवन-यापन करने से आत्मा संकीर्ण हो जाती है और आज तो वह जीवन-क्रम न जाने कब का एक आत्मवंचक अज्ञान और भीतर-बाहर के सामंजस्य से रहित जीवन-हीन घोषणाओं के रूप में परिवर्तित हो चुका है।

राम ने यह भी बताया कि देश स्वयं आध्यात्मिक या मानसिक दृष्टियों से भले या बुरे, इन दो विभागों में नहीं बांटे जा सकते। किसी देश में थोड़े से ही ऐसे स्त्री और पुरुष होते हैं, जिनका जीवन महत्वपूर्ण और परिचायक होता है, दूसरे तो बहुत साधारण होते हैं और यह तो केवल संयोग की बात होती है कि किसी भी देश में तुम्हारा व्यक्तिगत संपर्क उस देश के प्रथम श्रेणी के अधिक लोगों से होता है या दूसरी श्रेणी के अधिक लोगों से। इस प्रकार के परिचय के आधार पर जो धारणा बनायी जाती है, वह तो सदा व्यक्तिगत ही रहेगी। स्वर्ग और नरक एक ही स्थान में, नहीं, एक ही बदन में एक साथ रहते हुए देखे जाते हैं। हर देश में, हर एक जल-वायु में, हर एक व्यक्ति में, ऐसी बात संभव हो सकती है। अतएव तुम्हें किसी विशेष परिस्थिति में वहां जैसा प्रादुर्भाव दिखायी पड़ता है, उसी के अनुसार तुम उस देश के बारे में अपनी राय निर्धारित कर लेते हो। और यदि तुम किसी देश के सबसे सुन्दर, सबसे श्रेष्ठ

भूभाग, सब से श्रेष्ठ स्त्री-पुरुषों के व्यक्तिगत संपर्क में आने के लिए सचेष्ट रहो तो तुम्हें सभी देश एक समान आध्यात्मिक, एक समान श्रेष्ठ, एक समान सुन्दर और एक समान दिव्य मालूम होंगे।

"नहीं, स्वामी जी, मेरे पूछने का अभिप्राय यह है कि आपने जो हिन्दू दर्शनशास्त्र की शिक्षा वहाँ दी, उसका वहाँ के लोगों पर कैसा प्रभाव हुआ ?"

"ओह अमरीका को यह बात समझाने के लिए एक महान्, बड़ी भारी आत्म-साधना की आवश्यकता है। यह किसी नौसिखिये का काम नहीं। यदि वहां कुछ करना हो तो वहां के सर्व प्रकार सुसंस्कृत व्यक्तियों को, विश्वविद्यालय के मनुष्यों को अपने पास खींचना होगा। उस देश पर कोई स्थायी प्रभाव डालना आसान नहीं। सुन्दर, स्वच्छ, श्रीसम्पन्न महिलायें जिनके लिए घर में कोई काम नहीं होता, भले ही झुण्ड के झुण्ड आपकी बातें सुनने और आपकी अपरिचित मुख-मुद्रा निहारने के लिए आयेंगी किन्तु यह जिज्ञासा नहीं, उत्सुकता मात्र है। सैकड़ों-हजारों स्त्रियों में से जो राम से मिलीं, केवल दो सच्ची निकलीं और विशेष कर एक गंगा, वह तो देवी थी ! भारतवर्ष या अमरीका में राम को ऐसी कोई दूसरी स्त्री देखने को नहीं मिली।

एक दिन अमरीका की एक नामी अभिनेत्री राम से एकान्त में भेंट करने आयी। राम ने प्रसन्नता से स्वीकृति दे दी। वह मोतियों और जवाहरों से लदी हुई थी और इतना अधिक इत्र लगाये हुई थी, जैसे वह सुगंध—केवल सुगंध—की पुतली हो। उसके ओठों पर मुस्कराहट खेल रही थी जो अपनी हर एक नई भंवर में एक नया रंग खिलाती थी।

किन्तु ज्योंही उसने कमरे में प्रवेश किया, त्यों ही वह फर्श पर बैठकर रोने लगी। उसने कहा—स्वामी जी, मैं बड़ी दुखी हूँ, मुझे सुख दीजिये। मेरे मोतियों की ओर न देखिये और न मेरी मुस्करा-

हटों पर ध्यान दीजिये—इन बाहरी बातों का अभ्यास तो मेरा स्वभाव सा बन गया है किन्तु इन्हीं बातों से तो मुझे—मेरे सम्पूर्ण हृदय को घृणा हो रही है। राम ने उसे सान्त्वना दी। उसने अपने पाप-पुण्य का सारा व्यौरा राम के सामने खोलकर रख दिया। राम को ऐसा लगा जैसे पाश्चात्य सभ्यता ही इसके द्वारा पश्चाताप प्रकट कर रही हो।

एक दूसरी स्त्री आयी, वह भी बड़ी कातर थी। उसका बच्चा मर गया था, वह राम से शान्ति और सुख की प्रार्थना करने लगी। राम ने उससे कहा—राम आनन्द बेचता तो है, पर उसके लिए मूल्य देना पड़ता है। वह चिल्ला उठी—हां, हां, स्वामी जी, चाहे जो, मेरा सर्वस्व मूल्य के रूप में ले लें। राम ने उसे बताया कि आनन्द के राज्य में यह सिक्का नहीं चलता, तुम्हें राम के जगत में चलने वाला सिक्का देना होगा। "हां, हां, स्वामी जी, मैं दूंगी, अवश्य दूंगी।"

राम ने उत्तर दिया—बहुत ठीक, तो लो, इस नीग्रो जाति के छोटे से बच्चे को अपने ही बच्चे की तरह प्यार करो। बस, तुम्हें यही मूल्य चुकाना होगा।

"ओह, यह कितना कठिन कार्य है!"

"तब तो आनन्द पाना भी दुस्तर है।" राम का उत्तर था। किन्तु फिर भी उस बेचारी को कुछ आनन्द मिला, वह उस दिन के बाद पूर्वापेक्षा अधिक सुखी रहने लगी।

अमरीका में स्वामी राम के सद्प्रयत्नों का अच्छा फल हुआ था और यह बात हमें उन विवरणों से ज्ञात होती है, जो हमें उनके निर्वाण के बाद मिले। वहां उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों की भलाई के हेतु आन्दोलन उठाया था और उनकी सहायता के लिए कुछ सभाओं का संगठन किया था। उन्होंने भारत की जाति-पाँति की कड़ी निन्दा की। अधोलिखित समाचारपत्रों की कतरनों से, जो

उनके शरीरपात के पश्चात् एक अमरीकन महिला से प्राप्त हुई—यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है कि वहां उन्होंने अपने पूर्ण निष्काम प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत की भलाई के पक्ष में यथेष्ट उत्साह उत्पन्न कर दिया था।

राम को एक अमरीकन विश्व-विद्यालय से निमंत्रण मिला हुआ था और वहां उन्होंने एक भाषण दिया—"भारत के प्रति संसार कितना ऋणी है?" विश्व-विद्यालय के सभापति ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि इसके द्वारा हमें पाश्चात्य संस्कृति में वेदान्त की विचार-धारा के प्रवेश के इतिहास की खोयी हुई कड़ी मिल जाती है। जब विश्व-विद्यालय का क्लर्क कुछ पुस्तकें स्वामी राम को भेंट करने के लिए लाया तो उनमें से एक पुस्तक की जिल्द कुछ बिगड़ी हुई थी। सभापति ने क्लर्क की ओर मुड़कर कहा—क्या तुमने अभी-अभी स्वामी जी का व्याख्यान नहीं सुना है? अथवा तुम यह नहीं जानते कि ये पुस्तकें किसे भेंट की जाने वाली हैं? ये तो भगवान् राम को विश्व-विद्यालय की ओर से उपहार में दी जायंगी। कृपया एक दूसरी प्रति लाइए।

स्वामी राम ने अन्य विश्व-विद्यालयों का भी निरीक्षण किया था। भारत के एक सुविख्यात गणितज्ञ की हैसियत से वैज्ञानिक चर्चा करने के लिए नहीं, वरन पूर्व के दार्शनिक की भांति वेदान्त की ज्योति फैलाने के लिए! यद्यपि वे गणित विषय को अत्यधिक प्यार करते थे। पर वेदान्त उन्हें सर्वाधिक प्रिय था। वे वेदान्त-मूर्ति थे। जिस किसी के सम्पर्क में आये उसने उनका आदर और सम्मान किया। अपने इन पर्यटनों में राम ने अनेक स्थानों में भाषण और ज्ञानोद्रेक करने वाले प्रवचन दिये और उनके द्वारा अमरीका में वेदान्त की विचारधारा के प्रसार में यथेष्ट सहायता मिली। यद्यपि उनका यह प्रचार-कार्य किसी संस्था या संगठन के आधार पर नहीं हुआ और न उन्होंने कभी वेदान्त के प्रचार के लिए आर्थिक

सहायता मांगने की इच्छा ही प्रकट की, फिर भी उनके आग्रह की जड़ गहरी थी, जिसका मूल्य रुपया-पैसा के रूप में कदापि नहीं आँका जा सकता। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा जाज्वल्यमान और आकर्षक था कि सब पर और एक-एक पर उसका ऐसा गंभीर प्रभाव पड़ा, जो किसी प्रकार धोया नहीं जा सकता।

अमरीका-प्रवास में उन्होंने जो व्याख्यान दिये थे और जिज्ञासुओं से जो वार्तालाप की थी, उन सब का संकलन करके उन्हें अंग्रेजी में **'In Woods of God Realization'** के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है और रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ द्वारा उनका हिन्दी भाषान्तर भी प्रकट हो चुका है। उनके इन भाषणों को एक महिला स्टेनो-टाइपिस्ट मिसेज पी० ह्विटमैन ने लिखा था। वे स्वामी जी की बड़ी प्रशंसक और भक्त थीं। अकस्मात् देहावसान के कारण ये व्याख्यान उन्हीं 'नोटों' के अनुसार ज्यों के त्यों प्रकाशित कर दिये गये हैं। राम के द्वारा उनका संशोधन नहीं हो सका है। फिर भी उनमें हमें राम की आत्मा बोलती सुनायी पड़ती है।

नीचे मिसेज वेलमैन का एक पत्र दिया है जो मुझे लोजएंजेलस, केलीफोरनिया से राम की मृत्यु के बाद मिला था। वह कितनी सच्चाई के साथ राम के अद्‌भुत् प्रभाव का वर्णन करता है। उनके आनन्द में तो जादू था ही, दर्शक आपसे आप उसमें डूब जाते थे, किन्तु उनके विचारों में भी ऐसी प्रखरता थी कि वे बरवश हमारे हृदयों में घर कर लेते थे। मैं इस भक्तिसम्पन्ना महिला मिसेज बेलमैन से देहरादून (भारतवर्ष) में मिला था, जब वे इस देश को देखने आयी हुई थीं। हम लोगों ने साथ ही साथ टेहरी की पहाड़ियों में यात्रा की और पंजाब के मैदानों का दौरा किया था।

देखिये, मिसेज बेलमैन अपने पत्र में क्या कहती हैं—

······सन् १९०३ के प्रारम्भिक दिन थे, जब पहले पहल मुझे

इस महान् आत्मा से मिलने का अवसर मिला, तब वे सनफ्रांसिसको में व्याख्यान दे रहे थे। मैं बड़ी अनिच्छा से उनका व्याख्यान सुनने गयी। किन्तु उनकी ओम् ध्वनि से मेरा मन ऊपर उठा, मेरी सारी आत्मा में हर्ष की एक ऐसी लहर दौड़ गयी जिसका पहले कभी अनुभव न हुआ था। एक स्वर्गीय, आनन्दमय शान्ति ने मेरी आंखें खोल दीं।

बस, फिर तो मैंने कभी जीवन के उस दिव्य रस के उपभोग करने का अवसर हाथ से न जाने दिया, जिसे वे मुफ्त में बांटा करते थे। उन्होंने अमरीकनों से एक अपील भी की थी कि वे भारतवर्ष में जाकर और भारतवासियों के पारिवारिक अंग बन कर उनके देशवासियों की सहायता करें। एक काफी बड़ी संख्या में लोगों ने कहा—वे जायंगे। किन्तु गया एक भी नहीं। एक दिन मैंने उनसे कहा—स्वामी जी, आपने मेरा जो उपकार किया है, उसके बदले में मैं आपके देशवासियों की क्या सहायता कर सकती हूँ ? उन्होंने उत्तर दिया—यदि तुम भारतवर्ष चली भर जाओ तो तुम बहुत कुछ कर सकोगी। 'मैं जाऊंगी'—मेरा निश्चयात्मक उत्तर था। पर मेरे मित्र इसके विरुद्ध थे, कुछ तो मेरे संकल्प की हंसी उड़ाने लगे। कुछ लोगों ने समझा कि मैं पागल हो गयी हूँ— विशेषत: जब कि मेरे पास आने-जाने के लिए काफी रुपया भी नहीं है। किन्तु राम ने कहा—यदि तुमने सचमुच वेदान्त समझा है तो तुम्हें डरने की कोई बात नहीं। भारत में भी ईश्वर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करेगा जैसी अमरीका में करता है। और ऐसा ईश्वर ने किया भी—हमारे जीवन के उस दिव्य सर्वबुद्धि-सम्पन्न वेदान्त सिद्धान्त ने अपनी सर्वशक्तिमत्ता मेरे सामने स्पष्ट सिद्ध कर दी। मेरे प्यारे हिन्दू भाई और बहनों—मेरी ही सन्तानों—ने बड़े प्रेम और उत्सुकता से मेरा स्वागत किया। पांच मास भी न बीतने पाये थे और मैंने अपने परम दयालु राम के सामने किया हुआ प्रण पूरा कर

दिया। मैं बिल्कुल अकेली उनके देश को चल खड़ी हुई—उस दशा में जब कि उस दूरस्थ देश में मेरा परिचित एक भी व्यक्ति न था। किन्तु मेरे हृदय में विश्वास था—मैं राम के सिखाये हुए उस अनन्त प्रभु की सर्व-सामर्थ्य-सम्पन्ना भुजा पर अवलम्बित थी।

मिसेज पोलिन ह्विटमेन, स्वामी जी की एक दूसरी शिष्या ने (जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है), उनकी मृत्यु पर मुझे एक लम्बा पत्र लिखा था—

शब्दों में वह सामर्थ्य नहीं, जो हृदय के भावों को यथार्थ रूप में व्यक्त कर सकें। भाषा के ठंढे और पतले शब्दों के द्वारा उन्हें प्रकट करना सचमुच बड़ा कठिन है। राम की भाषा ऐसी थी जैसे नन्हें से पवित्र हृदय बालक की होती है। वे चिड़ियों की, फूलों की, बहते हुए चश्मों की और हिलती हुई वृक्षशाखाओं की भाषा में बातें करते थे। सूर्य, चन्द्र और तारे भी उनकी बोली समझते थे। दुनिया के वाह्य आडम्बर के नीचे और दुनियादारों के हृदय के भीतर बहने वाली भाषा उनकी अपनी भाषा थी।

समुद्र और सागरों के नीचे, द्वीप और महाद्वीपों के नीचे, खेतों और जड़ी-बूटियों के भीतर, लताओं और वृक्षों के अन्तरंग में उनके जीवन ने प्रवेश किया था। प्रकृति के हृदय में बैठकर वे प्रकृति की आत्मा बन गये थे। मनुष्य के छोटे-छोटे विचारों और स्वप्नों के नीचे, बहुत नीचे उनकी वाणी सवाक् हो उठती थी। कितने थोड़े ऐसे कान हैं जिन्हें उस दिव्य संगीत को सुनने का सौभाग्य होता है! उन्होंने उसे सुना था, उसे जीवन में उतारा था। वे उसी में श्वास लेते और उसी को सिखाते थे। उनकी सम्पूर्ण आत्मा उस संगीत से सराबोर हो गयी थी। वे आनन्द रस से भरे हुए देवदूत थे।

ऐ उन्मुक्त आत्मन्—ऐ आत्मन्, तूने अपने शरीर के सम्बन्ध को पूरा कर लिया। ओ, आकाश में विचरण करने वाली, अनि-

र्वचनीय आनन्द का उपभोग करने वाली, लोक-लोकान्तर में बिहार करने वाली आत्मा, तुझे सहस्त्रों नमस्कार ! तू स्वतंत्र, और बन्धन-मुक्त है !

राम थे इतने कोमल, प्रकृतिस्थ, शिशु सदृश शुद्ध और श्रेष्ठ, सच्चे और लगन वाले—बिल्कुल सीधे-सादे कि जो भी सच्चे हृदय वाला सत्य का जिज्ञासु उनके सम्पर्क में आया वह अमूल्य लाभ उठाये बिना न रहा, न रहा। प्रत्येक व्याख्यान, प्रत्येक सत्संग के पश्चात् लोग उनसे प्रश्न करते थे और वे सदैव बड़ी स्पष्टता और संक्षेप से, बड़ी मधुरता और बड़े प्रेम से उनका उत्तर देते थे। वे आनन्द और शान्ति के भण्डार थे। जब लिखने-पढ़ने अथवा बातचीत से खाली होते तो निरन्तर ओम्-ओम् गाया करते थे। प्रत्येक मनुष्य में, हर एक प्राणी में वे ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व का दर्शन करते और 'महाभाग भगवान्' के नाम से सब को सम्बोधन भी करते थे।

* * *

राम थे मानो अजस्र बुलबुला छोड़ने वाला आनन्द-निर्झर। ईश्वर में ही वे रहते-सहते और शरीरतः निवास करते थे—नहीं, वे साक्षात् ईश्वर थे। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था—वे जिन्हें अपने अपने मनबहलाव की इच्छा हो, हीरों से—आकाश में छिड़के हुए जाज्वल्यमान तारों से अपना मनोरंजन कर सकते हैं, मुस्कराते हुए जंगलों एवं नाचती हुई नदियों से यथेष्ठ आनन्द ले सकते हैं, शीतल मन्द समीर, उष्ण सूर्यप्रभा और शुभ्र चन्द्रिका के अजस्र प्रवाह का मजा लूट सकते हैं—ये सारी वस्तुयें प्रकृति ने सभी मनुष्यों को बिना भेद-भाव मुफ्त प्रदान की हैं। वे जो ऐसा सोचते हैं कि विशेष-विशेष वस्तुओं की प्राप्ति पर ही उन्हें आनन्द मिल सकता है उनके आनन्द का दिन सदैव उनसे दूर ही दूर भागता रहता है। अगिया-बैताल की भाँति—अग्नि सदैव उनके आगे-आगे भागती जाती है। जिसे लोग दुनिया की धन-सम्पत्ति कहते हैं, उससे आनन्द मिलना

कहां, वह तो उल्टे हमारी आंखों पर एक ऐसी पट्टी बांध देती है जिससे हम प्रकृति के अनुपम सौंदर्य और आकाश मंडल के अतुलनीय गौरव को देखने से भी वंचित रह जाते हैं।

राम एक पहाड़ी के किनारे खेमे में रहते थे और 'रेंच हाउस' में भोजन करते थे। वह मनोरम दृश्यों से पूर्ण, बड़ा सुदर स्थल था। दोनों ओर सदा-बहार पेड़ और उनके ऊपर उलझी हुई घनी झाड़ियों से ढके हुए पर्वत और नीचे घाटी में जोर-शोर से बहती हुई स्क्रामेण्टो नदी। ऐसे स्थल पर राम ने एक के बाद एक—अनेक ग्रन्थ पढ़ डाले—सैकड़ों उन्नायक कवितायें लिख डालीं और घंटों समाधि लगायी। वे नदी के बीच एक भारी चट्टान पर बैठते थे, जहां लगातार कई दिनों तक और कभी-कभी कई हफ्तों तक बड़ी तेज हवा चलती थी—और केवल भोजन के समय जब घर आते थे, तब उनकी बातें सुनते ही बनती थीं। 'शास्ता स्प्रिग' से बहुत से दर्शक राम के पास आया करते थे और राम बड़े प्रेम से उनके साथ संभाषण करते थे। उनके गंभीर विचार सभी लोगों के हृदय पर गहरी छाप डालते थे, जो चिरकाल तक चलती थी। और जो केवल उत्सुकतावश ही आते थे, उनकी उत्सुकता भी पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाती थी। एक शब्द में, वे लोगों के हृदय में उस परम सत्य का बीज बो रहे थे, वह चाहे उनके अनजान में ही क्यों न हो, किन्तु उसका अंकुरित और पल्लवित होकर दीर्घाकार सुदृढ़ वृक्ष में बदल जाना सुनिश्चित है। आशा तो यह है कि यही शाखायें एक दूसरे से जुड़ती हुई एक दिन सारे संसार में व्याप्त होकर मनुष्य मात्र को सच्चे भाई-चारे और प्रेम के गठबंधन में जकड़ देंगी। सत्य का बीज उगे बिना नहीं रह सकता!

वे लम्बे पर्यटन करते थे। इस प्रकार 'शास्ता स्प्रिग' में रहते हुए वे सीधा-सादा, स्वतंत्र, आनन्दमय और क्रियाशील जीवन बिताते थे। हंसी की फुहार बरबस अनायास ही उनके हृदय से फूट पड़ती

थी। और इतने जोर से कि नदी में रहते हुए घर पर साफ सुनायी पड़ती थी। स्वतंत्र, एकदम स्वतंत्र राम थे एक बच्चे जैसे सच्चे साधु। वे लगातार एक साथ कई दिनों तक ब्रह्मभाव में डूबे रहते थे। भारतवर्ष के प्रति उनकी भक्ति बड़ी प्रगाढ़ थी और वे अपने दुखी भाइयों को ऊंचा उठाने के भी इच्छुक थे—ऐसे आत्म-त्याग और आत्म-बलिदान का उदाहरण मिलना बड़ा कठिन है।

* * *

जब मैं वहां से चली आयी, तब मुझे उनका एक पत्र मिला, जो, मुझे बाद में मालूम हुआ, कठिन बीमारी के समय लिखा गया था। "एकाग्रता और शुद्ध ब्रह्म-भावना की मात्रा इस समय अनोखी वृद्धि पर है। ब्रह्मानुभूति ने पूर्णतः अपनी लपेट में मुझे लपेट लिया है। शरीर में तो नित्य परिवर्तन होते ही रहते हैं, निरंतर संकल्प उठाना-बैठाना उसका स्वभाव है। मैं कदापि, कभी नहीं, कभी नहीं, इन शैतान अगिया-बैताल जैसे परिवर्तनों के साथ तदात्म हो सकता। रुग्णावस्था में एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति चरम सीमा पर पहुंच जाती है। वह पुरुष, वह स्त्री सचमुच कंजूस, मक्खीचूस है जो कृपणता के वश इन अल्पकालीन अतिथियों—शारीरिक और मानसिक व्याधियों का समुचित आतिथ्य स्वीकार करने में संकोच करता है।"

वे निरन्तर समझाया करते थे कि हमें उस सर्वोपरि अनन्त शक्ति का अनुभव करना चाहिए, जो सूर्य में और नक्षत्रों में—सर्वत्र व्यक्त हो रही है। वह एक है, सर्वत्र सर्वथा एक है। मैं भी वही हूं, तुम भी वही हो। इसी वास्तविक आत्मा को पकड़ लो, अपने जन्म-जात वैभव को ग्रहण करो, अपने चिरन्तन जीवन का विचार करो, अपने इस सच्चे सौंदर्य पर ध्यान जमाओ—ऐसा ध्यान जमाओ कि इस छोटे से शरीर के क्षुद्र विचारों का कतई विस्मरण हो जाय। ऐसा अनुभव हो कि इन झूठी, दिखावटी बातों (छायाओं) से हमारा

कोई सरोकार न रहे। न कोई मृत्यु है, न कोई बीमारी, न कोई दुख। पूर्ण आनन्द, पूर्ण शिव, पूर्ण शान्ति—सच्चिदानन्द! इस शरीर, इस क्षुद्र आत्मा से ऊपर उठकर पूर्णतः ब्रह्मभाव में सावधान रहो। यही तत्व वे हर एक स्त्री-पुरुष को सिखाया करते थे।

* * *

जब मैं यह सोचती हूँ कि मुझे राम जैसी पवित्रात्मा से मिलने, उनसे वार्तालाप करने और उनकी आज्ञा के अनुसार चलने का सुअवसर मिला, तब मुझे आश्चर्य सा मालूम होता है। वे उषादेवी के बालक थे और सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक संगीत का प्रवाह बहाते थे। किस समय क्या बजा है—इसकी उन्हें कोई परवाह न थी। इसी प्रकार लोगों के भावों और चिन्ताओं की ओर भी उनका कोई ध्यान न था। उनके व्यापक और प्रबल विचार मानो सूर्य के साथ ही चलते थे और दिन उनके लिए शाश्वत प्रातःकाल बना रहता था। "लाखों-करोड़ों मनुष्यों को शारीरिक परिश्रम का यथेष्ट ध्यान रहता है किन्तु इन लाखों-करोड़ों में एकाध ऐसा भाग्यवान् जन्म लेता है जो कवित्वमय स्वर्गीय जीवन के लिए जाग्रत रहता है"—ऐसा 'थोरो' ने लिखा है। राम ऐसी ही अत्यन्त दुष्प्राप्य आत्माओं में से थे जो विशेष-विशेष अवसर पर इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होती हैं।

कहते हैं कि सूर्य उसका प्रतिबिम्बमात्र है।
कहते हैं कि मनुष्य उसकी प्रतिमा में बना है।
कहते हैं कि वह तारों में टिमटिमाता है।
कहते हैं कि वह सुगंधित पुष्पों में मुस्कराता है।
कहते हैं कि वह कोयलों में गाता है।
कहते हैं कि विश्वव्यापिनी वायु में वह श्वास लेता है।
कहते हैं कि शरदकालीन रात्रियों में रोता है।
कहते हैं कि वह कलकल करने वाले चश्मों में दौड़ता है।

कहते हैं कि वह इन्द्रधनुष की चापों में गाता है।
प्रकाश की बाढ़ में लोग कहते हैं, वह आगे-आगे चलता है।
राम यही गाते थे और है भी यह सर्वथा ठीक !

इन पत्रों और समाचार-पत्रों की कतरनों से, जिनकी प्रतिलिपि नीचे उतारी जा रही है, हमें यह ज्ञात हो सकता है कि भारतीय नवयुवकों को अमरीका में शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से उन्होंने कितना अथक परिश्रम किया था। साथ ही वे हमें भारत की जाति-व्यवस्था के अन्याय और क्रूरता को निर्मूल करने के लिए भी बड़े उत्सुक दिखायी देते हैं। उसके लिए तो वे वहां एक नियमित आन्दोलन ही खड़ा करना चाहते थे। ऐसा लगता है कि अमरीका में वे अमरीकन मनोवृत्ति से काम करते थे, और भारत में भारतीय साधु की विचारधारा से। अमरीका जाने से पहले और वहां से लौटने पर भी उन्होंने भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था को निर्मूल करने पर इतना अधिक जोर नहीं दिया।

अमरीका में उन्होंने लोगों को समझाया कि हम घर में रहकर, विवाह के बंधन में रहकर भी वेदांत का अभ्यास कैसे कर सकते हैं और भारतवर्ष में, जहाँ घर और बाल-बच्चों का मोह और उनकी अंधभक्ति खूब प्रचलित है उन्होंने फिर यही ठीक समझा कि भारतवर्ष के लिए इस समय संन्यासभाव की ही सबसे अधिक आवश्यकता है। किन्तु उनका संन्यास अपना संन्यास था, वे कर्म में रत रहकर निष्काम कर्मयोग द्वारा ही संन्यास-भाव को ग्रहण करना चाहते थे।

किन्तु स्वामी राम का स्वयं अपना एक विषय था—वही उन्हें सबसे अधिक प्रिय था—ईश्वर और ईश्वर का प्रेमप्लावित आनन्द। दूसरे विषयों की चर्चा तो वे परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार, प्रसंगवश ही किया करते थे।

उनका एक दूसरा प्रिय विषय यह था कि ईश्वर के प्रेम में डूबे हुए मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ की इच्छायें और कामनायें नहीं सता सकतीं। वह कभी-कभी दूसरों की प्रार्थनाओं का साधन बन जाता है और माध्यम बनकर उनकी पूर्ति भी कर देता है किन्तु वे इच्छायें किसी भी रूप में उसके हृदय को स्पर्श नहीं करतीं। अमरीका और भारतवर्ष के विभिन्न वातावरण में वे स्वयं अपनी इस अद्भुत अलौकिक विचारधारा के सबसे सुन्दर उदाहरण सिद्ध हुए।

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम की मृत्यु पर मिसेज पी० ह्विटमैन को मिले थे।

८१४, फेडेलिटी बिल्डिग, बुफैलो, एन० वाई०
जनवरी १८, १९०७.

प्रिय मिसेज ह्विटमैन,

राम सुसायटी, जिसके नाम आपने २४ दिसम्बर को पत्र भेजा था, अब नहीं है, किन्तु सुसायटी के अपदस्थ मंत्री की हैसियत से मुझे वह पत्र मिला है। स्वामी जी के निर्वाण के समाचार से, सचमुच, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि उनकी दृष्टि से यह कोई अभाग्य की बात नहीं हुई। इस पृथ्वी पर अपने छोटे से जीवन में ही उन्होंने प्रचुरतम अनुभव की फसल पैदा कर ली थी और शायद उनके जीवन का उद्देश्य सर्वांश में पूर्ण हो गया था। वे परम शान्ति के भागी हों!

स्वामी जी ने सन् १९०४ के वसन्त और प्रारम्भिक ग्रीष्मकाल में दो-तीन सप्ताह यहाँ बिताये थे। उन्होंने यहाँ भारतीय जीवन के कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों पर बहुत से व्याख्यान दिये और वेदान्त दर्शन को भी समझाया। भारतीय व्याख्यानों में वे जाति-व्यवस्था की बुराइयों पर विशेष जोर देते थे और उसे नष्ट करने के इच्छुक थे। भारतवर्ष की ओर से वे लोगों से सहायतार्थ प्रबल अनुरोध करते थे और उसके फलस्वरूप वे यहाँ भी एक ऐसी सुसायटी (सभा)

स्थापित करने में समर्थ हुए, जैसी कि आप जानती हैं कि उनकी इस देश के सभी शहरों में स्थापित करने की इच्छा थी (हिन्दू विद्यार्थियों को बुलाकर इस देश में शिक्षित कराना)। इस दिशा में वे बड़ी लगन के और सुयोग्य वक्ता सिद्ध हुए। जिन्होंने उनका यह प्रतिपादन सुना वे अवश्यमेव उत्साह से भर जाते थे। पर बुफैलो शहर बहुत-सी बातों में एक प्रकार से पुराणपंथी शहर है। जिन लोगों ने यहाँ राम-सुसायटी का संगठन किया था, वे अधिकांश साधारण स्थिति के कामकाजी मनुष्य थे। उन्हें शीघ्र ही इस बात का पता चल गया कि ऐसे संगठन को जीवित रखना और उसे आगे बढ़ाना उत्तरदायित्वपूर्ण और श्रमसाध्य काम है, जो उनकी शक्ति के बाहर है। अतः यहाँ जो धन इकट्ठा हुआ था, वह पोर्टलैण्ड (ओरगन) की सुसायटी के पास भेज दिया गया, जो अधिक क्रियाशील और आशावान् मालूम होती थी, और बुफैलो सुसायटी, राम के प्रस्थान के अनन्तर कुछ ही दिन बाद भंग कर दी गयी थी।

यह तो शायद आपको ज्ञात ही है कि स्वामी जी ने संयुक्त राज्य के अनेकों स्थानों में व्याख्यान दिये थे। बुफैलो आने से पहले वे कहाँ-कहाँ हो आये थे—यह मुझे ठीक-ठीक नहीं मालूम; किन्तु यहाँ से वे लिलीडेल (इस राज्य का एक बहुत ही महत्वपूर्ण आध्यात्मिक केन्द्र) गये और फिर वहाँ से शिकागो, बोस्टन, ग्रीनेकर, मेन और न्यूयार्क शहर (जहाँ ग्रीष्म ऋतु में अनेकों मत-पंथ और सम्प्रदाय के प्रतिनिधि व्याख्यान देते हैं) गये थे। और सब से अन्त में हमें दक्षिण के फ्लोरिडा से खबर मिली थी, जहाँ वे यात्रा और कार्याधिक्य की थकावट को दूर करने के निमित्त विश्रान्ति ले रहे थे।

स्वामी जी ने असाधारण रूप से यहाँ के लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। केवल इस कारण नहीं कि वे विद्वान् और अध्यात्म-ज्ञानी थे, वरन् इसलिए भी कि वे कार्यकुशल, मधुर स्वभाव और उदारचित्त थे। इस देश में उनकी लोकप्रियता का कारण यह

था कि वे सीधे-सादे, प्रजातांत्रिक पद्धति के प्रेमी और झट से अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल बनाने में अत्यन्त सक्षम थे—यद्यपि वे एक ऐसे देश से आये थे, जहाँ जाति-पाँति का भेदभाव पराकाष्ठा पर है और वे स्वयं अति उच्च कोटि के ब्राह्मण थे। वे यहाँ एक ओर घंटों ठीक भारतीय पद्धति से ध्यान करते थे और बड़े प्रेम से दार्शनिक चर्चा किया करते थे तो दूसरी ओर दर्शकों के साथ दिल खोलकर हँसने के लिए भी तैयार रहते थे और अवसर आ पड़े तो उनके साथ गेंद-बल्ला आदि खेल भी खेलने में न चूकते थे।

वे बड़े पारखी थे और अमरीका की भावनाओं और संस्थाओं का बारीकी से अध्ययन करते—उन्हें इस देश की बहुत सी त्रुटियों का भी पता चला था किन्तु उनका विश्वास था कि अभी भारतवर्ष को "पश्चिम के इस यौवनसम्पन्न दानव" से बहुत कुछ सीखना है। साथ ही वे यह भी कहते थे कि अमरीका को भी नम्रतापूर्वक भारतवर्ष के संदेश को सुनना चाहिए, क्योंकि वह बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य है। वे इस देश के स्त्री-स्वातंत्र्य से बड़े प्रभावित मालूम होते थे, विशेषकर इस बात से कि उनकी यह स्वतंत्रता उन्हें पथभ्रष्ट नहीं करती। वे प्रायः बड़े प्रशंसात्मक ढंग से इसका उल्लेख करते थे।

मैं सोचता हूँ कि आपके पास कुछ ऐसे अन्य लोगों के भी पते होंगे, जिनके यहाँ अमरीका में स्वामी जी ठहरे थे और सम्भवतः वे आपको उनके कार्यों और उनके सुन्दर परिणामों के विषय में मुझसे कहीं अधिक बता सकेंगे। यह तो आप अवश्य जानती होंगी कि मिस्टर विलियम एच० गलवानी पोर्टलैण्ड (ओरगन) सुसायटी के मंत्री हैं (या थे) और यदि आपने अभी तक उनसे पत्रव्यवहार न किया हो तो लिखिये, आपको उनके द्वारा स्वामी जी के कार्यों का यथेष्ठ परिचय मिल सकता है। यहाँ हम लोगों का विचार था कि स्वामी जी ने कभी ठीक ढंग से अनुभव नहीं किया कि वे अमरीका में कैसे लोगों के कंधों पर अपने काम का भार छोड़ रहे हैं जो स्वयं

अपने उत्तरदायित्व एवं कार्यभार से इतने दबे हुए हैं। और ऐसा हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि उनकी जाति, उनके देश और हममें जो इतना महान् अन्तर है।

—ऐनी एफ० हेस्टिंग्स।

डेनवर कोलो
जनवरी २५, १९०७

प्रिय मिसेज ह्विटमैन,

तीन वर्ष पहले की बात है, जब मैं उस सर्वश्रेष्ठ महापुरुष से मिला था। न उससे पहले, न उसके बाद फिर कभी मुझे वैसी महान् आत्मा के दर्शन हुए। उनकी उपस्थिति से मैं स्वयं कुछ ईश्वर के समीप, समीपतर पहुंचा हूं। उनके शब्द, यद्यपि बहुत सीधे-सादे थे परन्तु उनके द्वारा मुझे यह निश्चय प्रतीति होती थी कि उन्होंने अन्तिम तत्व का साक्षात् किया है। इसीलिए वे 'स्वामी राम' के नाम से हस्ताक्षर करते थे।

कुछ उनके शब्दों के कारण से नहीं, कुछ उनकी भावनाओं के कारण नहीं, कुछ उनके व्यक्तित्व के कारण नहीं हम लोग उनसे इतने प्रभावित हुए थे। सच तो यह तो यह है कि वे हमें ऐसे लगते थे, जैसे वे साक्षात् ईश्वर हों। इसीलिए जो भी उनके संपर्क में में आया, उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुए बिना न रही। वे यहां सुदूर पूर्व से आये थे—मझोला कद और गेहुंवा वर्ण : किन्तु पश्चिम के बड़े से बड़े मनुष्य से भी उनका स्थान अधिक महत्वपूर्ण था। जहां से भी वे निकल जाते, फूल फूट पड़ते। उन बीजों को चारों दिशाओं में बिखेरने भर की देरी है कि सारा संसार सुन्दर-तम उद्यान बन जायगा। उनके इस पुष्प का नाम है 'प्रेम'।

उन्होंने हमें ईसा के प्रेम की, कृष्ण के प्रेम की, ईश्वर के प्रेम की कथा सुनायी। पहले भी सुनी थी, पर उनके समझाने से वह हमारी समझ में आयी। उन्होंने हम में अपने हृदयकमल को विकसित करने की लालसा जाग्रत कर दी, उसकी पंखड़ियों को सूर्य की धूप दिखाने और सुरभि फैलाने की अभिलाषा पैदा की। हमने सोचा— जगत् में आये हैं तो उसे कुछ अच्छा बना जायं।

यदि हम तूफान में फंस जायं तो हमें प्रसन्न ही होना चाहिए। मेह के झंझावात् के पश्चात् ही तो सुगंध में मिठास आता है। यदि हम भी वैसा रहना सीख लें तो हमारा जीवन व्यर्थ नहीं हुआ।

"बुलबुला फूटकर सागर रूप बन जाता है।" किसी ने मेरे कानों में कहा कि स्वामी राम का शरीर फूट गया। वे अखिल विश्व रूप बन गये। वे सब में समा गये और यदि हम अपने ही में उन्हें ढूंढेंगे तो उन्हें अवश्य पायेंगे। घोर हिम-वर्षा में वे हैं, उसके छोटे-छोटे कणों में वे हैं। किन्तु यह वर्षा ऐसे धीरे-धीरे होती है कि हमें उसकी ओर कान लगाना पड़ता है। नहीं तो हमें उस के आगमन की खबर ही नहीं होती।

"उसने सब कुछ त्यागा, तब और मिला उसको !
सागर के तट पर, चंचल लहरों में बिखरा
वह मिला उसे घासों की चंचल नोकों पर,
वह मिला उसे तीव्रगामी झंझा की झोंकों पर—
जो उसकी मृदु भौंहों को छू चल देती थी।
उसने जो पूछे प्रश्न, वही उत्तर बन-बन
उसके जग से लौटे हैं उसकी प्रतिध्वनि में"

उन्होंने हमें उस शक्ति का पता दिया जो पेड़ो को उगाती है, नदियों को बहाती है और बताया कि यही शक्ति हमारे बालों को

उगाती है और हमारे रक्त का संचालन करती है। सारे जीवन में केवल एक ही शक्ति काम करती है और वह शक्ति सर्वथा अनन्त है।

सूर्य हम से कहने नहीं आता कि मैं चमक रहा हूं किन्तु उसकी सुखद उष्ण किरणों से हमें स्वयं उसका पता चल जाता है। जब हम प्रेम की किरणें बाहर भेजते हैं, तब हमारे मिलने वाले उसका अनुभव किये बिना नहीं रह सकते। उसी प्रकार हमें स्वामी राम की स्मृति से सहायता मिलती है और उनकी सुगंध का अनुभव होता है।

फ्लोरेन्स के०

होनोलुलु टी० एच०
१०—१—१९०७

प्रिय श्रीमती जी,

आपका गत मास के २६ तारीख का कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। स्वामी राम ने यहां क्या काम किया, इसका पूरा-पूरा वर्णन करने में मुझे अतीव प्रसन्नता होती किन्तु समयाभाव एवं अन्य परिस्थितियों के कारण यह मेरे लिए असम्भव है। स्वामी राम सन् १९०३ के नवम्बर, दिसम्बर में यहां ठहरे थे और इस निवास काल में वे उन सभी लोगों के प्यारे बन गये, जो उनके सम्पर्क में आये। इनमें हमारी जाति के कुछ उच्चपदस्थ पुरुष और महिलायें भी थीं। यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी अकस्मात् मृत्यु से हम सब को बड़ा आघात लगा है किन्तु हम समझने लगे हैं कि हमारे इस संसार में सभी वस्तुयें एक अटल एवं अपरिवर्तनीय नियम से बंधी हुई हैं और ऐसी चीजें जिन्हें हम अकस्मात् घटना के नाम से पुकारते हैं, वे केवल शब्दों-शब्दों में ही रहती हैं—विशेष कर उस स्थिति में जब कि उन घटनाओं के कारण हमारी बुद्धि से बिल्कुल छिपे रहते हैं।

हमारी सुसायटी उस कार्य के संपादन में सच्चे दिल से सचेष्ट है, जो राम ने प्रारम्भ किया था। इसके लिए पत्र के साथ में सुसायटी के प्रस्तावों की एक प्रतिलिपि आपके पास भेजी जा रही है। मैं आपके पास कुछ समाचार-पत्रों की कतरनें भी भेज रहा हूं, जो उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। सुसायटी के विवरणों के कुछ उद्धरण भी इस सम्बन्ध में आपको रुचिकर होंगे। जब राम यहां थे तब समाचार-पत्रों में बहुत से संवाद निकला करते थे किन्तु बात इतनी पुरानी हो गयी है कि उनकी प्रतियां दुष्प्राप्य हो गयी हैं, इसलिए उनकी कतरनें नहीं भेजी जा सकीं।

इसके सिवा यदि कोई ऐसी बात हो, जिसमें मैं आपकी सहायता कर सकूं तो कृपया अवश्य सूचना दीजिएगा।

सम्पूर्ण सदिच्छाओं और सप्रेम अभिवादनों के साथ।

डबल्यू० एम० एच० गलवानी

समाचार-पत्रों के कतरनों की प्रतिलिपियां

रोकी माउन्टेन न्यूज, डेनवर कोलो, ४ जनवरी १९०४ के अंक में इस प्रकार प्रकाशित हुआ था—

स्वामी राम नामधारी जो हिन्दू प्रोफेसर आजकल डेनवर में आये हुए हैं, कल अपराह्न में उन्होंने 'यूनिटी चर्च' में अपने दर्शन शास्त्र के सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया था। प्रोफेसर राम का 'मिशन' है हिन्दुओं की जाति-व्यवस्था को भंग करना। वे अपने इस उद्देश्य के साफल्य में अमरीका की सहायता चाहते हैं। उनका दर्शन शास्त्र भी सदाचार मूलक है। उन्होंने अपने धर्म को 'सार्वजनिक पथ' नाम दिया है। वे जहां कहीं जाते हैं, मुख्यतः इसी धर्म का प्रचार करते हैं। आज प्रातःकाल प्रोफेसर राम 'मिनिस्टीरियल

एलायन्स' में भारतवर्ष की जाति-व्यवस्था पर एक भाषण देंगे और कल अपराह्न से 'यूनिटी चर्च' में उनके अपने धर्म पर एक व्याख्यान-माला प्रारम्भ होगी। व्याख्यान दो बजे प्रारम्भ होगा और उसका विषय होगा 'सफलता का रहस्य'। अन्य विषय हैं—'प्रेम द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार', 'तुम क्या हो ?' 'आनन्द का इतिहास और निवास', 'पाप का निदान—कारण और निवारण'। अपने कल के अपराह्न भाषण में स्वामी राम ने कहा था—

इस दर्शन शास्त्र का एकमात्र उद्देश्य यह है कि हम अपने वर्तमान जीवन के व्यवहार को कैसे संयम में लायें। इसके द्वारा हमें अपनी वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में व्यवहार्यतः स्पष्ट सहायता मिल सकती है। यद्यपि मैं हिमालय के सघनतम अरण्यों से आया हुआ हूं, यद्यपि चाहे आप समझते हों कि मैं कोई अलौकिक गुप्त रहस्यों को जानने वाला योगी हूँ, चाहे आप इस विषय में निराश हो जायं किन्तु मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि मेरे पास 'गोपनीय' नाम की कोई चीज नहीं। मैं तो आपको वे बातें बताना चाहता हूँ जिनसे शक्ति का कम से कम दुरुपयोग हो, शरीर और मन को अकारण यंत्रणायें न भोगनी पड़ें, आप हर प्रकार के तमोगुण और प्रमाद से मुक्त हो जायं, जो ईर्ष्या-द्वेष, मिथ्या अहंकार, चिड़चिड़ाहट आदि से उत्पन्न होता है। आपको मानसिक अजीर्ण न हो, आप बौद्धिक दारिद्रय और आध्यात्मिक दासत्व से बच सकें, आप को सफल कर्मयोग का रहस्य ज्ञात हो जाय और प्रेम के द्वारा ईश्वर का साक्षात् कर सकें। एक शब्द में, मेरा सिद्धान्त आप को ज्ञान के आदिस्रोत के पास ले जायगा और आप सदैव शान्ति और समन्वय का जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

मेरा धर्म न तो हिन्दू धर्म है, न मुसलमान, न ईसाई, न केथोलिक, और न प्रोटेस्टेण्ट किन्तु वह किसी का विरोधी भी नहीं। वह सर्वव्यापक क्षेत्र जो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकर्षण, विकर्षण, शरीर

और मस्तिष्क से ढका हुआ है, वही विशाल क्षेत्र मेरे धर्म की भूमिका है। क्या कमल भी कभी 'प्रेसबीटेरियन' होते हैं अथवा किसी ने 'मेथोडिस्ट' प्राकृतिक दृश्य देखे हैं ? इसीलिए मैं रंग-रूप, जातिपांत का कोई भेदभाव नहीं मानता और सूर्य की किरणों का, नक्षत्रों की रश्मियों का, वृक्षों की पत्तियों का, घास की कोपलों का, बालू के कणों का, शेरों के हृदय का, हाथियों, मेमनों, चींटियों, पुरुषों, स्त्रियों, और बच्चों—सभी का अपने सहधर्मी के रूप में स्वागत करता हूँ। यह प्राकृतिक धर्म है। मैं कोई नाम नहीं रखता, किसी पर कोई बिल्ला नहीं बांधता और न किसी पर आधिपत्य ही जमाता हूँ किन्तु सूर्य और प्रकाश की भांति सब की एक समान सेवा करता हूँ। इसीलिए मैं उसे 'सार्वभौमिक पथ' कहता हूँ।

इस 'सार्वभौमिक पथ' की केन्द्रीय शिक्षा को मैंने काव्य रूप में यों व्यक्त किया है—

"ओ प्यारे नन्हें से कमल ! अपनी ओस भरी आँख को—
जरा ऊपर उठाओ तो सही,
यहां तो अपने सिवा कोई और है नहीं,
फिर तू क्यों न मुझे बता दे सच-सच,
तू असल में है कौन ?
कमल ने मीठी आह भर कर उत्तर दिया यह—
एकान्त में ही यदि तुम मुझसे पूछते हो ?
तो दुख से कहना पड़ता है मुझे—
तुम कभी न जान सकोगे—
मैं हूँ कौन !
देखते नहीं, मेरे भाई और बहन चारों ओर हवा में—
और धरती पर बिखरे पड़े हैं सब !
और मैं हूँ वही जो वे हैं !

उस सर्वोच्च जाति के सदस्य होते हुए, जो भारतवर्ष के राजा

और महाराजाओं की जाति से अधिक श्रेष्ठ मानी जाती है, स्वामी राम ने अपना सारा जीवन जाति के उत्थान में अर्पण कर दिया है। छोटे से और दुबले-पतले, काली, उत्सुक और चमकीली आंखों वाले, गेहुँवा वर्ण के, काले सूट के साथ हमेशा एक चमकदार लाल पगड़ी पहने हुए—बस, यही स्वामी राम की रूप-रेखा है। भारतवर्ष के यही सज्जन आज कल पोर्टलेण्ड में पधारे हैं। यह भारतवर्ष का कोई साधारण व्यक्ति नहीं। भारतवासी तो वैसे प्रायः इस बन्दरगाह पर उतरा करते हैं किन्तु ऐसा विद्वान्, ऐसा विशालहृदय और उदार, ऐसा निस्पृह और निःस्वार्थ कभी शायद ही यहां उतरा हो।

दो सप्ताह से अधिक हुए, स्वामी राम शान्तिपूर्वक यहां उपदेश दे रहे हैं। वे सभी प्रकार की और विभिन्न आदर्शों वाली श्रोतृमण्डली के सामने भाषण देते हैं—वीमेन्स क्लब, विशप स्कोट एकेडेमी, वी० एम० सी० ए० यूनीटेरियन चर्च, स्प्रीच्युएलिस्ट क्रिश्चियन यूनियन और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं ने उन्हें निमंत्रण दिया है। क्योंकि उनके सिद्धान्त इतने विशाल हैं कि सभी प्रकार के विश्वास उसमें समा जाते हैं। उनके 'दर्शन' की तुलना उस बड़े भारी कम्बल से की जा सकती है, जो मनुष्य जाति के प्रत्येक मत-पथ को स्थान देने के अनन्तर इतना बच जाता है कि सभी विश्वासी और अविश्वासी उसकी गरमी में आराम पा सकते हैं। स्वामी जी ने कभी यह सोचने का कष्ट नहीं किया कि इस चर्च अथवा उस संगठन के सिद्धान्त हमारे मत से मिलते हैं या नहीं। वे तो जिस किसी ने भी प्रार्थना की तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी स्वीकृति दे देते हैं और जब कभी इस प्रकार की आशु स्वीकृति से उनके कार्यक्रम में गड़बड़ी होने लगती है तो वे बड़े धैर्य और मार्जन-पूर्ण हृदय से सौभाग्यवश प्राप्त अपने कुछ कार्यकुशल मित्रों की सहायता से सबको निभाने की चेष्टा करते हैं और यदि आवश्यकता पड़ जाती है तो कभी-कभी लगातार कई दिनों तक प्रातः, अपराह्ण और सायं तीनों समय बोलते

रहते हैं। जहां कहीं और जब कभी वे किसी श्रोतृमण्डली अथवा कक्षा में बोलते हैं, तो उनकी इच्छा के अनुसार उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वे मानों मनुष्य को क्षुद्रता के घेरे से निकालकर बाहर खड़ा कर देते हैं। मंत्री, न्यायाधीश, वकील, जिज्ञासु और संशयालु—सभी को उनका भाषण सुन्दर मालूम होता है।

संक्षेप में, मोटे तौर से स्वामी राम वहां खड़े हुए हैं, जहां दर्शन-शास्त्र और व्यावहारिक विज्ञान एक स्थान पर मिलते हैं। वे एक सुयोग्य भाषाविद् हैं—वे बहुत सी अर्वाचीन और प्राचीन भाषाओं में पारंगत हैं। उन्होंने प्राचीन गुप्त रहस्यों एवं धर्मों का बड़ा व्यापक अध्ययन किया है। सभी देशों के वर्तमान इतिहास, साहित्य, जनश्रुति एवं दर्शनशास्त्रों में उनकी अबाध गति है। इसके पूर्व वे पंजाब के महान् विश्व-विद्यालय के केन्द्र लाहौर में गणित एवं धार्मिक दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर थे। उनका धर्म क्या है? उसे उन्होंने वेदान्त दर्शन का नाम दिया है, जो हमें दिव्यानुभूति के लिए एक भीतरी चेतना का पता देता है।

अमरीका में उनका उद्देश्य दुहरा है। मुख्यतः वे अपने देश—भारतवर्ष और भारतवासियों में अमरीकनों की अभिरुचि पैदा करना चाहते हैं जिससे हिन्दुओं को यहां शिक्षा प्राप्त करने में सहायता मिल सके। वे हिन्दुओं को अमेरीकन कालेजों में भरती कराना चाहते हैं, जहां वे केवल लौकिक विद्या ही ग्रहण न करें, वरन् अमेरीकन दिलेरी, और अमेरीकन स्वतंत्रता का स्वच्छन्द भाव भी आत्मसात् करें, जिससे कि वे पुनः अपने देश को वापस लौटने पर अपने स्वदेश-वासियों को इन भावों की शिक्षा दे सकें। इस प्रकार उन्हें आशा है कि जो भयानक जाति-पाँति की प्रथा वहां प्रचलित है, वह धीरे-धीरे अवश्य टूट जायगी।

उनका दूसरा उद्देश्य है अपने दार्शनिक विचारों का महाम-

हिम संदेश का प्रचार जो मनुष्य और उस परमात्मा की एकता प्रतिपादित करता है।

यहां अन्य बातों के साथ वे आरगन एवं राष्ट्र की अन्य रियासतों के कालेजों को इस बात के लिए तैयार करना चाहते हैं कि उनमें हिन्दू विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था हो जाय।

सन्-फ्रांसिस्को में वे दो मास ठहरे थे और वहां इस विषय में इन्होंने कुछ प्रभावशाली गण्यमान्य व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट भी किया था। वहां एक विद्यार्थी के लिए व्यवस्था हो गयी है। पोर्टलेण्ड के पश्चात् वे अन्य बड़े शहरों में जाना चाहते हैं और उन्हें आशा है कि वहां वे और भी बड़ी संख्या में लोगों की अभिरुचि इस विषय की ओर आकृष्ट कर सकेंगे।

पोर्टलैंड जनरल ने इस प्रकार लिखा है—

स्वामी राम, भारतवर्ष के उच्चतम महात्मा, गत दस दिन से यहां व्याख्यान और प्रवचन दे रहे हैं। और उन्होंने अपनी योजना की ओर अधिकांश लोगों का ध्यान भी आकृष्ट किया है। वे कहते हैं कि उनकी योजना के द्वारा ही भारतवर्ष में यथार्थ और प्रभावशाली ढंग से प्रचार-कार्य हो सकेगा और वह भी उससे कहीं अधिक स्वल्प व्यय में, जो आज कल ईसाई प्रचारक उस देश में कर रहे हैं।

भारतवर्ष में प्रचार कार्य को और अधिक प्रभावशाली बनाने की अपनी योजना को राम अपने एक व्याख्यान 'भारतवर्ष की दशा' में जनता के समक्ष रखेंगे। यह व्याख्यान मारक्वान थियेटर में २० दिसम्बर को रविवार अपराह्न ३ बजे दिन से होगा। व्याख्यान बिल्कुल निःशुक्ल होगा किन्तु रविवार के प्रातःकाल १० बजे से मारक्कान बोक्स आफिस में अपने लिए स्थान सुरक्षित कराया जा सकता है।

राम स्वयं अपने लिए कभी रुपया-पैसा नहीं मांगते किन्तु व्याख्यान के पश्चात् कुछ चन्दा इकट्ठा किया जायगा; जिससे उपस्थित सज्जनों को उस निधि में दान देने का अवसर मिल सके जिसे वे उस प्रचार-कार्य में व्यय करेंगे, जो यहां उन्होंने उठाया है। यह धन भारतवर्ष नहीं भेजा जायगा, वरन् अमरीका में ही व्यय किया जायगा क्योंकि राम की योजना यह है कि कुछ नवयुवक हिन्दू विद्यार्थी—विशेषकर भारतीय विश्वविद्यालयों के बी० ए० पास विद्यार्थी—यहां बुलाये जायं और उन्हें इस शर्त पर शिक्षा दी जाय कि अपनी शिक्षा के अनन्तर वे अपना समय और अपनी शक्ति अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष में किसी समाजसुधार के आन्दोलन में लगायेंगे।

स्टेण्डफोर्ड यूनीवर्सिटी के डाक्टर स्टार जोर्डन, केलीफोरनिया यूनीवर्सिटी के प्रेसीडेण्ट बी० आई० ह्लर एवं केलीफोरनिया की यूनाइटेड स्टेट्स अपील कोर्ट के जज भेरो इस निधि के संरक्षक रहेंगे, जिसके लिए आज चन्दा मांगा जायगा।

मैं प्रकाश पुंज हूँ

सच्ची आत्मा क्या है? शरीर वास्तविक आत्मा नहीं है। न मन और न प्राण ही सच्ची आत्मा हो सकते हैं। तुम कैसे जानते हो कि संसार है—अपनी चेतना के द्वारा। पर तुम्हारी चेतना भी तो तीन रूपों में परिवर्तित होती रहती है। एक जाग्रत चेतना है, एक स्वप्न-चेतना है और एक सुषुप्ति चेतना भी है। हमारी चेतना एक प्रकार से थर्मामीटर की भांति है, जिसके द्वारा हमें संसार के दबाव या ताप का पता चलता है।

जाग्रत चेतना हमें बताती है कि यह संसार ठोस, कठोर और नियमों से बंधा हुआ है। स्वप्न-चेतना की राय इसके सर्वथा विपरीत

है। और हमारे जीवन में स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थायें उतनी ही बलवती हैं जितनी कि जाग्रत अवस्था। अपने जीवन में जितने समय हम जागते हैं, प्रायः उतने ही समय हम सोते हैं, शिशु अवस्था तो एक प्रकार से पूर्णतः निद्रा की अवस्था है। और जाग्रत अवस्था की चेतना नित्य ही सुषुप्ति अथवा स्वप्न-चेतना से पराजित होती रहती है। ऐसा संसार में सभी का अनुभव है।

अब सत्य की परिभाषा है कि जो तीनों कालों—भूत, वर्तमान और भविष्य सबमें स्थिर रहे, वही सत्य है। 'अहम्' भाव की दृष्टि से जाग्रत अवस्था में चेतना शरीर से तदात्म होती है। 'मैं' कहने से हमें शरीर का बोध होता है। स्वप्न अवस्था में यह 'मैं' पूर्णतः बदल जाती है। स्वप्न-दृष्टा और जाग्रत-दृष्टा भिन्न-भिन्न हैं। एक नहीं होते। हम गरीब नहीं हैं, पर स्वप्न में हम गरीब बन जाते हैं। स्वप्न में हम पानी पीते हैं और जागने पर हमें प्यास मालूम होती है। स्वप्न में हम जंगलों में भटक जाते हैं और जागने पर आराम से अपनी चारपाई पर लेटे होते हैं। इससे स्वप्न-दृष्टा और जाग्रत-दृष्टा का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। सुषुप्ति अवस्था में चेतना का एक तीसरा रूप होता है। तब वह चेतना 'कुछ नहीं' के साथ तदात्म होती है। हम कहते हैं कि आज ऐसी गहरी नींद सोये कि कोई स्वप्न नहीं देखा। वास्तव में सुषुप्ति अवस्था में भी कोई ऐसा तत्व हममें विद्यमान रहता है, जो उस समय भी जागता है और जो कभी नहीं सोता। वही हमारी वास्तविक आत्मा है। इस चेतना में दृष्टा-दृश्य नहीं होता, वही शुद्ध चेतना है और वही है हमारी सच्ची आत्मा।

जो कोई गहरी नींद में सोता है, वह जागने पर यही कहता है, आज कोई स्वप्न नहीं देखा। हम कहते हैं—प्यारे, जरा अपने इस कथन को लिखिये तो सही कि आज नींद में कहीं कुछ न था। यह कथन तो तभी सत्य हो सकता है, जब तुम स्वयं उसकी साक्ष्य भरो। यदि तुम वस्तुतः उस दशा में उपस्थित नहीं थे तो ऐसी गवाही कैसे

देते हो कि मैंने कोई स्वप्न नहीं देखा। निस्संदेह तुममें कुछ ऐसा तत्व है, जो सुषुप्ति में भी जागता है। वही तुम्हारी वास्तविक आत्मा, शुद्ध चेतना, दृश्य-रहित चेतना है।

अब और तमाशा देखिये—इसी सुषुप्ति अवस्था–इसी अज्ञान की अवस्था से जगत का यह सारा पसारा निकलता है जिसे हम जाग्रत अवस्था में ठोस संसार कहते हैं। इस बात को आप नदियों के उदाहरण से आसानी से समझ सकते हैं। उनकी भी तीन अवस्थायें होती हैं—(१) पर्वतों की चोटियों पर जमा हुआ हिम-भाण्डार (२) पर्वतों पर ही विहार करने वाले हिम-भाण्डार से निःसृत निर्मल जल का निर्झर (३) पर्वतों से उतरकर उस निर्झर का मैदानों की मिट्टी से मिलकर नदी के रूप में होकर बहना। नदी की ये तीन अवस्थायें सर्वविदित हैं।

नदी की प्रथम अवस्था का सूत्रपात तब होता है, जब सूर्य की प्रखर किरणें कुछ समय तक उन हिम की शिलाओं पर चमकती रहती हैं और हिम पिघल-पिघल कर निर्मल जल धाराओं के रूप में बहने लगता है। और यही जलधारायें मिल-जुलकर पर्वतों से नीचे उतरने पर नदी कहलाती है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिम-शिला पर सूर्य के चमकने पर भी सूर्य का कोई प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। इसके विपरीत दूसरी अवस्था के निझरों में तथा तीसरी अवस्था की नदी में सूर्य का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी देता है। निर्झरों की गति चंचल होने से सूर्य के प्रतिबिम्ब में भी चंचलता रहती है। और नदी की गति अपेक्षताकृत मंद होने से प्रतिबिम्ब में कुछ स्थिरता दिखायी देती है। दूसरी विशेषतः यह है कि पर्वत पर बहने वाले निर्झरों में बड़ा सौंदर्य होता है पर उनका जीवन के लिए कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं होता। इसके विपरीत मैदानों में नदी की गति मंद होती है। पर हमारे जीवन के लिए नदी की उपयोगिता बढ़ जाती है। नावों के द्वारा आवागमन की सुविधा होती

है। नदियों से नहरें निकालकर खेतों की सिंचाई की जाती है।

अब नदी की तीन अवस्थाओं के साथ जीवन की तीन दशाओं-सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत की तुलना कीजिये। इन्हें कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर भी कहते हैं। जिस प्रकार हिम-शिलाओं पर प्राकृत सूर्य के कुछ देर तक चमकने से उन हिमशिलाओं में गर्भित नदी निर्झरों के रूप में बह निकलती है, ठीक उसी प्रकार सूर्यों का सूर्य हमारी वास्तविक आत्मा, जो सर्वथा निर्विकार, अव्यक्त, शुद्ध साक्षि रूप है, जब कुछ समय तक उस सुषुप्ति अवस्था के 'कुछ नहीं' पर जिसे दूसरे शब्दों में माया कहते हैं, चमकती है, तब उससे स्वप्न जगत का सूत्रपात होता है। सुषुप्ति अवस्था में कोई अहंकार, अहम् बुद्धि नहीं होती, पर स्वप्न जगत में दृष्टा और दृश्य का भेद होता है, जो देखे, अनुभव करे वह दृष्टा और जो दिखायी दे, अनुभव में आवे वह दृश्य।

अब सोचिये, स्वप्न-जगत के अनुभव और जाग्रत जगत के अनुभव में क्या सम्बन्ध हो सकता है। जैसे प्रारम्भ में एक पतला सा नाला होता है और वही आगे चलकर एक विशाल सरिता बनता है अथवा जैसे एक छोटा सा पौधा एक बड़े वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार स्वप्न-जगत के उपरान्त हमें जाग्रत जगत का अनुभव होता है। स्वप्न सूक्ष्म होता है और जाग्रत स्थूल। सुषुप्ति में तो कोई अहंकार-मैंपन नहीं होता है। परन्तु स्वप्न और जाग्रत-दोनों में यह 'मैंपन' स्पष्ट रहता है। स्वप्न में और जाग्रत में हमारे अन्तःकरण में उस अचिन्त्य आत्मा-परमात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जो 'मैं-मैं' 'मैं-यह' 'मैं-वह' करके बोलता है, यह केवल प्रतिबिम्ब मात्र है। हमारी वास्तविक आत्मा तो वह निर्विकार, न जागने—न सोने वाली आत्मा है। स्वप्न में हम अनेक प्रकार की चीजें देखते हैं। पर किसी चीज को देखने के लिए प्रकाश चाहिए। अब स्वप्न में कौन सा प्रकाश होता है, सूर्य का, चन्द्र का या तारों का,

जिसके द्वारा हम चीजों को देखते हैं। नहीं, वहां सूर्य-चांद तो कुछ होते नहीं। फिर किस प्रकाश में हम देखते हैं। वह हमारी आत्मा, वास्तविक आत्मा का प्रकाश है। आत्मा शुद्ध प्रकाश रूप है। उसी के प्रकाश में हम स्वप्न की चीजों को देखते हैं और उसी के प्रकाश में जाग्रत की वस्तुओं को देखते हैं वही प्रकाश सुषुप्ति के अंधकार-अज्ञान-पर निर्द्वन्द्व होकर चमकता रहता है। वह प्रकाश, नित्य, शाश्वत, सनातन है। उसमें कभी कोई विकार, परिवर्तन नहीं होता। जीवन की ये तीनों अवस्थायें उसके सामने आती-जाती और प्रकाशित होती रहती हैं। स्वप्न में यदि तुम चन्द्रमा देखते हो तो वह चन्द्रमा और उसका प्रकाश दोनों अपने अस्तित्व के लिए इस प्रकाशों के प्रकाश आत्मदेव के ऋणी होते हैं। लो, आज यह भले प्रकार सिद्ध हो गया कि तुम्हीं स्वयं प्रकाशों के प्रकाश-प्रकाशपुंज हो, जैसे नदियों के उदाहरण में यह निर्विवाद सिद्ध है कि जो सूर्य नदियों के उद्गम में चमकता है, वही उनके मध्य प्रवाह और मुहाने पर भी चमकता है। उसी प्रकार हमारी वास्तविक आत्मा सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत अवस्थाओं पर एक समान चमकती है, वही अविनश्वर आत्मा तुम हो। अपनी 'मैं' को उसी अन्तरंग सत्य, वास्तविक आत्मा के साथ तदात्म करो। पूर्ण हृदय से अपने आप को प्रकाशपुंज अनुभव करो और तुम देखोगे कि तुम स्वयं आनन्द, ज्ञान, शक्ति के आदि स्रोत हो। यदि तुम जीवन भर अपने आपको शरीर, मन, बुद्धि, चित, अहंकार से तदात्म करते रहोगे, तो तुम्हारे हाथ कभी कुछ नहीं लगेगा।

जैसे जो प्राकृत सूर्य एक नदी के उद्गम, मध्य और अन्त में चमकता है, वही संसार की सब नदियों के उद्गम, मध्य और अन्त में चमकता है। उसी प्रकार तुम्हारे अन्तर की प्रकाशपुंज, वास्तविक आत्मा संसार के सभी मनुष्यों की सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओं पर चमकती है। वास्तव में यह प्रकाश ही सब कुछ है,

वह उन वस्तुओं से पृथक नहीं, जिन पर वह चमकता है । बस, तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, निरन्तर इसी विचार पर ध्यान जमाओ कि तुम प्रकाशपुंज हो । मैं वही अचिन्त्य आत्मा हूं । मैं प्रकाशों का प्रकाश हूं । अपने आपको इसी प्रकाश, अद्वय प्रकाश से तदात्म करो। वही तुम्हारा मूल स्वरूप है । जहां स्वयं प्रकाशपुंज हुए वहाँ फिर भय, शंका, शोक कहां ? सब गायब है ! मैं केवल एक अनन्त प्रकाश शाश्वत, निर्विकार, त्रिकालावाधित सत्य और सनातन हूं, मैं प्रकाशपुंज हूँ ! तब सारा संसार उसी अनन्त प्रकाश में लहरों, भवरों जैसा लहराता रह जायगा । मैं प्रकाशपुंज हूं । ॐ*

---

*स्वामी राम ने अमेरीका में अद्वैत वेदान्त विषयक सैंकड़ों व्याख्यान दिये । उन्होंने वेदान्त को किस सरल ढंग से समझाने की चेष्टा की है, इसका दिग्दर्शन कराने के लिए उनके एक व्याख्यान का भावार्थ 'मैं प्रकाशपुंज हूं' यहां दिया गया है, यद्यपि यह लेख मूल पुस्तक में संगृहीत नहीं है ।

तेरहवाँ परिच्छेद

राम का पुनरागमन

स्वामी राम मथुरा और पुष्कर में

संयुक्त राष्ट्र अमरीका से लौटने पर स्वामी राम मथुरा में एक वृद्ध स्वामी शिवगणाचार्य के साथ यमुना के दूसरे किनारे पर स्थित शांति-आश्रम नामांकित भवन में ठहरे थे। मैं अपने एक मित्र के साथ उनसे मिलने लाहौर से वहाँ पहुँचा। प्रातःकाल आठ बजे का समय होगा। मैंने देखा, वे इतने दिन चढ़े अपने कमरे में भीतर से जंजीर लगाये हुए हैं। उनके विश्राम में व्याघात होने की आशंका होने पर भी मैंने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने पूछा—कौन है? मैंने कहा—मैं, तुम्हारा पूरन! वे उठे और द्वार खोल दिया। मैं उनसे दो वर्ष बाद मिल रहा था। शीतकाल था। वे भगवा रंग का कम्बल ओढ़े हुए थे। वे मुझसे मिले, किन्तु उसमें वह अपनापन न था। उन्होंने मुझे अपने पास बैठने की आज्ञा दी। किन्तु ज्योंही उन्होंने कुछ बोलना चाहा त्योंही उनके नेत्र प्रकाश से चमक उठे। उन्होंने कहा—त्याग और बलिदान से ही देश की स्वतंत्रता प्राप्त की जा सकती है। राम का सिर जायगा, फिर पूरन का, फिर देश के सैकड़ों नवयुवकों का; तभी देश स्वतंत्र होगा। भारतवर्ष, भारतमाता को स्वतंत्र करना होगा। मैं आश्चर्य में डूब गया। यह वह बात न थी, जो उन्होंने हमें टोकियो में सुनायी थी, जहाँ मैं सर्वप्रथम उनसे मिला था। स्वतंत्रता के झूले में झूलने वाली अनेक भूमियों के निरीक्षण ने, ऐसा मालूम होता था, उनके धार्मिक उत्साह और प्रचार को

आच्छन्न कर लिया था। यहाँ जो भी बातें उन्होंने कीं, उनसे मैं यही समझा कि वे इन दिनों राजनैतिक आन्दोलन को ही सबसे अधिक महत्व दे रहे हैं। थोड़ी देर बाद जब हम लोग कमरे से बाहर निकले ही थे तो दो भद्र पुरुष पट्टू का कोट पहने, काली टोपी लगाये और लम्बे-लम्बे मफलर गले में डाले मथुरा की ओर से उस स्थल पर प्रकट हुए। स्पष्ट ही वे स्वामी जी के दर्शन करना चाहते थे। उनके प्रणामों के उत्तर में स्वामी जी दिल खोलकर हँस पड़े और उनकी वह खिलखिलाहट बड़ी देर तक चारों ओर गूँजती रही। बड़ी देर के बाद जब उनका हँसना समाप्त हुआ तो वे कहने लगे—मेरे प्यारे देशवासियो! तुम लोग छिप-छिपकर राम की जाँच करने आते हो, राम तुम्हारे सामने हृदय खोल कर रख देता है। संसार में सबसे बढ़िया काम है, राम के हृदय की थाह लेना। उसकी जाँच-पड़ताल करो, उसका पता लगाओ और दुनिया तुम्हारे चरणों पर लोटेगी।

उस विशेष परिस्थिति में इन लोगों में मिलते समय राम के इस विचित्र ढंग ने मुझको और मेरे साथी को कुछ आश्चर्य में डाल दिया। वे तुरन्त उनके पैरों पर गिर पड़े और बोले—स्वामी जी! क्षमा कीजिये। हम लोगों को सरकारी आदेशवश आना पड़ता है। आपका मुख-मण्डल देखकर हम आपके गुलाम हो जाते हैं। आपके प्रेम के आगे हमारी नहीं चल सकती। हम लोग तो पापी हैं। और उन्होंने स्वीकार किया कि वे सरकार के खुफिया पुलिस-विभाग के कर्मचारी हैं जिनको यहाँ नियुक्त किया गया है।

स्वामी शिवगणाचार्य घंटों राम के साथ एकान्त में बातें किया करते थे और, जैसा स्वामी जी ने मुझे बताया कि वे राम को प्रत्यक्ष राजनीति से पृथक्, सर्वथा दूर रहने का परामर्श देते थे और कहते थे—भारतवर्ष के राजाओं से मिलिये, बहुत सा धन-संग्रह कीजिये और अपना एक सम्प्रदाय और संघ चलाइये, जिससे कुछ शक्ति बढ़े।

वे इसी प्रकार की और बहुत सी बातें जो अवसरवादियों की कृपण और पुराणपंथी बुद्धि के अनुसार ठीक जँचती थी, राम को सुझाया करते थे। स्वामी राम को ये बातें रुचती न थीं किन्तु उन्होंने कुछ दिनों तक इस साधु के साथ रहना स्वीकार कर लिया था। इसलिए कि जब वे भारतवर्ष में उतरे तो एक बार पुनः उन्होंने अपनी सहज उदारता के वश इस साधु के स्वेच्छा से किये हुए पूर्ण आत्म-समर्पण को स्वीकार कर लिया था। ये उन्हें लेने के लिए बम्बई गये हुए थे। वहां इन्होंने एक एकान्त कमरे में अपना शेष जीवन स्वामी राम को सौंप दिया था। स्वामी राम ने अपनी सच्चाई के अनुसार इसको सच्चा समझा। पर स्वामी शिवगणाचार्य की सुधार-योजना राम के स्वभाव के अनुकूल न थी। अतः स्वामी राम ने अन्त में इस मैत्री को सदा के लिए तोड़ दिया। वे मथुरा से चुपचाप पुष्कर खिसक गये और वहाँ से उन्होंने स्वामी शिवगणाचार्य को पत्र लिखा कि वे तो स्वयं अपनी ही योजना के अनुसार कार्य करेंगे। उन्हें राजाओं से, उनकी धन-सम्पत्ति अथवा सम्प्रदाय आदि की स्थापना से कोई सरोकार नहीं। उनके यहां इन बातों का कोई मूल्य नहीं!

मथुरा में रहते समय स्वामी जी को यमुना की स्वच्छ, शुभ्र रेणुका पर बैठना बड़ा अच्छा लगता था। वे धूप में बैठे-बैठे कुछ भी न करते हुए धूप-स्नान किया करते थे। एक बार उन्हें मथुरा की दिशा से यमुना के इस पार आती हुई कुछ नावें दिखायी दीं—उनमें स्त्री और पुरुष भरे हुए थे। वे भारतीय ईसाई थे जो उद्यान-भोज के निमित्त बाहर निकले थे। स्वामी जी ने उन्हें देखा और कहा—पूरन जी, वे सब राम के हैं और राम भी उनका है। क्या तुम उनसे कुछ बातचीत करा सकते हो? राम उनसे बात करना चाहता है। वे उस समय प्रायः नंगे—एक भगवा रंग की धोती पहने बैठे थे। मैं उस आगन्तुक टोली की ओर बढ़ा। वे आ गये और खड़े होकर सुनने लगे। राम की बातें उन्हें बहुत पसन्द आयीं।

राम बड़े प्रेम और आनन्द के साथ बातें कर रहे थे। इसी बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा था—राम ईसाई धर्म को धन्यवाद देता है, जो उसने तुम्हें इतना ऊंचा उठाया। जो कुछ हिन्दू धर्म तुम्हारे लिए नहीं कर सका, उसे ईसाई धर्म ने कर दिखाया। सामाजिक दृष्टि से तुम्हारा उत्थान, तुम लोगों की आनन्द-भरी चितवन राम को बड़ी प्यारी लगती है। तुम राम के हो और राम तुम्हारा है। इसके अनन्तर उन्होंने अपनी अमरीकन यात्रा के कुछ किस्से सुनाये और उन्हें अपनी मातृभूमि को प्यार करने का उपदेश दिया।

❀ ❀ ❀

पुष्कर में उनके शिष्य, स्वामी नारायण उनसे आ मिले और मैं भी लाहौर से दो-एक मित्रों के साथ वहां पहुँचा। वे उस समय मगरों से लबालब भरे हुए सुप्रसिद्ध पुष्कर सरोवर के किनारे किशनगढ़ राजभवन में ठहरे थे। उनके हाथ में एक छोटा सा बांस का खोखला डंडा था और ज्योंही मैं उनसे मिला त्योंही उन्होंने कहा—और तुमने यह बांस का डंडा तो देखा नहीं। यह बड़ा विचित्र है, यह राम की जादू की छड़ी है, जिसे देखकर मगर भाग खड़े होते हैं। और यही है कागज-पेंसिल आदि रखने के लिए राम की झोली (ऐसा कहकर उन्होंने दिखाया कि उसकी पोल में सचमुच ऐसी ही चीजें बड़ी सावधानी से रखी हुई हैं।) बस, यही राम का सब कुछ है। इसके सिवा अब राम को और किसी भौतिक वस्तु की चाह नहीं। और खिलखिलाकर हँस पड़ें। 'मनुष्य सचमुच राजाओं का राजा हो जाता है, जब उसकी यात्रा की गठरी इतनी छोटी हो जाती है जितनी कि इस बांस की पोल और जब इस पोल की छोटी सी जगह में उसकी सारी आवश्यकतायें समा जाती हैं।' वे मकान की छत पर धूप में बैठा करते थे। अभी तक शीत काल चल रहा था। वे कहते थे—राम को कमरे के भीतर बैठना अच्छा नहीं लगता। कमरे तो उसे कब्रों के समान शून्य मालूम होते हैं। वे हम

सबको लेकर सायंकाल के समय पुष्कर की पहाड़ियों पर चढ़ते और वहाँ इधर-उधर घूमते-घामते और बराबर घूमते ही रहते। वे किसी को विश्राम न करने देते थे। साथ ही साथ सबको हर समय ॐ ॐ के जप का आदेश देते थे। इस जाप में जरा-सा भी व्यतिक्रम उन्हें सह्य न होता था। एक बार वे पर्वत के शीर्ष में पत्थर की चट्टान पर बैठ गये और पुकार उठे—'अरे, ये लोग क्यों ईश्वर को नहीं देख पाते? उन्हें बुलाओ, वे राम के पास आयें, उन्हें ईश्वर के दर्शन कराये जायँ। उनकी आंखें बन्द हो गयीं, टप-टप आँसू झरने लगे, मुखमण्डल चमक उठा और फैली हुई बाहें वायु में इस प्रकार काँपने लगीं जैसे सारे विश्व को ही अपने अंक में भर लेना चाहती हों। ईश्वर, जगदीश्वर, भगवान् तो यहाँ है। जो भगवान् के दर्शन करना चाहें वे यहां आयें।' ऐसा कहकर वे चुप हो गये और ऊपर के ओंठ से नीचे ओंठ को दबा लिया। उनकी मुख-मुद्रा ऐसी खिल उठी जैसे किसी बच्चे को पुनः उसकी मां मिल गयी हो। फिर उनका मुख बच्चों जैसे विश्वास, बच्चों जैसे आत्म-समर्पण से खुलता और बातचीत के बीच ही में ऐसा मालूम होने लगता जैसे मौन बरबस उन्हें आह्वान कर रहा हो। निर्झर फूटा, लहरें उठीं और देखते ही देखते विलीन हो गयीं।

वे मुझे अपने साथ पुष्कर-ताल में नहाने ले गये। 'राम तुम्हारे आगे रहेगा, तुम राम के पीछे खड़े होकर नहाना। देखो, हमें इन्हीं मगरों के साथ नहाना होगा।' हम लोग पानी में उतरे, वे छाती तक पानी में घुस गये। मैं कुछ-कुछ उनके लिए और पूरी तरह अपने लिए डर रहा था। मुझे तैरना नहीं आता था, फिर भी मैं पीछे-पीछे गया—जैसे उन मगरों के लिए सुस्वादु भोजन के दो कौर बढ़े जा रहे हों। किन्तु स्पष्ट ही उनके हृदय में डर न था, वे मगरों के स्वभाव को भली-भाँति जानते थे। उन्होंने अपना बाँस का डंडा पानी में छोड़ दिया, वह उन्हीं के सामने उतराने लगा, मानो मगरों

को आगे बढ़ने से रोकने के लिए उन्होंने जादू की छड़ी पानी में छोड़ दी हो और खूब नहाते रहे। फिर अपनी दो उँगलियों से अपने नथने दबाकर डुबकी लगायी। बाहर निकलते ही उन्होंने कहा—पूरन जी, देखो, मगर हमारी ओर लपक रहे हैं। चलो, बाहर चलें, वे नहीं चाहते कि हम उनके पानी में देर तक ठहरें। हम लोग जल्दी-जल्दी बाहर आये। स्वामी राम अपना बाँस का डंडा बराबर हाथ में दबाये हुए थे। पत्थर पर उसे खटखटाते हुए उन्होंने कहा—यह बड़ा पक्का साथी है; राम की खूब ही सेवा करता है। रात्रि में राम प्रायः मोमबत्ती अथवा मिट्टी के देशी दीपक से कवि 'नजीर' की कवितायें पढ़ा करते थे। वे इस कवि की स्वतंत्र-वृत्ति के बड़े प्रशंसक थे। कहा करते थे—नजीर राम का बालक है उन्मुक्त, बन्धनों से सर्वथा निर्द्वन्द्व। उसमें यत्र-तत्र कुछ भद्दापन है सही, किन्तु राम को उसकी परवाह नहीं। उसके मुख से जो स्वर निकले हैं उनसे ईश्वर की ध्वनि आती है।

पंजाब के जनश्रुति-साहित्य में वे गोपालसिंह की काफियों के बड़े प्रेमी थे। आँखें बन्द करके वे प्रेम से उन काफियों को गाया करते थे। उनके हृदय में वही भाव लहराने लगते जिनसे अभिभूत हो कवि ने उनकी रचना की थी। "राम स्यालकोट निवास से ही गोपालसिंह को जानता है। यह साधु-हृदय वहां से पांव-पांव ही वृन्दावन तक गया था। वह आजीवन भगवद्-प्रेम के नशे में झूमता रहा।"

वे अपने सामने किसी को किसी के विरुद्ध कुछ कहने-सुनने की अनुमति नहीं देते थे। उनका कहना था—दूसरों की बुराई करना, किसी के बारे में टुच्चे, गंदे, व्यक्तिगत आलोचनात्मक विचार प्रकट करना श्रेयस्कर नहीं होता। हमें हर एक चीज, हर एक मनुष्य का उज्ज्वल पहलू देखना चाहिए। जैसी हम अपनी आलोचना करते हैं उसी प्रकार सब की करें, यही उचित है।

किन्तु कभी-कभी जब बहुत से आदमी इकट्ठे होते और भारतवर्ष और उसके नेताओं की चर्चा चलती तो अनायास ही उनके मुख से इधर-उधर के व्यक्तिगत आक्षेप होने लगते। वे झट से ॐ का उच्चारण करने लगते और कहते—'सावधान, मन्दिर की घंटी बज रही है। कभी किसी व्यक्तिगत आक्षेप को पास न फटकने देना। स्वयं ॐ ॐ कहते और हम लोगों से भी ॐ की ध्वनि कराते—'तुम सब क्यों सुस्त पड़ जाते हो? ॐ का जाप तो बराबर चलते रहना चाहिए।' बार-बार वे यही आदेश दिया करते थे। इस सम्बन्ध में मुझे एक छोटी सी मनोरंजक घटना याद पड़ती है जो यहां दी जा सकती है।

मेरे साथ लाहौर टेकनिकल स्कूल का एक मद्रासी बालक वहां गया हुआ था। नाम था नायडू। मेरी समझ में, बड़े होने पर वह प्रयोगात्मक रसायन विद्या सीखने अमरीका भी गया था। उसने वहां अच्छी सफलता भी प्राप्त की थी। हां, तो इस नायडू से चौके के बाहर भोजन करते समय स्वामी जी कहते—नायडू, जरा दाल लाओ और नायडू झट से पहले उत्तर में कहता—ओम् और फिर दाल लेकर आ जाता किन्तु फिर भी वह यह न कहता—स्वामी जी दाल लीजिये, वरन् कहता केवल—ओम्! इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर उसका उच्चारण इतना तत्पर और इतना उत्साहपूर्ण हो गया था कि एक बार हम सब घंटों उसके ओम् पर हँसते रहे और वह भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। हर एक चीज को ओम् कहना और हर एक प्रश्न का एक ही उत्तर देना—ओम्!

❀ ❀ ❀

राम हम लोगों को पुष्कर की यज्ञभूमि में लिवा गये और बताया कि यह पुष्कर का तालाब क्यों पवित्र हो गया है। 'यहाँ किसी समय ब्रह्मा ने यज्ञ किया था, जिसका अनुष्ठान बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ था। सभी देवता और मनुष्य एकत्र हुए थे किन्तु

शंख नहीं बजा था। उस समय शंख-ध्वनि ईश्वर की आकाशवाणी मानी जाती थी, जिसके द्वारा यज्ञ की सफलता और असफलता का निर्णय होता था। जिस समय यहां सविधान इस यज्ञ का अनुष्ठान हो रहा था, उस समय पास ही के जंगलों में एक घसियारे के एकान्त हृदय में भी सच्चा 'ब्रह्म यज्ञ' चल रहा था। वह यज्ञ में नहीं जा सकता—नीच जाति का जो था! किन्तु वह भगवान् के ध्यान में डूबा हुआ था, इतना अधिक डूबा हुआ था कि यदि कभी घास काटते समय संयोगवश हँसिये से उसकी उँगली कट जाती और घाव लग जाता तो उसके बदन से मनुष्य का लाल-लाल रक्त नहीं निकलता, निकलता वहीं घास की नसों का हरा-हरा पानी। घाव लगने पर वह घसियारा भगवान् की मस्ती से पागल हो उठता और नाचने लगता। जब वह नाचता तो आस-पास के पेड़ और पर्वत भी उसके साथ नाच उठते। उसकी ऐसी दशा देखकर यज्ञ के होता आदि आये और इस पवित्र-हृदय व्यक्ति के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने प्रार्थना की कि चल कर हमारे यज्ञ को पवित्र कीजिये, आप की दया से ही यज्ञ का शंख बजेगा। और लो, जब यह पवित्रात्मा यज्ञ में आया तो शंख अपने आप बजने लगा। देवताओं को भी उसकी इस कृति पर बड़ा आश्चर्य हुआ।' यही सच्चा वेदान्त है, यह कह कर राम चुप हो गये। जब कभी राम ऐसी ही आत्म-साक्षात्कार सम्बन्धी कोई सुन्दर कथा सुनाते तो अन्त में कहते—'यही तो सच्चा वेदान्त है'!

❀ ❀ ❀

मथुरा में स्वामी जी अपने भक्तों के झुण्ड को यमुना की रेती पर ले जाते और छोटे-बड़े सभी से, यहां तक कि दाढ़ी वाले वृद्ध सज्जनों से भी कपड़े और जूते उतारने के लिए कहते और उनसे व्यायाम करवाते। एक भी व्यक्ति न छोड़ा जाता। कहते—शारीरिक व्यायाम सब के लिए परमावश्यक है। सूरज डूबते ही रुक जाते

और आनन्द-विभोर होकर अनन्त रूपों में नाचना सा प्रारम्भ कर देते। और उनके भक्त उनके हृदय-कमल को आनन्द की अनन्त पंखुड़ियों में खिलते देख-देख कर मुग्ध रह जाते।

पुष्कर में साथियों की संख्या अधिक न थी। केवल आधे दर्जन -- जो सत्संग के हेतु वहां इकट्ठे हुए थे—राम उनको घूमना, बिना प्रयोजन के, केवल घूमने का आनन्द लेने के लिए घूमना सिखलाते थे।

❀ ❀ ❀

इन दिनों स्वामी राम ने जितने व्याख्यान दिये उनमें देश-भक्ति, स्वदेश-प्रेम की अत्यन्त उग्र ज्वाला है। विशेषकर नवयुवकों को दिये हुए संदेश तो देश-सेवा की लगन से पूर्णतः ओत-प्रोत हैं। उदाहरणार्थ आलोचना और विश्व-प्रेम, यज्ञ, राष्ट्रीय धर्म, ब्रह्मचर्य, देश-भक्ति आदि संदेश। वह प्रस्तावना, जो उन्होंने राय बैजनाथ की पुस्तक 'हिन्दू धर्म—नूतन और पुरातन' के लिए लिखी थी, इस दिशा में उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। वहां वे हमें भारतमाता के एक सच्चे सुपुत्र के रूप में दिखायी देते हैं। किन्तु उनके पत्रों में हम उनके वास्तविक हृदय का दर्शन करते हैं।

उनके इन लिखित उपदेशों और संदेशों में हमें मनुष्य-जाति के उस सर्वोच्च आदर्श की रूप-रेखा की झलक स्पष्ट दिखायी देती है जिसे लेकर वे हिमालय के पर्वतों से पाश्चात्य देशों में प्रचारार्थ निकले थे किन्तु अपने इस संदेश को उन्होंने अलौकिक ज्ञानपूर्ण व्यक्तित्व की मुद्रा के साथ एक गंभीर और निजी तौर से संसार को सुनाया था। देखने में यही मालूम होता है कि वे अमरीका से पाश्चात्य राष्ट्रों द्वारा प्राप्त 'सफलता' से अत्यधिक प्रभावित होकर लौटे और चाहने लगे कि उनके विपन्न देशवासी भी उत्थान के पथ पर अग्रसर हों। यदि एक धर्म उन्हें एक सूत्र में नहीं बांध सकता तो अपने एक सामान्य देश का प्रेम ही उनमें जीवन फूंक दे। यद्यपि वह

उनका अपना इच्छित विषय न था, फिर भी उनके संदेश ने, उनके आग्रह ने, उनकी अपूर्व अलौकिकता के संयोग ने जोरों से लोगों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया और उन्हें देश-सेवा के लिए एक नयी प्रेरणा मिली। स्वामी राम थे एक आनन्द-विभोर महान् आत्मा, जिसे न कल का कोई ध्यान था और न मनुष्यों के कामों से कोई प्रयोजन। यदि न होती कहीं उनमें आत्म-चिन्तन की इतनी गहराई तो शायद् पाश्चात्य जगत् के संसर्ग से सामान्यतः स्वामी राम में कुछ शैथिल्य आ जाता। यह उसी आत्मनिष्ठा का निश्चित प्रभाव था कि अपने हृदय की वैचित्र्यपूर्ण कोमलता और हृदयस्थ परमात्मा की धड़कन को काट-काटकर उन्होंने देशभक्ति और राष्ट्र-निर्माण के साधारण बौद्धिक साधनों की छूँछी भावनाओं को भी रक्तरंजित और अलंकृत कर दिया था। काश, वे अधिक दिन जीवित रहते! यदि उन्होंने आध्यात्मिक आनन्द के स्थान में इस दिशा की ओर अपने मस्तिष्क का विकास किया होता तो निस्संदेह वे एक महान लौकिक राष्ट्र-निर्माता बन जाते, क्योंकि उनमें इस कार्य के लिए सभी योग्यतायें विद्यमान थीं। किन्तु जैसा उन्होंने चाहा, इस परिमित सहानुभूति के विचार को भी उन्होंने अपने हृदय से वैसे ही झाड़कर अलग कर दिया जैसे चिड़िया पंख फड़फड़ाकर वर्षा की बूंदों को दूर फेंक देती है। और राम के यहाँ तो निरन्तर भगवान और भगवद्प्रेम की ज्वाला प्रज्ज्वलित रहती थी, जिसके बल पर उन्होंने पाश्चात्य देशों से भी इन भावनाओं को भगाने का प्रयत्न किया था। अब वे एकान्त पाकर उसी के लिए संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में भी जुट पड़े।

उनकी चेतना के निर्मल दर्पण में कहीं किसी धब्बे की गुंजायश न थी। कोई उसे धूमिल न कर सकता था। जब मिसेज बैलमैन अमरीका-प्रस्थान करने से पहले व्यास आश्रम पर उनके दर्शन करने गयीं, तो वे उससे मिलने आये। गंगाजी की तेज धारा को पार

करना उन्होंने उस देवी के लिए ठीक न समझा। मिसेज बैलमेन ने अमरीका जाते समय, राम के निर्वाण से एक वर्ष पूर्व, मुझसे कहा था कि राम अब पर्वतों से नीचे मैदानों में न उतरेंगे। विदा होते समय राम अस्ताचलगामी सूर्य की ओर अभिमुख हुए थे, जो एक ओर बहती हुई गंगा की नीलवर्ण धारा में प्रतिबिम्बित हो रहा था और दूसरी ओर जिसने इस ब्रह्मज्योतिर्मय मुखमण्डल को अपने पूर्ण प्रकाश से जगमगा दिया था। राम बोले—सूर्यानन्द (स्वामी राम मिसेज बैलमेन को इसी नाम से पुकारते थे) विदा, जाओ! देखो, सूर्य डूब रहा है, यही तुम्हारा राम है। इस स्वर्णभूमि को कभी भूलना नहीं। चाहे जहाँ जाओ, इसे सदा अपने हृदय में अंकित रखना। उनकी वाणी के उतार और संकेत से मिसेज बैलमेन ने समझ लिया कि वे उससे अन्तिम, उससे क्या, संसार से अन्तिम नमस्कार कर रहे हैं। मिसेज बैलमेन का हृदय भर आया। उसने कहा—भारतवर्ष ने उन्हें खो दिया, स्वामी राम अब कभी पहाड़ों से नीचे उतरेंगे—इसकी अब कोई आशा नहीं रही। एक वर्ष के बाद उन्होंने मुझे भी प्रायः उन्हीं हृदय वेधने वाले शब्दों के साथ विदा किया था। उस समय वे उत्तराखण्ड में निवास करते थे। उन्होंने कहा था—यह हेमकुण्ड है—स्वर्णभूमि! चाहे जहाँ जाओ, रहना यहीं पर—इस स्वर्णभूमि को सदा अपने हृदय में जमाये रखना।

जो पत्र उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों के नाम पुष्कर से लिखे थे (उनमें से कुछ परिच्छेद १६ में दिये गये हैं) वे अधिकांश में अपने निवासस्थान की छत पर शीतकालीन सूर्यताप में नहाते समय लिखे गये थे। इन पत्रों में हम आज भी उनके हृदय का प्रखर प्रकाश देख और सुन सकते हैं। इन दिनों उन्होंने जो गद्य और पद्य लिखा था उसे ध्यानपूर्वक पढ़ने से मुझे यही समझ पड़ता है कि उनकी सर्वोत्तम कविता इन्हीं और ऐसे ही छोटे-छोटे पत्रों में—जो समय-

समय पर उन्होंने अपने मित्रों को लिखे थे—शायद उनकी छन्दोबद्ध कविता से भी अधिक काव्यमयता इनमें विद्यमान है। और उनके इन पत्रों के बाद आते हैं उनकी उर्दू और फारसी की शेरों और गजलों के संग्रह जिनमें साक्षात् स्वयं इस पुष्प-रसिक भ्रमर की महान आत्मा की सुगंध है—एकदम मधुर और मनहरण !

चौदहवाँ परिच्छेद

गंगा के किनारे व्यास-आश्रम में स्वामी राम

मैदानों में जनता के सामने भाषण करते-करते राम जब थक जाते, शक्ति का ह्रास सा होने लगता तो वे समाज से दूर पर्वतीय एकान्त में भाग जाते। वहीं उन्हें सर्वाधिक प्रिय था। वे जंगलों के बीच एकान्त-वास के निमित्त उपयुक्त स्थान चुनने में बड़ा परिश्रम और प्रयास करते थे। एक बार उन्होंने ऋषिकेश से कुछ ऊपर बदरी-नारायण के मार्ग में गंगा के जंगल वाले तट पर जहां लोगों का आना-जाना बहुत ही कम होता है, अपने निवास के लिए एक पठार पर व्यास-आश्रम को पसन्द किया था। वहां लगातार एक वर्ष तक निवास करने से उनके दाढ़ी बढ़ गयी। वहां जो उनके दर्शन करने जाता, वे उससे कहते—देखो, राम के व्यास जैसी दाढ़ी निकली है। यहां उन्होंने नियमित रूप से संस्कृत व्याकरण और साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया, शांकर भाष्य और वेद पढ़े। प्रयाग और काशी में वेदान्त विषय पर व्याख्यान देते समय कुछ स्थानीय पण्डितों ने ऐसे कटाक्ष किये थे कि स्वामी जी, आप संस्कृत के पण्डित नहीं, फिर आप कैसे वेदान्त दर्शन का समुचित प्रचार कर सकते हैं। शायद स्वामी राम को यह बात लग गयी। हृदय के भीतर का कवि तिलमिला उठा, जन्मजात विद्यार्थी ने उत्तर देने के लिए कमर कस ली। उन्होंने निश्चय किया कि चाहे जो हो, राम कठिन परिश्रम करके वेद का हर एक मंत्र पढ़ेगा और समझेगा, और संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करके वेदान्त को प्राचीन परिपाटी के के अनुसार सिद्ध कर दिखा देगा। वही राम ने किया भी। व्यास

आश्रम के निवास के पश्चात् जो पण्डित उनसे मिले, उन्होंने उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन पाया। वे संस्कृत के पण्डित हो गये थे। उन्होंने प्राचीन प्रणाली के अनुसार वेदों के परम्परागत भाष्यों का अध्ययन किया, साथ ही पाश्चात्य जगत् की आलोचनात्मक एवं नूतन शोधात्मक पद्धतियों से उन पर नया प्रकाश भी डाला।

संस्कृत के अध्ययन से स्वामी राम के ज्ञान-भाण्डार की गरिमा बढ़ गयी। ऊपरी तौर से भले ही उसने पक्षियों जैसी सहज, स्वच्छन्द एवं आह्लादात्मक वृत्ति को कुछ ठंढा किया हो, किन्तु अब उनकी गहराई इतनी गंभीर हो गयी थी कि उसकी कुछ थाह नहीं लगायी जा सकती थी। उनके इस अध्ययन के प्रारम्भ में मैंने साहस बटोर कर उन्हें यह पत्र लिखा था—जिन पण्डितों ने आपकी आलोचना की है वे तो पीछे की ओर देखने वाले मुर्दा हैं, उनमें जीवन कहां? फिर क्यों आप उनकी विचारशून्य आलोचनाओं से ऐसे परेशान होते हैं और प्राचीन संस्कृत की व्याकरण के बासी और धूल-भरे वातावरण के चक्कर में फंसकर क्यों अपने स्वयं-सिद्ध आनन्द को किरकिरा करते हैं? इसका उन्होंने उत्तर दिया था—राम की क्रियाशक्ति आज भी वैसी ही अक्षय है, फिर क्यों न उसे संस्कृत के अध्ययन में लगाया जाय!

व्यास आश्रम के निवास के अनन्तर उनका अधिकांश समय संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति और व्याकरण के नियमों में ही बीतता था। वे वैदिक मंत्रों के सौंदर्य के उपभोग में ही तल्लीन रहते थे। कभी-कभी वेदों के उन उल्टे-सुल्टे ऊपरी अर्थों और भ्रमजन्य व्याख्याओं पर वे जी खोल कर हंसा करते थे, जो वेदों के अकाट्य और अतर्क्य होने की अंध-श्रद्धा के साथ उन दिनों भारतवर्ष के कुछ क्षेत्रों में फैलायी जा रही थीं। और जब वे यह देखते थे कि उसी श्रद्धा के बल पर वेदों में आधुनिक विज्ञान के सभी सिद्धान्तों को खोजने की व्यर्थ चेष्टा हो रही है, तब तो उनकी हँसी रोके नहीं

रुकती थी। उन्होंने कहा था—बेशक, हर एक व्यक्ति को हर एक चीज का अपने लिए अपने इच्छानुसार अर्थ लगाने का अधिकार है। जैसे राम हाफिज की हाला का अर्थ करता है भगवद्-प्रेम का उन्माद और इसी प्रकार उसे ग्रहण कर के राम हाफिज की शराब का अपने ढंग से खूब मजा भी लेता है। किंतु उसे हाफिज के उस शब्द को यह अर्थ देने का तो कोई अधिकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार वैदिक संस्कृत के प्राचीन परम्परागत अर्थों को लौटने-पौटने का किसी को क्या अधिकार! स्वामी राम वेदों के अध्ययन के लिए सायणाचार्य को एकमात्र पथ-प्रदर्शक मानते थे। वे पाश्चात्य विद्वानों की शैली के भी बड़े प्रशंसक थे और हिन्दू पण्डितों के प्रमादजन्य अज्ञान की निन्दा करते थे। उन्होंने वशिष्ठ आश्रम में मुझ से कहा था—राम की इच्छा एक पुस्तक लिखने की है, जिसमें वेद के सभी सुन्दर मंत्रों का प्राचीन प्रणाली के अनुसार भी अर्थ हो और उन पर राम की अपनी व्याख्या भी। "एक दिन राम पाषाण की शिला पर बैठा हुआ था, आकाश मेघाच्छन्न था और रिमझिम बूंदें पड़ रही थीं। बड़ा सुहावना समय था। राम स्नान करके उठा ही था कि उसे ऐसा लगा कि वह एक स्त्री है जो अपने पति—ईश्वर की बाट में बैठी है। इस दिव्यभाव के आवेश से राम का सारा हृदय हिल उठा, रक्त में सनसनी फैल गयी, और हर एक नस और नाड़ी वीणा के तार की भांति झंकृत हो उठी। सारी प्रकृति श्रृंगार-रस से ओत-प्रोत होने लगी। राम—स्त्री रूप राम—चुपचाप आशा लगाये बैठा था कि कब उसका पति, ईश्वर आकर उसे अपने दर्शनों से निहाल कर दे। राम का हृदय मन ही मन प्रार्थना करने लगा—"हे प्रभु, मेरे भगवन्! आओ, जल्दी आओ और मुझे सनाथ करो, मैं तुझे अपने गर्भ में धारण करना चाहती हूं, अब तो ये प्राण तेरे हाथ में हैं।" जागते ही संकल्प हुआ कि राम वेद पढ़ेगा और पुस्तक खोली कि पुस्तक खोलते ही जो भी मंत्र किसी भी पृष्ठ पर सामने दिखायी

देगा, उसी को पढ़ने लगेगा ! देखता क्या है कि पुस्तक खोलते ही वही मंत्र सामने है जिसमें ठीक राम के हृदय की तात्कालिक अवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है। अपने लिए वेदों के पढ़ने और उनकी व्याख्या करने का यही ढंग है और प्राचीन परम्परागत पद्धति के अनुसार उनकी व्याख्या करना विद्वानों का ढंग है। परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य का मस्तिष्क और उसके विचार उन्नत होते हैं त्यों-त्यों इन प्राचीन परम्परागत अर्थों में से एक से एक नूतन सैकड़ों-हजारों उन्नायक व्याख्यायें अपने आप निकलती रहती हैं और सदा निकलती रहेंगी, ठीक ऐसे जैसे हम अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं कि मूल बाइबिल जो पहले थी सो अब भी है किन्तु समयानुकूल विचारों के अनुसार उसकी सैकड़ों व्याख्यायें बराबर होती चली जाती हैं। ऐसी व्याख्या वेदों की भी हो सकती हैं।

जीवन की इस बेला में स्वामी राम के हृदय में शंकराचार्य के उस दर्शन-शास्त्र ने जिसे मायावाद कहते हैं, पूरी तरह घर कर लिया था और उसका प्रत्यक्ष फल यह दिखायी देता था कि उनके हृदय का वह जीता जागता सवाक् आह्लाद परम शान्ति में परिणत हो रहा था। जो भोजन वे फारसी और अंग्रेजी साहित्य से खींचा करते थे, उसे छोड़ कर उन्होंने संस्कृत शब्दशास्त्र और व्याकरण को अपना भोज्य बना लिया था। संस्कृत शब्दशास्त्र और व्याकरण के अध्ययन के अनन्तर हुआ चाहे जो हो, एक बात प्रत्यक्ष थी कि वे इन दिनों सदा समाधिस्थ से रहते थे। सचमुच इस समय उनकी गहराई की थाह नहीं ली जा सकती थी। जो वहां तक नहीं पहुँचे, कुछ नहीं कह सकते। वैसे एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि शंकर के सिद्धान्त ने उनके मन और मस्तिष्क को और अधिक प्रौढ़ता और गंभीरता प्रदान की थी।

उन दिनों, व्यास आश्रम में, स्वामी जी लेख भी बहुत लिखा करते थे। उन्होंने एक डूप्लीकेटर (कई कापियां निकालने वाली

मशीन) भी मंगाया था, जो मैं अपने साथ ले गया था। इस काल के उनके लेखों में त्याग पर विशेष जोर दिया गया है। उसे उन्होंने 'अनन्त जीवन के नियम' के रूप में समझाया है। इन दिनों स्वामी नारायण को उन्होंने जो पत्र लिखे थे उनमें इस विषय की सुन्दर व्याख्या हुई है, जिसे उन्होंने अपने प्रवचनों में पहले जनता के सामने व्यक्त नहीं किया था।

बसून के आस-पास रहने वाले पहाड़ी आते और उन्हें दूध और फल दे जाते। मैंने उन लोगों से बातें की थीं। वे कहते थे—स्वामी जी आदमी नहीं, देवता हैं। वे उनकी दार्शनिक बातों का एक शब्द भी नहीं समझते थे किन्तु उन्होंने राम के लिए एक झोपड़ी बनाकर तैयार करदी थी और बराबर उनके लिए कुछ न कुछ भोजन लाया करते थे। राम से बातें करते उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती, उनके चेहरे खिल उठते। वे उनके सच्चे साथी, प्रेमी बन गये थे।

पर राम ने विदेशों में जैसे अपना स्वाभाविक प्रेमजन्य आह्लाद बिखेरा था, अब उसकी न्यूनता का अभाव मुझे खटकता था। मैंने साहस बटोर कर उनसे पूछा—स्वामी जी, आपमें इतना परिवर्तन कैसे हुआ, मुझे आप एकदम अपने में ही आत्म-मग्न मालूम होते हैं।

"पूरन जी! लोगों को केवल राम के फूलों से मतलब है। वे राम को तभी सूंघना चाहते हैं जब राम फूलों के रूप में खिलता है। किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं, कि राम को पृथ्वी के भीतर, अंधेरी गुफाओं में, अपनी जड़ों को पुष्ट करने में कितना घोर परिश्रम करना पड़ता है, जिसमें फूल और फल बराबर खिलते रहें। इस समय राम अपनी जड़ों में है। मौन एक महान कार्य है, संसार को अपने विचार प्रदान करने से, उसके सामने उपदेशों की फुलझड़ियाँ छुड़ाने से यह महत्तर कार्य है। गौड़पादाचार्य और गोविन्दाचार्य की मौन तपस्या का ही यह सुफल था कि शंकराचार्य को ऐसी

देदीप्यमान सफलतायें मिलीं। उनके मौन के बिना यह कैसे संभव होता ?"

हिन्दू जीवन का जो आदर्श है, वेदान्त-दर्शन के अनुसार जो आत्म-निष्ठ का स्वरूप है, वे उसके साक्षात् अवतार थे। कई दिन तक लगातार पद्मासन लगाये बैठे रहते, न शरीर का ध्यान और न शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों की परवाह ! कह उठते—कहता कौन है कि संसार है ! जो न कभी हुआ, न है और न कभी होगा ! जब हम लोग पास पहुँच जाते तो वे कहते—तुम लोग आ-आकर राम को यह भुलावा देना चाहते हो कि तुम भी सच्चे हो किन्तु राम उसे नहीं भूल सकता। जितने भी सम्बन्ध हैं वे प्रभु को, अपने अन्तर की सच्ची आत्मा के विस्मरण के बहाने बन जाते हैं। यह स्पष्ट था कि ज्यों-ज्यों उनका दार्शनिक अध्ययन गम्भीर होता जाता था त्यों-त्यों वे बाहर मौन होते जाते थे। वे क्षण-प्रतिक्षण मन को आत्मा में लीन रखना चाहते थे। उस समय उनके हृदय में प्रेम की प्रधानता थी। वे आत्मा को प्रेम के रूप में ही देखते-सुनते और प्रेम-रूप आत्मा में ही रहना-सहना और श्वांस लेना चाहते थे।

❀ ❀ ❀

एक दिन बात है, हम लोग देवदार वृक्षों की छाया में घूम रहे थे। राम मुझसे बोले—तुमने विवाह किया है। ठीक है। पर तुम्हारी पत्नी को आत्म-साक्षात्कार में तुम्हारा सहायक बनना चाहिए। आओ, दोनों दुनिया को छोड़ दो और यहां आकर इन पहाड़ियों की चोटी पर निवास करो। जैसे राम इस पहाड़ी पर रहता है, उसी तरह तुम लोग भी यहां से कुछ दूर दूसरी पहाड़ी पर रह सकते हो।

मुझे यह याद नहीं कि फिर कैसे हरद्वार में उनकी पत्नी और बच्चे के आने की बात चल पड़ी। वे मुझसे कहने लगे—ईश्वरार्पण

बुद्धि से मनुष्य में कितना परिवर्तन हो जाता है। ब्रह्मानन्द की माँ का चेहरा कैसा दिव्य था! उस दिन तो वह ज्योतिर्मयी मालूम होती थी, तुमने इस पर ध्यान दिया था क्या?

वैसे तो राम सबका है और सब राम के है, पर तुम्हें याद होगा, राम ने तुमसे हरद्वार में कहा था कि राम के घर वालों को वापस लौटा दो और तुम इतने क्रुद्ध हो गये थे। किन्तु उस समय राम ने उस भेष के नियमों को मानना ही ठीक समझा, जिसे उसने स्वेच्छा से धारण किया है। उन लोगों से मिलना अस्वीकार करना केवल नियम की बात थी। मनुष्य तब तक अपने व्यक्तिगत संबंधों को कैसे भूल सकता है जब तक उसके वक्षस्थल में हृदय की धड़कन विद्यमान है, फिर वह तड़प चाहे राम के लिए हो, चाहे मनुष्य के लिए। कवियों को पत्थरों के रूप में कैसे बदला जा सकता है? आध्यात्मिक विकास का यह अर्थ नहीं कि हम भावना-शून्य हो जायँ। कवि 'कीट्स' बेचारा केवल कटु शब्दों से मारा गया। उत्थान जितना ऊँचा होता है भावना भी उतनी ही प्रबल और सतेज हो जाती है।

राम कहते गये—पूरनजी! राम को यह मालूम न था कि अब इस देश में यह भगवा वस्त्र स्वतंत्रता का बाना नहीं रह गया है। विषय-वासना के गुलामों ने यह भेष लेना प्रारम्भ कर दिया है और उन्होंने इसे नियमों से इतना अधिक जकड़ दिया है, उसे ऐसा दिखाऊ बना दिया है कि अब राम को उससे बेचैनी मालूम होने लगी है। अब की बार जब राम नीचे मैदानों में जायगा तो जनता के सामने भरी सभा में इस वेष के टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। राम घोषणा करेगा कि अब संन्यासी के रक्तवर्ण वेष द्वारा स्वतंत्रता की साधना नहीं की जा सकती, क्योंकि वह परतंत्रता, रुढ़िता का द्योतक बन गया है।

और वशिष्ठ आश्रम में जब उन्होंने यह रंग उतार दिया तो उसमें आश्चर्य की कोई बात न रह गयी। वे भूरे पट्टू का अँगरखा

और काले धूमिल वर्ण का रंगीन साफा बांधे थे। संन्यासी का लम्बा चौड़ा झांगा उतार कर उन्होंने कुरता और पायजामा पहनना प्रारम्भ कर दिया था।

"देखो अब तो राम भारी इमामा (मुस्लिम साफा) बांधे हुए मौलवी जैसा मालूम होता है न ?" वे मुझसे पूछने लगे।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

अन्तिम दिन : वशिष्ठ आश्रम में

(उत्तरखण्ड, हिमालय)

वे अब बहुत बदल गये थे, उनका आह्लाद कम हो रहा था! क्षण-क्षण पर फूट पड़ने वाला प्रफुल्लता का प्रवाह नीचे गहराई में बैठ गया था। चलते समय वे जब कभी फिसलते या गिर पड़ते तो झट उनके मुंह से निकलता—ओ, देखा, राम ने अपने प्रियतम को भुला दिया है, तभी तो गिरा है, नहीं तो गिरना कैसा! पहले हम भीतर गिरते हैं और फिर बाहर। बाह्य पतन तो केवल परिणाम है। तुम सदैव भीतर का ध्यान रखो। श्वांस-श्वांस पर प्रियतम की याद करो। उसके बिना एक भी क्षण व्यतीत न हो। संध्या समय वे अपने आप गाने लगते, ताली बजाते और नाचते। वे एक पक्के वैष्णव जैसे लगते थे। उन्हें देखकर हमें कुछ-कुछ चैतन्य महाप्रभु के हरिकीर्तन का स्मरण हो आता था। उनका हृदय प्रेमरस से सराबोर हो रहा था। इन्हीं दिनों उन्होंने स्वर्गीय जज लाला बैजनाथजी की प्रार्थना विषयक हिन्दी पुस्तक के लिए 'उपासना' शीर्षक से भूमिका लिखी थी। यह छोटा सा लेख स्वामी जी की तत्कालीन मानसिक दशा का यथार्थ चित्रण करता है, जब कि वे वशिष्ठ आश्रम में निवास करते थे।*

---

*इस लेख के अन्तिम भाग में स्वामी जी लिखते हैं—

शिवोऽहम् भाव (अद्वैत-दृष्टि) बिना सम्यक् शुद्धि नहीं होगी।

..........किसी के टके देने नहीं, किसी से कौड़ी लेनी नहीं, लाग-

एक दिन नहाते समय उन्होंने कहा—यदि वेदान्त का पूर्ण साक्षात् कर लिया जाय तो यह भौतिक शरीर भी शाश्वत बनाया जा सकता है। मैं उनकी बात न समझ सका। (और है भी उसका समझना अत्यन्त कठिन। वस्तुतः अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से जड़ तो कुछ है नहीं, जो है वह सब चित् है और वही सच्चिदानन्द है।)

स्वामी राम बड़े पढ़ने वाले थे। मैं उनके लिए कुछ पुस्तकें ले गया था। वे अधिकांश में अपने झोपड़े में बैठे या लेटे रहते। मैं इन पुस्तकों की ओर ध्यान दिलाने की चेष्टा करता। कभी-कभी उनमें से एकाध उठाकर उनके हाथों पर रख देता किन्तु मैंने देखा कि अब

लपेट से क्या? कड़ुवा मानो, मीठा मानो, सच ही कहूंगा, पर्वत के शिखरों के शिखर से राम पुकार सुनाता है—संसार को सत्य मानकर उसमें कूदते हो, फूस की आग में पच-पच कर मरते हो, यह उग्र तपस्या क्यों? इससे कुछ भी सिद्धि नहीं होगी। देहाभिमान की कीचड़ में धंसते हो, गल जाओगे। ब्रह्म को बिसार कर दुःखों को बुलाते हो, शिर पर गोले बरसाते हो, जल जाओगे।......आप बीती कहूं कि जग बीती! जब कभी भूले से किसी सांसारिक वस्तु में इष्टता या अनिष्टता का भाव जमाता हूं, छुटाई-बड़ाई, हानि-लाभ में दिल टिकाता हूं, देह की आरोग्यता को बड़ी बात गरदानता हूं, किसी पुरुष को अपना या पराया मानता हूं, कोई चीज भावी या वर्तमान सत्य मानता हूं, तो अवश्यमेव तीन तापों में से कोई न कोई आ घेरता है और जब देहादि स्वप्न को परे मार भेद-भावना को उड़ाकर आत्म-दृष्टि खोलता हूं, तो संसार के तत्व ऐसे हो जाते हैं, जैसे किसी के अपने हाथ-पैर, जिस तरह चाहे हिला ले। प्रकृति की चाल राम की आंखों की कटाक्ष हो जाती है।

अभिप्राय यह कि स्वामी राम की उपासना और ज्ञान में कोई अन्तर न था। आत्मानन्द में डूबे रहना ही उनकी उपासना और वही उनका ज्ञान था।

उनसे कुछ भी नहीं पढ़ा जाता। थोड़ी ही देर में पुस्तक उनके हाथों से गिर पड़ती थी, आँखों से अपने-आप आँसू बहने लगते और कुछ प्यार भरे निरपेक्ष शब्द उनके मुँह से निकलते—राम से अब पढ़ना नहीं हो सकता। संभवतः आत्यन्तिक विरक्ति और गंभीर आत्म-निष्ठा के कारण उनका शैथिल्य बढ़ रहा था।

उनके शिष्य स्वामी नारायण का कहना था कि यह सब शैथिल्य सा उनके अपचन के कारण है। वे बहुत दिनों से अनुचित भोजन-पान कर रहे हैं। राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति होने के कारण वे कभी-कभी उनसे उलझ पड़ते थे और वादविवाद करने लगते थे कि स्वामी जी ठीक राह पर आ जावें।

वास्तव में उन दिनों स्वामी नारायण को राम की इस शांति से बड़ी बेचनी हो रही थी। एक दिन हम सबने निश्चय किया कि पावली कान्ता में होकर 'बुद्ध केदार' की हिम-शिलाओं को देखने चलेंगे। स्वामी जी भी तैयार हो गये। चलना आरम्भ हुआ। हम लोग बसून की चोटी पर चढ़ गये और हिमरेखा के ऊपर विस्तृत हरे-भरे मैदान में पहुँचते-पहुँचते हम लोगों को संध्या हो गयी। सामने एक गड़रिये की झोपड़ी थी। गड़रिये ने बड़ी अभद्रता दिखायी। वह हम लोगों को ठहराने के लिए किसी प्रकार तैयार न होता था। मैंने प्रार्थना की। स्वामी नारायण ने भी बहुत समझाया। पर सब व्यर्थ! तब जब स्वामी राम सीधे आगे बढ़े और उनके पीछे-पीछे हम सब हुए तो गड़रिया बड़ी प्रसन्नता से हमारा स्वागत करने लगा। हम लोग रात्रि भर गड़रिये के चटाइयों के तम्बू में बड़े आराम से रहे। प्रातः स्वामी राम बाहर निकले और मुझे हिमालय को हिमशिलाओं के श्रेष्ठ और सुन्दरतम दृश्य दिखलाने लगे जो बदरीनारायण से यमुनोत्री तक फैले हुए थे। प्रातःकालीन सूर्य के स्वर्णिम प्रकाश में उनकी शोभा देखते ही बनती थी। उसी समय मुझे मालूम हुआ कि वे और आगे जाने के लिए तैयार नहीं

हैं, क्योंकि उनका कहना था कि इस घूमने से—निरुद्देश्य घूमने से लाभ ! "यदि हम अपने प्रियतम को ही भूल जायं तो पहाड़ियों पर विचरण करने से क्या लाभ हो सकता है ? घर पर पड़े रहना सौ बार धन्य है यदि प्रियतम सदा हमारे साथ विद्यमान रहे !" मानो उनकी इस इच्छा की पूर्ति करने के लिए मैंने उन्हें अपनी घायल एड़ियाँ दिखायीं और आगे चलने में अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होंने नारायण स्वामी को बुलाया और कहा—पूरन जी आगे नहीं जा सकते, उन्हें इतनी दूर-दूर तक घूमने का अभ्यास नहीं, इसलिए हमें आश्रम में वापस लौट चलना चाहिए। स्वामी नारायण मेरी ओर अभिमुख होकर बोले—सचमुच आप जैसों के साथ में चलना बुद्धिमानी नहीं हुई, आप पैरों के इतने कच्चे हैं। स्वामी जी ! आप तो स्वयं नहीं चलना चाहते और पूरन जी का बहाना करते हैं। मुझे विश्वास है, यदि आप चलेंगे तो वे अस्वीकार नहीं करेंगे।

स्वामी नारायण की बात काफी कठोर थी किन्तु स्वामी राम ने केवल इतना कहा—नहीं, नारायण जी ! हम लोगों को लौट ही जाना चाहिए। सो हम सब लौट पड़े।

अनेक अवसरों पर स्वामी नारायण इसी प्रकार के कठोर वाद-विवादों में उलझ जाते थे। स्वामी राम उन्हें सदा यही याद दिलाते, कृपया वाद-विवाद बन्द कीजिये ! उन्होंने आज्ञा दे रखी थी कि हम लोग अपनी बातचीत के बीच में कभी किसी व्यक्ति विशेष की चर्चा न करें, चाहे हमारे हृदय में उसके विरुद्ध किसी प्रकार की कटु आलोचना का विचार ही क्यों न हो। पर हम सब बार-बार ऐसी गलतियां कर बैठते थे और राम रोकते रहते थे।

एक बार स्वामी नारायण बड़ी निर्दयता से किसी व्यक्ति की काट-छांट कर रहे थे, स्वामी राम ने उन्हें आश्रम के आदेशों की याद दिलायी। "नहीं, स्वामी जी, मैं उसकी आलोचना नहीं करता,

केवल उसकी मानसिक दशा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहा था।" इस पर बड़ी देर तक हंसी का फव्वारा छूटता रहा।

इन दिनों स्वामी राम को स्वयं अपनी आलोचना अच्छी न लगती थी और नारायण स्वामी कोई वाद-विवाद न खड़ा कर सकें, इसलिए उन्होंने पहले ही से उन्हें अलग रहने का आदेश दिया था।

यहां पर उन्हें एक दिन एक पत्र मिला। लिखा था—भारतीय पुलिस आपके पीछे पड़ी है, वह आप को एक बड़ा विद्रोही राष्ट्रीय नेता मानती है, जो भारत में ब्रिटिश शासन के तख्ते को उलट देना चाहता है। वे बोले—उनसे कह दो, राम अपनी रक्षा में एक शब्द भी नहीं कहना चाहता। वे इस शरीर के साथ चाहे जैसा व्यवहार कर सकते हैं। मैं जो कुछ हूँ, उससे अन्यथा नहीं हो सकता। एक भारतीय होने के नाते मैं सदा अपने देश की स्वतन्त्रता चाहता हूँ। स्वतन्त्र तो वह एक दिन होगा ही किन्तु यह राम देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा या दूसरे हजारों राम उसे प्राप्त करेंगे—कोई नहीं कह सकता!

जिस दिन मैं वशिष्ठ आश्रम से चलने वाला था, उस दिन उन्होंने कहा–राम को नहला दो। मैंने उनका कमण्डलु और तौलिया उठायी और निर्झर की ओर उनके पीछे-पीछे चल दिया। वे स्वयं कोई काम नहीं करना चाहते थे। मैंने उनके वस्त्र उतारकर उनका बदन उघाड़ा। वे जाकर निर्झर में खड़े हो गये। मैंने अपने हाथों उन्हें नहलाया। प्रातःकाल से ही आकाश मेघाच्छन्न था। जब हम लोग कुटिया पर वापस पहुँचे तो मेरे चलने का समय हो चुका था। "पूरन जी! चाहे जहां जाओ, रहो सदा इसी स्वर्णभूमि में—अपने अन्तर के प्रकाश में। और उस कार्य को आगे बढ़ाते रहना, जो राम ने प्रारम्भ किया है, क्योंकि राम अब मौन हो जायगा।"

"स्वामी जी, जब मैं आऊँगा, तो आपको गुदगुदाऊँगा और

आप हंसेंगे और बोलेंगे। मैं आपकी मौन-प्रतिज्ञा भंग कर दूंगा।" मैंने उत्तर में कहा।

उनके नेत्र लाल हो उठे। उन्होंने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा—मौनी को कौन फिर से बुलवा सकता है ? मैं डर के मारे आगे एक शब्द भी न बोल सका।

चलने का समय हुआ, वे कुछ दूर तक मुझे छोड़ने आये। नारायण स्वामी भी, जिनसे रामने कहा था, और एक दूसरे मित्र पहाड़ी के नीचे बहुत दूर तक मेरे साथ आये। वे जैसे बैठे थे, वैसे ही चल खड़े हुए—नंगे बदन, कमर में केवल गमछा बांधे जैसे कि वे निर्झर से नहाकर लौटे थे। बाहर मन्द-मन्द फुहार पड़ रही थी और मेरी आँखों से आसुओं की झड़ी लगी थी। ज्योंही मैंने अन्तिम नमस्कार के लिए सिर झुकाया त्योंही वे यकायक बड़ी तेजी से पीठ फेर पहाड़ी की ओर दौड़ने लगे। पीछे मुड़कर फिर देखा भी नहीं मानो मेरे साथ अपने सभी व्यक्तिगत सम्बन्धों को एक ही झटके में तोड़ दिया। वह तेजी उनकी अपनी थी, मैंने अन्यत्र कहीं वैसी देखी नहीं।

नारायण स्वामी ने मुझे बताया कि जब एक मास के बाद राम नीचे उतर कर टेहरी (गढ़वाल) आये और टेहरी-नरेश के अतिथि बनकर उनके सिमलसू वाले चन्द्र-भवन में रहने लगे तब उन्होंने नारायण को आज्ञा दी कि वे जायें और गंगा किनारे अपनी ही देख-रेख में अपने लिए एक झोपड़ी बनवायें। उस समय वे भवन से बहुत दूर तक स्वामी नारायण को छोड़ने आये और उन्हें ठीक वही संदेश दिया, जो एक मास पूर्व उन्होंने मुझे दिया था।

न स्वामी नारायण फिर उनके दर्शन कर सके और न मैं। ये दोनों विदाइयां उनकी समीपवर्तिनी मृत्यु की झलक थीं।

सिमलसू में निवास करते समय वे सामायिक पत्रों के लिए लेख लिखा करते थे। अन्तिम लेख जो उनकी लेखनी से निकला,

वह है 'खुदमस्ती या निजानन्द मनुष्यों और राष्ट्रों की तरक्की का तमस्सुक अर्थात् उन्नति का निश्चित विधान'। उसका अन्तिम संदर्भ कुछ स्याही, कुछ पेन्सिल दोनों से लिखा गया था। हिन्दुओं के पवित्र त्यौहार, दीपावली का दिन था। भिलिंग गंगा निचाई में बहती है, उसके ऊंचे उभरे हुए तट पर स्थित है यह सिमलसू भवन। सदा की भाँति वे नीचे आकर पहले व्यायाम करते और फिर गंगा में स्नान करते थे। पर एक दिन उसे तैर कर पार करने और एक ऊंची चट्टान से धारा में कूदने से उनके घुटने में चोट आ गयी थी। इसलिए उक्त नियति-निर्धारित दीपावली के कुछ दिन पूर्व से वे गंगाजल ऊपर मंगाकर स्नान किया करते थे। दीपावली के दिन उन्होंने पुनः गंगा जी में स्नान का संकल्प किया। अन्तिम संदर्भ पूरा हो चुका था। उसे एक किनारे रख दिया और नीचे उतरे। बस, फिर वे ऊपर नहीं आये। गंगा जी में छाती-छाती जल में खड़े हुए थे और जैसी उनकी टेव थी, उँगलियों से दोनों नथने बन्द करके उन्होंने जल के भीतर डुबकी लगायी। ऐसा मालूम होता है, वहां उनका पैर फिसल गया। दुर्बल और क्षीणशक्ति तो थे ही, क्योंकि महीनों से पेय पदार्थों के अतिरिक्त कोई ठोस भोजन करते ही न थे और साथ ही घुटने में भी पीड़ा थी, वे तैर न सके और न अपने आप को संभाल ही सके। इसके अतिरिक्त वे वहां पानी की सतह के नीचे भँवर में फंस गये। बड़ी देर बाद वे पानी के ऊपर दिखायी दिये—ऐसा मालूम हुआ, जैसे निकलने की चेष्टा कर रहे हों किन्तु वह शीघ्र ही समाप्त हो गयी। ज्योंही वे चेष्टा करके भँवर से निकलकर पानी के ऊपर आये त्योंही उनका शरीर गंगा की तेज धारा में ऐसे बहने लगा, जैसे निष्प्राण हो गया हो।

अन्तिम संदर्भ जो उनकी लेखनी से निकला, इस प्रकार है—

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गंगा, भारत।

ओ मौत ! बेशक उड़ा दें इस एक जिस्म (शरीर) को; मेरे

और शरीर ही मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ चांद की किरणें, चांदी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी–नालों के भेस में गीत गाता फिरूंगा, बहरे–मव्वाज (आनन्द के महासागर) के लिबास में लहराता फिरूंगा। मैं ही बादे–खुश–खराम (मनोहर वायु) और नसीमे–मस्ताना गाम (प्रातःकालीन समीर की मस्ती) हूँ। मेरी यह सूरते–सैलानी (मनमौजी मूर्ति) हर वक्त रवानी (हलचल) में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा; मुरझाते पौधों को ताजा किया; गुलों (फूलों) को हंसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाजों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आंसू पोंछा, किसी का घूंघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़। वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया!

मैंने उस समय सोचा था कि इस सन्दर्भ के द्वारा राम ने हमें अपनी ही मृत्यु की पूर्व सूचना दी है। किन्तु कुछ कहा नहीं जा सकता। वे इसी शैली के लेख लिखा करते थे। हां, यह ध्यान देने की बात है कि उन्हें मृत्यु की याद आयी, उन्होंने उसके बारे में सोचा और वह आ गयी! सम्भव है कि 'ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या' के विचारों ने ही, जो इधर कुछ दिनों से उन पर छाये रहते थे और जिन्हें हम लोग उनके मन और मस्तिष्क की उदासी और थकावट समझते थे, उनमें उस आत्यन्तिक वैराग्य का भाव पैदा किया हो, जिसे उस समय न मैं और न कोई दूसरा ही खोलकर सांगोपांग देख सकता था। उससे उन्हें लौटाने की बात तो बहुत दूर थी।*

---

*स्वामी राम का छोटा सा जीवन–तेतीस वर्ष का, अनेक अपूर्वताओं से भरा हुआ, अद्भुत! एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्म और गुरु-भक्ति द्वारा उच्च शिक्षा का संकल्प। विद्यार्थी-जीवन में ही कृष्ण प्रेम का अंकुर जमना और वट-वृक्ष के रूप में सारे हृदय पर छा जाना। इधर कृष्ण की झांकी मन में बसी, उधर

आत्मज्ञान की जिज्ञासा हृदय में जगी। एक ओर सप्रेम कुटुम्ब का भरण-पोषण और दूसरी ओर विषय भोगों के प्रति उत्तरोत्तर विरक्ति। अन्त में प्राणप्रिय गणित से उपराम होना और ब्रह्मज्ञान की धुन में डूब जाना। फिर क्या, नौकरी छोड़ना और परिवार और पुरजनों से मुंह मोड़ना। और गंगा के साहचर्य में हिमालय की गोद में अहर्निश आत्मचिन्तन में निमग्न रहना। हृदय में 'अहम् ब्रह्मास्मि' की शंख-ध्वनि और बाहर 'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म' की झांकियां। ऐसी आनन्द-मग्न दशा में विश्व-भ्रमण का संयोग और अमेरीकनों को ब्रह्मज्ञान का विलक्षण उपदेश। भारत लौटने पर भारतवासियों को देशभक्ति और देश-सेवा का आदेश। स्वयं दीर्घनिर्विकल्प समाधि के उपरान्त भारत की स्वतन्त्रता का संकल्प और फिर वही गंगा, वही हिमालय, वही आत्मचिन्तन—ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्या।

स्वामी राम के इस आत्म-चरित के अध्ययन में एक सावधानी आवश्यक है। उसके दो खण्ड हो सकते हैं—एक आत्मसाक्षात्कार से पूर्वकालीन और दूसरा उत्तर कालीन। कहते हैं कि आत्म साक्षात्कार होने के साथ जीवत्वभाव, कर्त्ता-भोक्तापन पूर्णतः नष्ट हो जाता है और शरीर और मन पूर्व संस्कारों, इच्छाओं, वासनाओं और विचारों के अनुसार चलता रहता है। अतः ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं के उत्तरकालीन क्रिया-कलापों को क्यों-कैसे, कार्य-कारण की सीमा में नहीं बांधना चाहिए। वह तो स्वयं प्रकृति, ईश्वर का अपना काम होता है।

सोलहवाँ परिच्छेद

स्वामी राम के पत्रों का संक्षिप्त संग्रह

स्वामी राम पत्र-व्यवहार में बड़े नियमित न थे। लिखते थे, पर बहुत ही कम। उनके पत्र-व्यवहार का क्षेत्र भी सीमित था। अपने परिचितों या मित्रों में से केवल उन घनिष्ठतम व्यक्तियों को ही, आध्यात्मिक संबंध के कारण जिनके प्रेम और सहानुभूति से वे आकर्षित हुए थे, केवल उन्हीं को वे यदा-कदा अपने संदेश भेज दिया करते थे। उन्हीं में से कुछ पत्र, जिनमें से अधिकांश मिसेज बैलमेन द्वारा प्राप्त हुए हैं, आगे सविस्तार उद्धृत किये जाते हैं।

पत्र साहित्यिक आत्मचरित्र के अंग माने जाते हैं और साधारणतः इसीलिए जीवन-चरित्रों में स्थान पाते हैं कि उनमें नायक की आत्मचरित्र विषयक सूचनाओं की कुछ न कुछ झलक अवश्य विद्यमान रहती है। किन्तु स्वामी राम के पत्रों में और चाहे जो हो, यही आत्म-चरित्र विषयक तत्व ऐसा है जिसका उनमें नाम-निशान भी नहीं। उनमें कोई ऐसी बात नहीं, जो कुछ गुप्त, कुछ प्रकट होती हुई पत्र की शोभा बढ़ाती है, जिनके द्वारा हमें लेखक के अनुराग और विराग, इच्छाओं और अनिच्छाओं, स्वभावों और भावनाओं का पता चलता है, हमें साग-भाजी से लेकर राजाओं तक के विषय में लेखक के विचार ज्ञात होते हैं। स्वामी राम ने जो कुछ हमें सिखाया, उसमें व्यक्तिगत प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। अतः यदि उनके पत्रों में भी इन व्यक्तिगत संपर्कों और संबन्धों का पूर्ण अभाव सा है तो उसमें आश्चर्य ही क्या !

स्वामी राम के हर एक पत्र में, उनके सब पत्रों में एक प्रधान

विशेषता है। वे किसी न किसी रूप में हमें उस संदेश की झलक दिखाते हैं, जिसे संसार को सुनाने के लिए उनका हृदय सदैव उद्वेलित रहता था। हर एक पत्र हमें डंके की चोट सुनाता है—"तुच्छ स्वार्थ, क्षुद्र अहम् की कैंचुली उतार फैंको और वेदान्त के धरातल पर निजात्मा, परमात्मा में निवास करो।" स्वयं राम का जीवन इस आदर्श का पूर्ण प्रयोगात्मक उदाहरण था। उनके प्रत्येक पत्र में हमें इसी आदर्श की झलक मिलती है। 'इमरसन' लिखता है—सच्ची शक्ति वाले मनुष्य सदैव एक ही विचार के प्राणी होते हैं। वे अपने जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एक ही दिशा में लगाते हैं। उसका यह कथन स्वामी राम के उदाहरण में अक्षरशः सत्य बैठता है। वे एक विचार के आदमी थे, उनके व्यक्तित्व में कुछ इधर का, कुछ उधर का जोड़-तोड़ न था। उनकी जीवन-शक्ति मात्र एक ही प्रबल धारा में बह रही थी। उसमें इधर-उधर, गुप्त-प्रकट और अन्य उपधाराओं का विक्षेप न था। हर एक बात जो उन्होंने कही, हर एक चीज जो उन्होंने लिखी, हर एक काम जो उन्होंने किया, उन सब में एक ही, केवल एक ही आत्म-ज्ञान का संदेश गूंज रहा है, जिसे प्रदान करने के हेतु संसार में उनका जन्म हुआ था।

इन पत्रों के विषय में, अन्त में एक बात यह भी कही जा सकती है कि उनमें अपना एक साहित्यिक आकर्षण भी है। राम का अध्ययन विशाल था, उनकी संस्कृति महान् थी—जितनी ही व्यापक, उतनी ही संवेदनशील। इसीलिए उनके पत्र-साहित्य में एक निराला स्वाद है। जो साहित्यिक सौंदर्य और सुषमा हमें उनके पत्रों में देखने को मिलती है, वह परिश्रम और अध्यवसाय द्वारा अर्जित नहीं, वरन् वह तो उनके श्रेष्ठ शोध और विचारपूर्ण व्यक्तित्व का सहज और स्वाभाविक उभार जैसा है। इस साहित्य-सुषमा के साथ-साथ इन पत्रों की शैली में एक ऐसा सीधा चुटीलापन है जो विचारों की गम्भीरता और पूर्णता के एक ही साथ फूट पड़ने से

उत्पन्न होता है। इन पत्रों में भावनाओं और विचारों का प्रवाह इतना तेज है, उदाहरणों और तर्कों का संग्रह इतना अधिक है कि लेख को काट-छांट कर प्रांजल बनाने का अवकाश कहां! और यह एक प्रकार से और भी सुन्दर हुआ क्योंकि इस प्रकार बाह्य चमक-दमक में जो कमी हुई है वह शैली की शक्ति और सजीवता के द्वारा और भी अत्यधिक रूप में पूरी हो जाती है।

निम्नलिखित पत्र मिसेज बैलमेन को लिखे गये थे।

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोरनिया
८ अक्टूबर १९०३.

परम कल्याणमयी भगवती,

राम आपके हर कार्य को पूर्णतः पसन्द करता है। राम स्वार्थी नहीं कि तुम्हारे अभिप्राय को गलत समझने की चेष्टा करे और न इस बात की कभी कोई संभावना हो सकती है कि राम उसे भूल जाय जो भारतवर्ष के प्रेम में, सत्य के और पीड़ित मानवता के प्रेम में राम रूप हो रही है। सूर्यानन्द 'सूर्य' का द्योतक है। "बुराई का प्रतिरोध मत करो" इसका यह मन्तव्य नहीं, कि तुम बिल्कुल अवस्तु, एकदम निष्क्रिय बन जाओ, कदापि नहीं, कदापि नहीं। यह वचन शरीर के कामों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, यह आदेश मन के लिए केवल मन के विषय में है। इसके द्वारा हमें मन को शान्त रखने की शिक्षा दी जाती है। मानसिक प्रतिरोध, विरोध और विद्रोह के द्वारा सदैव वैमनस्य, व्यग्रता और अशान्ति की उत्पत्ति होती है। इसलिए भीतर ही भीतर खीझने और चित्त को अस्थिर करने के बदले उस दिखावटी बुराई को प्रेम से जीतना चाहिए (प्रेम 'त्याग' और दानशील वृत्ति का दूसरा नाम है)। और इससे बढ़कर कोई दूसरी शक्ति नहीं!

'बुराई का प्रतिरोध न करो' और एक दाता जैसे उत्साह के साथ सभी घटनाओं का स्वागत करो। महान् आत्मायें कभी, कदापि अस्थिरचित्त नहीं होतीं। शान्ति को स्थिर करके हम सदैव ठोकर देने वाले पत्थरों को ऊपर चढ़ाने वाली सीढ़ियों में बदल सकते हैं। कभी नहीं, कदापि नहीं. कोई ऐसा अवसर आने दो कि लाचारी और दैन्य का भाव तुम्हारे चित्त में स्थान पाने लगे।

अभी-अभी राम को यह ध्यान आया कि भारतवर्ष पहुँचते ही तुम्हें सबसे पहले अपने सुभीते के अनुसार पूरन का पता लगाना चाहिए। वह कहीं पंजाब में होगा। वह 'थंडरिंग डॉन' का सम्पादक है। उसके लिए तुम्हें किसी परिचय-पत्र की आवश्यकता नहीं।

आशा है, बर्थ मिलते ही तुम राम को तुरन्त लिखोगी।

तुम्हारा ही शुद्ध वीर हृदय आत्मा
राम स्वामी

(यह पत्र मिसेज़ बैलमेन को उस समय लिखा गया था, जब उसे अपनी भारतवर्ष की चिरभिलषित यात्रा के बारे में बड़ा मानसिक संघर्ष करना पड़ा, क्योंकि लोग उसकी इस यात्रा का कड़ा विरोध कर रहे थे।)

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलोफोरनिया
अक्टूबर १०, १९०३

स्नेहमयी माता,

तुम्हारा प्रेम भरा पत्र, कागज और लिफाफे प्राप्त हुए। ज्योंही तुम उस प्रेम भरी धरती (भारत माता) पर पैर रखोगी, निस्सन्देह वहां तुम्हारा हार्दिक स्वागत होगा। राम ने पहले ही से

भारत को सूचना दे दी है। वहां पहुंचने की दशा में तुम्हारा नाम वहाँ पहले ही से पहुंचा रहेगा। जहाँ भी तुम यात्रा के बीच रुकोगी, वहाँ तुम्हारा स्वागत होगा। (अब प्रश्न के उत्तर के विषय में) जब हम भोग-विलास, हंसी-खुशी और ओछी बातों के गर्त में फंस जाते हैं तब प्रकृति के उस अदृश्य विधान के अनुसार हमें प्रतिघात रूप दुःख और यातना सहना पड़ती है, जो हमें नीचे गिराती है। अतः बुद्धिमान कभी अस्थिर-चित्त और उदास नहीं होता। वह तो सदैव उस एक सर्वश्रेष्ठ परमतत्व में निमग्न रहता है।

दुनिया की चीजों की ओर तो वह केवल एक निष्पक्ष व्यक्ति की भांति ध्यान देता है, जैसे वह एक निष्काम, उदासीन, आत्म-निष्ठ, उदार-हृदय राजकुमार हो।

अपने सभी क्रियाकलापों में इसी श्रेष्ठ भाव का अवलम्बन करो। अनिच्छित अनुभवों के समय स्वतन्त्र आत्मा सदैव निर्द्वन्द्व, अविचलित और प्रसन्नचित रहता है, अपना जन्मजात गौरव एक क्षण के लिए भी उसके चित्त से नहीं उतरता। वह निरन्तर स्पष्ट सोचता रहता है कि मैं तो एक अद्वितीय ब्रह्म हूँ, सूर्यों का सूर्य। तुम भी निरन्तर अपने वास्तविक 'सूर्य-रूप-प्रकाश' पर ध्यान केन्द्रित करो और उसे जीवन के हर एक व्यवहार में उतारो और लो, तुम अपने जीवभाव को शीघ्र ही प्रेम, प्रकाश और जीवन के सर्वोच्च अवतार में परिणत कर दोगी। जहाज पर प्रस्थान करने से पहले तुम राम को लिखना और जापान और हांगकांग पहुंचने पर भी राम को पत्र देना। भारतवर्ष में तुम्हारी सहायता करने से राम को सदा बड़ी प्रसन्नता होगी।

तुम्हारी ही श्रेष्ठ प्रेममयी आत्मा

राम

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोरनिया
अक्टूबर १६, १९०३.

कल्याणमयी सर्वश्रेष्ठ सूर्यानन्द,

आज मध्याह्न तुम्हारे दोनों पत्र एक साथ राम के हाथ आये। सभी कुछ सुन्दर और सन्तोषजनक है। अब जब तुम लम्बी यात्रा पर जा रही हो, जब तुम्हें मानव-प्रकृति का जरा बारीकी से अध्ययन करना चाहिए। उससे बड़ा लाभ होगा। किन्तु यह सदा ध्यान रहे कि हर समय सदा शान्त, स्थिर और आत्म-निष्ठ रहना तुम्हारा सर्वप्रथम कर्तव्य है। ऊपर से जो बातें तुम्हें बाधा और विलम्ब डालने वाली प्रतीत होती हैं वे वास्तव में तुम्हारी आन्तरिक शक्ति और पवित्रता को बढ़ाने वाली हैं। प्रकृति-विज्ञान विशारदों ने यह भले प्रकार सिद्ध कर दिया है कि यदि मार्ग में संघर्ष और विरोध न होता तो विकास अथवा उन्नति का कहीं नामोनिशान ही प्रकट न हो सकता।

क्या तुम्हें रोबर्ट ब्रूस और मक्खी का किस्सा याद नहीं? "क्या प्रत्येक महान् आविष्कार के पूर्व हमें सैकड़ों, नहीं, सहस्त्रों असफल क्रियाओं में होकर नहीं गुजरना पड़ता है? प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में ॐ मंत्र को लगभग आध घंटे तक शान्ति से मन ही मन दुहराने से तुम्हें बड़ा लाभ हो सकता है। इस मंत्र का जाप करते समय इसकी सच्चाई, इसका यथार्थ अर्थ निरन्तर अपने हृदय में पैठाती रहो। इस प्रकार लगातार आत्म निर्देश करते रहने से तुम पूर्ण संन्यासिन् (स्वामी) बन जाओगी। हाँ, कृपया यह शीघ्र ही लिखना कि तुम्हारी यात्रा के लिए क्या-क्या प्रबन्ध हो चुका है। हार्दिक प्रेम और सची सहानुभूति के साथ—

तुम्हारी ही आत्मा
राम स्वामी

———

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स, केलीफोरनिया
अक्टूबर २१, १९०३.

कल्याणमयी भगवती सूर्यानन्द,

कल का पत्र अभी-अभी मिला।

ओ, कैसा हर्षदायक समाचार ! भारतवर्ष के लिए प्रस्थान! ! हांगकांग में यदि तुम वासिवामल असूमल जी (घंटाघर के पास) से मिलो तो वहाँ के हिन्दू व्यापारियों को राम (तीर्थ) स्वामी की इस आनन्दमयी स्थिति का समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी। उनसे अपने इस उत्तम और उदार प्रयोजन की भी चर्चा करना !

राम ने बहुत से लोगों को पहले ही पत्र लिख छोड़े हैं। वे तुम्हें स्थानीय विषयों में हर प्रकार की सूचना प्रेम से देते रहेंगे। तुम्हें तो कार्य का आरम्भ भर कर देना है और बाद में हर एक बात अपने आप बनती जायगी। केवल एक बात याद रखो। जब तुम किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति से मिलो तो कभी नहीं, कदापि नहीं, भूलकर भी नहीं, भिन्न-भिन्न दलों की पारस्परिक आलोचना प्रत्यालोचना पर रंच-मात्र ध्यान देना, स्वप्न में भी उसका स्मरण न करना। हाँ, जहाँ कहीं तुम्हें भक्ति, उदारता, प्रेम अथवा आध्यामिक ज्ञान की कोई बात मिले तो उसे तुरन्त ग्रहण कर लेना, अपना बना लेना। दूसरों के राग-द्वेष से तुम्हें कभी कोई सरोकार न होना चाहिए। उनकी कमजोरियों और त्रुटियों पर कभी भूलकर भी दृष्टि न डालना।

कलकत्ते में सेठ सीताराम से मिलना न भूलना। कलकत्ते में रहते समय तुम 'ज्ञान' के विद्वान् सम्पादक से भी भेंट कर सकती हो। वे एक सीधे-सादे, शुद्ध, भक्त और पक्के वेदान्ती हैं। वे एक विद्यालय और छात्रालय का सफल संचालन कर रहे हैं। कलकत्ते

में तुम संकीर्तन का आनन्द उठा सकती हो। भक्ति के आवेश में लोग कैसे आत्म-विभोर होकर नाचने लगते हैं।

भारतमाता सदैव ठीक उसी भाँति तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार है, जैसे कोई माता वर्षों से बिछड़े हुए अपने बच्चे के लौटने पर उसे गले लगाती है। सम्प्रति विदा! राम तुम्हारे साथ है!

भारत के पथ पर

लौट रहे हैं हम अब भारत को!
और प्रतीक्षा हो न सकेगी अब
हम भी जलयान पर चढ़ें, ओ आत्मा मेरी—
तेरे हित हम भी पथहीन सिन्धु की लहरों पर उतरें
निर्भय अज्ञात तटों हित बढ़ते
महानन्द की लहरों पर हो सवार
तिरता जलयान मन्द-मन्द पवन से मिलकर।

गाते हम महानन्द के गायन—परमात्मा के गायन
गाते हम अति प्रसन्न सुखदायी 'ओम्' नाम के गायन
लौट रहे हैं अब भारत को
सागर-यात्रा करते या पर्वत पर चढ़ते
निशि में आते-जाते
दिशाकाल और मृत्यु के विचार शान्त परम
जल प्रवाह जैसे बहते आते—
मुझको अज्ञात लोक में कभी बहा देते
मैं जिसकी वायु साँस में भरता।

सिक्त करो मुझको निज से, ओ ईश्वर!
चलकर पहुँच सकें

मैं, औ मेरी आत्मा तेरी सीमा भीतर।
लौट रहे हैं हम निज भारत को।
आगे बढ़ती जाओ आत्मा, जब निश्चित तिथि पर पहुँचो।
पार सिन्धु कर सारे, अन्तरीप पार अन्त हो जब इस यात्रा का,
ईश्वर हो जब समक्ष प्रकट, करो आत्म-समर्पण तब तुम—
लक्ष्य प्राप्त होने पर झुक जाओ!
भर कर प्रिय-बन्धु-भाव से लिए अनन्त प्रेम।
अग्रज भ्राता है वह स्नेहपूर्ण,
उसकी बाँहो में जा लघु भ्राता आंसू में बह जाता।

लौट रहे हैं हम अब भारत को!
इस महान यात्रा हित ओ आत्मा!
सचमुच क्या है तेरी पाँखों में समुचित बल?
क्या सचतुम निकल पड़े हो ऐसी यात्रा पर?
क्या गुंजित करते तुम संस्कृत वेदों के स्वर?
तो फिर तुम निस्संशय उड़ जाओ।
ओ पहेलियो, भीषण पराचीन—
तुम अपने तट की दो राह बता,
ओ उलझे प्रश्नो, यह जलयान बढ़े तेरे भीतर से।
लौट रहे हैं हम अब भारत को!
ओ पृथ्वी और गगन के रहस्य,
लौट रहे हैं तेरे पास अरे सागर-जल,
वक्र खाड़ियो, ओ माता गंगे,
ओ जंगल, मैदानों, उन्नत हिमवान् अरे!
अरुण प्रात, बादल, वर्षा, हिम ओ
ओ निशि-दिन पास तुम्हारे हम हैं लौट रहे!
सूर्य, चन्द्र, तारको, बृहस्पति, ग्रह
पास तुम्हारे मैं हूं लौट रहा!

आ रहा, तुरन्त आ रहा हूं मैं।
नस-नस में उबल रहा उष्ण रक्त।
अब तुरन्त लंगर उठ जाये मेरी आत्मन्!
काटो लम्बी रस्सी, खींचो, झकझोरो इन पालों को।
कब से हम जड़ वृक्षों जैसे हैं यहां खड़े
खेते जाओ, अथाह सिन्धु बीच बढ़ते जाओ।
क्योंकि हमें जाना है वहां जहां—
कोई नाविक न आज तक पहुँचा!
खतरे में डालेंगे हम निज को, नौका को, सब कुछ
अरे बहादुर तू आत्मा मेरी!
ओ पिता, हमें खेकर पार करो।
ओ साहसपूर्ण महानन्द, पर सुरक्षित तू
ओ पिता! हमें खेकर पहुंचा दो—
अपने असली घर तक पहुंचा दो!

ॐ

शिकगो इलीनोइज
फरवरी १५, १९०४.

कल्याणमयी आत्मन्,

तुम्हारे बहुत से पत्र, तार—सब के सब राम को यथासमय मिले। जब केवल एक सत्, एक तत्व है तब कौन किसको धन्यवाद दे। राम आनन्द से भरा हुआ है, राम स्वयं आनन्दरूप है। हर समय, दिन-रात राम परम शान्तिमय रहता है। राम कोई काम नहीं करता। तुम तो सुगन्धित गुलाब बन जाओ और मधुर पराग अपने आप तुम्हारे चारों ओर बिखरने लगेगा।

क्या तुम सम्पूर्ण हृदय से अपने को हिन्दू मानती हो ? क्या उनकी भूलें, उनके अन्धविश्वास तुम्हें बिल्कुल अपने मालूम होते हैं? क्या तुम भाई-बहनों की भाँति उनका विश्वास कर सकती हो ? क्या कभी तुम्हारे चित्त से अपने आप अमरीकन जन्म की कथा उतर जाती है ? क्या तुम कभी अपने आप को एक नवजात हिन्दू के रूप में अनुभव करती हो। राम कभी-कभी अपने आप में एक गंभीर वृत्ति-संपन्न कट्टर ईसाई के दर्शन करने लगता है। यदि इस स्थिति में पहुंच गयी हो तो सचमुच अपने आप तुम अद्भुत कार्यों के स्रोत बन जाओगी।

तुम हो कौन ? तुम्हें गिरे हुओं को उठाने का क्या अधिकार? क्या स्वयं तुम्हारा उद्धार हुआ है ?

क्या तुम्हें वह वचन याद नहीं कि 'जो अपने जीवन को बचाने की चेष्टा करेगा, अवश्य मारा जायगा।' अच्छा, तो तुम क्या गिरे हुओं में से हो ? तब तो उठो और मुक्तिदाता बनो। पापी हो, तो उसके साथ भी अपनी एकता का अनुभव करो और तुम उसके रक्षक बन जाओगे। इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं, प्रेम के सिवा और कोई गति नहीं, वही सब पर विजय प्राप्त करा देता है।

तुम्हारी ही आत्मन्,
स्वामी राम

ॐ

मिनीपोलिस एम. एन. यू. एम. ए.
अप्रेल ३, १९०४.

कल्याणमयी आत्मन्

तुम कहां हो ? नव वर्ष के स्वागत-पत्र के सिवा जो मथुरा से लिखा गया—कोई पत्र फिर कल्याणमयी माता से प्राप्त नहीं हुआ। शान्ति, शान्ति सदा भीतर ही से मिलती है। स्वर्ग का

साम्राज्य केवल हमारे अन्तस्तल में है। पुस्तकों में, मन्दिरों में, पीर-पैगम्बरों और महात्माओं में आनन्द की खोज करना व्यर्थ, बिल्कुल व्यर्थ है। अब तुम्हें भी इस बात का अनुभव हो गया होगा। यदि यह पाठ एक बार सीख लिया जाय तो चाहे जिस मूल्य पर भी, यह कभी महंगा नहीं पड़ता। एकान्त में बैठो और अपनी हार्दिक वेदना को दिव्य आनन्द में बदल डालो। तुम्हें 'थंडरिंग डॉन' वेदान्त का मासिक पत्र जैसी पुस्तकों से भी स्फूर्तिदायक सूचनायें मिल सकती हैं। ॐ पर ध्यान जमाओ और मनुष्यमात्र को शान्ति बाँटने की तैयारी करो। कभी किसी बात के इच्छुक, भिखारी मत बनो। प्रिय आत्मन्, क्या तुम्हें वह अन्तिम उपदेश याद है जो राम ने तुम्हें शास्ता स्प्रिंग्स की समीपवर्ती पहाड़ी पर दिया था। उसमें चाहने, माँगने का लेश भी न था। वह तो प्रकाश और प्रेम के शाश्वत दाता का दृष्टिकोण था। ज्योंही हम किसी चाह में, किसी की खोज में फंस जाते हैं, त्योंही हमारा हृदय फटने लगता है। हाँ, भारतवर्ष की इस समय कैसी दारुण अवस्था है, इसका तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ होगा। राम ने अपनी 'अमरीकनों से अपील' में जो चित्र खींचा है, ठीक वैसा ही तुमने पाया न? यदि चाहो तो एक बार पुनः उसे पढ़ जाओ। कृपया अपने प्रेम के परिश्रम से किसी तात्कालिक, प्रकट परिणाम की आशा मत करो। ईसा की आत्मा ने कहा है—केवल सेवा से ही सन्तुष्ट रहो। सेवा के अधिकार से बढ़कर हमें किसी उपहार, पुरस्कार और वरदान की आशा न करना चाहिए। यदि तुम अभी तक 'एडवोकेट' (सामयिक पत्र) के सम्पादक बाबू गंगा प्रसाद वर्मा से नहीं मिलीं, तो लखनऊ में उनसे अवश्य मिलो। हाँ, यह बताओ कि तुम्हारे हृदय को दीन-हीन भारतवासियों के दुख में हिस्सा बटाने में अधिक आनन्द मिलता है या अमरीका के आमोद-प्रमोदों का उपभोग करने में?

* * *

राम एक मास ओरेगन और पोर्टलेण्ड में रहा, एक मास डेनवर में, दो सप्ताह शिकागो में और एक पक्ष मेनीपोलिस में। इन सभी स्थानों में वेदान्त सभाओं का संगठन किया गया। विभिन्न विश्वविद्यालयों में कुछ धनहीन भारतीय विद्यार्थियों के निःशुल्क अध्ययन का भी प्रबन्ध हुआ है। यहां से राम बुफैलो एन-चाई जाता है। वहां से बोस्टन, न्यूयार्क, फ्लेडेलफिया, वाशिंगटन डी० सी० जायगा। जून २९, ३० और ३१ को राम सेंट लुई में विश्व-एकता-परिषद के अधिवेशनों में भाग लेगा। जुलाई में राम लेक जेनेवा में पहुँच जायगा। इसके पश्चात् राम लण्डन, इंग्लेण्ड में उत-रेगा। ऐ प्यारी माता ! तुम अपना साहस न छोड़ना। प्रत्येक वस्तु के केवल उज्जवल पहलू पर अपनी दृष्टि रखो। ऐसा कोई गुलाब नहीं, जिसमें कांटा न हो। विशुद्ध भलाई कहीं इस संसार में मिल नहीं सकती। पूर्ण कल्याण रूप केवल परमात्मा है। यदि भारतवर्ष वेदान्त का, सत्य व्यवहार करता होता, फिर उसकी ओर से अमरीका को अपील करने की क्या आवश्यकता रह जाती ? जब तुम्हारा हृदय उस सर्वव्यापक सौन्दर्य से पूर्णतः रँझ जाय, तो तुम्हें सर्वत्र हर एक वस्तु देदीप्यमान दिखायी देगी।

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!
हार्दिक कल्याण ! अन्तरंग आनन्द !!
सर्वत्र और सदैव तुम्हारी ही आत्मा
स्वामी राम

ॐ

विलियम्स वे अथवा लेक जेनेवा,
जुलाई ८, १९०४,

परम कल्याणमयी दिव्य आत्मन्,

तुम्हारे पत्र प्राप्त हुए। धन्यवाद। राम तुम्हारी स्थिति को पूर्णतया समझता है। शान्ति, आल्हाद और साफल्य सदैव तुम्हारा

साहचर्य करेंगे। शुद्ध आत्मा को, जिसने सम्पत्ति का भाव और इच्छा की लालसा हृदय से दूर कर दी है, ऐसी शुद्ध आत्मा को भय, संकट अथवा कठिनाई की आशंका कैसे हो सकती है? राम पैर फैलाकर ब्रह्मांड में विश्राम करता है—स्वतन्त्र, पूर्ण स्वतन्त्र! हमारे वक्षस्थल में "मैं" का घुन लगा हुआ है। उसे परे फेंक दो और सारा संसार तुम्हारे सामने नत-मस्तक होगा। मिनीपोलिस से लौटने पर एक लम्बा टाइप किया हुआ पत्र "प्रेक्टीकल विजडम" में प्रकाशित करने के लिए तुम्हारे नाम भेजा गया था। विषय भी उसका था—व्यावहारिक ज्ञान। विश्व-एकता-परिषद का प्रथम अधिवेशन राम की अध्यक्षता में हुआ था। विश्व एकता परिषद के व्याख्यानों के अतिरिक्त इधर राम ने सेन्टलुई में थियोसोफीकल सुसायटी एवं व्यवहारात्मक ईसाई संघ के तत्वावधान में भी अनेक भाषण दिये। कुछ दिनों में राम शिकागो पहुँचेगा और फिर वहां से बुफैलो लिलीडेल, गिनीकर मेनी आदि। सितम्बर में राम अमरीका से कूच करेगा।

शान्ति, कल्याण और प्रेम सब को—

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी राम

ॐ

जेफ सनविली, फ्लोरिडा
अक्टूबर १, १९०४

परमकल्याणमयी देवी,

राम ने कुछ दिनों से तुम्हें कोई पत्र नहीं लिखा। कारण—

(१) राम इधर इतना अधिक कार्य-व्यस्त रहा।

(२) सामयिक पत्रों के सिवा भारतवर्ष में कोई व्यक्तिगत पत्र डाला ही नहीं।

(३) यह सोच कर कि तुम भले लोगों के साथ हो, उसने अपनी ओर से किसी पत्र की आवश्यकता ही नहीं समझी।
(४) मिनीपोलिस छोड़ने के अनन्तर राम को तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला।

शान्ति, कल्याण, प्रेम और आनन्द सदैव तुम्हारा साहचर्य करेंगे।

अपनी ही अन्तरात्मा की भीतरी ध्वनि का पालन करने से तुम संसार में किसी के भी प्रति दोषी नहीं हो सकतीं। हम किसी के ऋणी नहीं। हम परिश्रम करें, क्योंकि परिश्रम से हमें प्रेम है। सदैव स्वस्थ और दाता बनना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना अनुभव करे, हमें तो केवल सेवा करने का अधिकार है। हमें अपने साथियों को सहायता करके आगे बढ़ाना है। किन्तु यह प्रगति वस्तुतः उन्नति-शील होना चाहिए, न कि दिखावटी और मन समझाने वाली! जब मैं स्वेच्छा के वशीभूत होकर अपने मित्रों की आध्यात्मिक उन्नति में सहायता देने की चेष्टा करता हूँ, तो मैं भी उनके साथ नीचे गिरता हूँ। चाहे जो करो, चाहे जहाँ रहो, राम का आशीर्वाद और प्रेम तुम्हारे साथ है। परसों राम न्यूयार्क के लिए चलेगा और कदाचित ८ अक्टूबर को ही प्रिंसेज इटीन में जिबरालटर के लिए सवार हो जाय। फिर भी भारतवर्ष पहुंचने में अभी कुछ समय लग सकता है, क्योंकि मार्ग में कई स्थानों पर रुकने की सम्भावना है।

लक्ष्य जिसे याद रखना और व्यवहार में लाना है—

यदि मित्र की कोई अनुचित बात ज्ञात हो, तो उसे भूल जाओ और यदि उसके बारे में कोई अच्छी बात ज्ञात हो तो उसे सुना दो अवश्य। उसका मुखमण्डल तुरन्त दीप्त हो उठेगा, और वह सत्पथ ग्रहण करने योग्य बनेगा।

जैसे सूर्य है, पूर्ण निर्भय चिरन्तन दाता, प्रत्युपकार की आशा

से रहित, सेवक, हार्दिक प्रेम से प्रकाश और जीवन देने वाला, वैसे ही प्रभु के प्रताप की प्रभा से खिल उठो। अपना कहीं कुछ भी नहीं, अहंकार भी अपना नहीं, सर्वथा स्वार्थशून्य। बस, यही मोक्ष है, और यही है जीवन का परम उद्धार।

मैं स्वर्गीय षट्रस खाता हूं,
और दान करता हूं स्वर्गीय सुरा।
ईश्वर ही मेरे भीतर और ईश्वर ही मेरे बाहर—
ईश्वर सदा-सर्वदा मेरा अपना है।

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी राम

निम्नलिखित पत्र स्वामी राम ने भारतवर्ष में लौटने पर पुष्कर से मिसेज बैलमेन को लिखे थे—

ओ३म्! ओ३म्!!

पुष्कर
फरवरी १४, १९०५

परम कल्याणमयी माता भगवती,

बम्बई विश्वविद्यालय के एक ग्रेजुएट ने, एक सुन्दर नवयुवक ने आज राम के काम के लिए अपना जीवन अर्पण किया है। वह साहित्यिक कार्यों में सहायता देने के लिए राम के साथ रहेगा। परम पिता भगवान सचमुच कितना दयालु है। वह पिता, वह शक्ति उसे कभी धोखा नहीं देती, जो पूर्णतः उस पर अवलम्बित होकर काम करते हैं।

नारायण स्वामी शीघ्र ही विदेशों में व्याख्यान देने के लिए भेजे जायंगे।

छिपे हुए और नगण्य कोनों में काम करना उतना ही गौरव-शाली है जितना भव्य और सुन्दर केन्द्रों में। रहट के चक्र में एक छोटी सी दांत जैसी लकड़ी की कील, जिसे कुत्ता कहते हैं, उतनी ही

महत्वपूर्ण है जितनी कि उस विशाल यंत्र को चलाने वाले बैल। कुत्ता के हटा लेने पर वह सारा का सारा विशाल यंत्र ठप हो जायगा। नहीं, वही क्यों, धुरी में लगने वाली प्रत्येक तीली उस यंत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। देखने में ऐसी छोटी-छोटी चीजों का महत्व बच्चे भले ही न समझें, तो उससे क्या ? ईश्वर की आँखों में तो छोटे से छोटे काम का भी मूल्य, यदि उसे प्रेम की प्रेरणा से किया जाता है तो उतना ही प्रभावपूर्ण होता है। छोटी सी ओस की बूंद भला सूर्य के सामने क्या चीज है ? किन्तु बारीकी से देखने वाली आंख देख सकती है कि इस छोटी सी बूंद में भी, उसके नन्हें से मीठे वक्षस्थल में पूरा का पूरा सूर्य मण्डल अपनी प्रभा डालता है। सो, मेरी कल्याणमयी माता, नगण्य और अलक्षित क्षेत्रों में मधुर और शान्त कार्य भी, नाम और यश से सर्वथा हीन, ठीक उतना ही महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ है जितना कि वह जोर-शोर से चलने वाला कोलाहल-पूर्ण कार्य, जो मनुष्यमात्र का ध्यान आकर्षित कर लेता है। "वे भी सेवा करते हैं, जो केवल खड़े रहते और बाट देखते हैं।" माता बच्चे की सेवा में पसीना बहाती है। एक समय आता है, जब वही बच्चा विश्वविद्यालय में पहुंचता है और बड़े-बड़े प्रोफेसर उस किशोर को व्याख्यान देते हैं। निस्संदेह माता का आसन मंच जैसा उच्च और उतना यशोमण्डित नहीं होता, जितना कि प्रोफेसर का। फिर भी माता का कार्य प्रोफेसर के कार्य से सैकड़ों गुना मधुर और गंभीर होता है। क्या हम बचपन में ही माता की गोद और लोरियों को छोड़कर प्रोफेसर के कमरे में उसका व्याख्यान सुनने के लिए जा सकते हैं ?

वेदान्त का कहना है कि एक साधारण से साधारण कुली को भी अपना छोटा सा काम उतना ही गौरवान्वित और पवित्र मानना चाहिए जितना ईसा मसीह अथवा कृष्ण का माना जाता है। जब हम कुर्सी का एक पाया हिला देते हैं तब क्या पूरी कुर्सी नहीं हिल

उठती ? सो जब हम एक आत्मा को उठाते या उन्नत करते हैं तो उसके द्वारा सारा संसार उठने और उन्नत होने को बाध्य होता है। मनुष्य—मनुष्य जाति ऐसी ही ठोस और घनीभूत है।

"अपने आप में ही घिरे हुए, भगवान के दूसरे काम किस दशा में चल रहे हैं उस ओर से निश्चिन्त रहते हुए, अपनी सारी शक्तियाँ अपने ही काम में जुटाते हुए जो चलते हैं उन्हीं का जीवन महान् होता है।"

ओ वायु के गर्भ में रहने वाली ध्वनि !
न जाने कब से तू साफ-साफ नहीं सुनायी दी।
तेरे ही तरह एक झनझनाहट सुनायी देती है—
मुझे अपने छोटे से हृदय में !

अपना आप बनने का निश्चय करो और देखो कि जो अपने को पा लेता है, वह दुखों से छूट जाता है।

ॐ ! आनन्द ! ॐ शान्ति ! आशीर्वाद और प्रेम

राम

ओम् ! शान्ति ! आशीर्वाद ! प्रेम ! आनन्द !

परम कल्याणमयी माता भगवती,

तुम्हारा मीठा स्वर्गीय पत्र मिला। कल्याणमयी सूर्यानन्द ने शरीर पर जैसा सुन्दर नियमन किया है, वह निस्संदेह परमात्मा के साथ उस अद्भुत ऐक्य, प्रेम के साथ आश्चर्यजनक सामञ्जस्य का द्योतक है।*

ओम् ! आनन्द ! जय ! जय !

❀ ❀ ❀

तुम्हारा ही निजात्मा
स्वामी रामतीर्थ

---

*मिसेज बैलमेन अस्वस्थ थीं और दिव्यशक्ति से अच्छी हो गयीं।

ओम् ! आनन्द ! आनन्द ! ओम् ! शान्ति !

कल्याणमयी माता,

राम उसी छत पर लेटा हुआ है, जिस पर तुम उस दिन उसके साथ बैठी थीं।

❀ ❀ ❀

ब्रह्मानुभूति में तल्लीन, अचेत, जब कि तुम्हारा पत्र कुछ अन्य पत्रों के साथ लाकर राम के हाथों में रखा गया। तब पत्र खोलने से पहले एक हार्दिक उल्लास भरा दीर्घ अट्टहास तुम्हारी कल्याणमयी आत्मा के पास भेजा गया। ओम् ! शान्ति, शान्ति ! सबसे प्यारी माता ! लो, राम तुम्हारा पत्र पढ़ने के बाद पुनः उल्लासमयी हंसी की एक दूसरी गूंज तुम्हारे पास भेज रहा है।

माता, तुम्हारी हर एक बात बिल्कुल ठीक है। राम पूर्णतः तुम्हारे शुद्ध, मधुर सुकोमल स्वभाव को समझता है। ईश्वर के आदेशानुसार वह इस समय विभिन्न विषयों पर कुछ गद्य और कुछ पद्य लिख रहा है।

बाबू गंगा प्रसाद वर्मा को भारत के अन्य प्रान्तों में वहां की कन्या पाठशालाओं को देखने एवं स्त्री-शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी योजनाओं के अध्ययन के लिए जाना था, जिससे लखनऊ एवं अन्य स्थानों में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी सुधार शीघ्र से शीघ्र व्यवहृत किये जा सकें। प्रान्तीय सरकार ने उन्हें यह काम सौंपा है। इस कारण वे मार्च से पहले राम से मिलने नहीं आ सकते। राम कदाचित ग्रीष्म ऋतु में मैदानों में न ठहरे। राम को कश्मीर से प्रेम है और यदि इस यात्रा में तुम्हारा सुखद साथ रहा, यदि राय भवानीदास एवं अन्य मित्र साथ चलें तो बड़ा आनन्द हो। निस्संदेह वहाँ राम की उपस्थिति और संभाषणों से हजारों-लाखों प्यासी आत्माओं को आत्मिक तुष्टि मिल सकती है, इसलिए राम तुम्हारे साथ कश्मीर जा सकता है। किन्तु ऐ कल्याणमयी माता ! सर्वोच्च अधिकार मनुष्य

का केवल इतना है कि उसका शरीर, मन और हृदय निरन्तर सत्य और मनुष्यता की वेदी में होम होता रहे और तभी उस परमात्मा को हमारी भेंट एक निरहंकार, विशुद्ध, क्षीण और शान्त अन्तर्ध्वनि के रूप में स्वीकार होती है।

"यदि कर्तव्य लोहे की तप्त दीवारों का सामना करने के लिए आह्वान करे, तो वहां से हटने वाला कितना मूर्ख, कितना निन्दनीय होगा ?"

माता ! उत्सर्ग पूर्ण जीवन तो किसी अज्ञात, अद्‌भुत दिव्य प्रज्ञा के आधार पर चलता है, हम उसका विश्लेषण नहीं कर सकते।

राम कश्मीर-यात्रा में तुम्हारा साथ दे सकेगा किन्तु ठीक चलने की घड़ी के पूर्व तक कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

तुम्हारा निजात्मा
रामतीर्थ

ॐ जयपुर
मार्च ९, १९०५

परम कल्याणमयी भगवती,

राम के चलने के विषय में तुम्हारी भविष्यवाणी यहां तक तो ठीक निकली कि राम ने पुष्कर छोड़ दिया। अब यहां से राम किस दिशा में चल पड़ेगा यह उसने ठीक चलने के समय तक सूर्यों के सूर्य—उस परमात्मा के हाथों में सौंपा हुआ है। अजमेर के टाउन हाल में दो व्याख्यान दिये गये। लोग जयपुर के टाउन हाल में भी व्याख्यानों की व्यवस्था कर रहे हैं। पूरन पुष्कर आया था और दो-तीन दिन तक राम के साथ पहाड़ियों पर घूमता रहा। दिलजंगसिंह कितना कोमल है ! राम के दर्शन के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती है किन्तु यह तो बन्द होना चाहिए। रहे केवल राम और उसका ईश्वर !

आज हम दिन भर साथ ही साथ रहेंगे और रात्रि मे भी प्रेम वृत्ति से, जो कभी तृप्त नहीं होती, हम साथ-साथ सोयेंगे । प्रातः उषाकाल में ही हम चल खड़े होंगे, फिर चाहे जिस ओर पैर ले जायं—एकान्त में अथवा भीड़-भाड़ में—वह सब कल्याणरूप होगा। न तो हम कभी यात्रा की समाप्ति की कामना करेंगे और न ही सोचेंगे कि हमारा अन्त कहां होगा । क्या सचमुच यहां की सारी वस्तुओं का ऐसा ही अन्तिम परिणाम नहीं होता !

ओम् ! ओम् ! ओम् !

शीघ्र ही राम जंगलों में, पहाड़ों पर, परमात्मा में, तुम्हारे भीतर पहुंच जायगा, जहां पत्रों की पहुंच नहीं हो सकती । नहीं कहा जा सकता, दुबारा तुम्हें कब लिखना होगा ?

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

शान्ति, कल्याण, प्रेम सदा तुम्हारा साहचर्य करें !

ॐ

हरिद्वार
बृहस्पति सायंकाल

परम कल्याणमयी माता,

तुम्हारी भविष्यवाणी सच हुई । राम देहरा और अपनी दिव्य माता के पास जा रहा है । किन्तु अतिशय प्रेम के मारे लोग उसे स्थान-स्थान पर रोक लेते हैं । अलवर, मुरादाबाद, अजमेर, जयपुर आदि कई स्थानों में व्याख्यान हुए । रेलगाड़ी में ही अपने प्यारे भाग्यवान बाबू ज्योति स्वरूप को बिदा करके राम हरद्वार में रुका है और लोगों ने राम की उपस्थिति का पता लगाना प्रारम्भ कर दिया है । वे कैसी उत्सुकता और प्रेम से यहाँ कुछ काल तक ठहरने का आग्रह करते हैं । और राम भी इस सुअवसर को हाथ से जाने

देना ठीक नहीं समझता। यहां अन्य लोगों के साथ बहुत से नवयुवक संन्यासी हैं, जो राम के वचन सुनने के लिए बेतरह भूखे और प्यासे हैं। उनकी दशा सुधारने के हेतु कुछ करना ही चाहिए। माता! मथुरा में अपनी भेंट के समय तुम ने भी राम से इस काम का अनुरोध किया था। अनेक पवित्रहृदय साधु-संन्यासी राम की शिक्षाओं को ग्रहण कर रहे हैं।

राम आज गंगा के दूसरे किनारे पर चण्डी के मन्दिर गया हुआ था। यह मन्दिर एक छोटी सी सुन्दर पहाड़ी पर है। गंगा के उस तट पर बड़ा सघन जंगल है और दृश्य अत्यन्त मनोहर! गंगा का अनेक छोटी-छोटी धाराओं में फूट-फूट कर फिर एक में मिल जाना, कैसा अनुपम, कैसा सुन्दर! चण्डी के मन्दिर से हिमालय की हिमशिलाओं का जगमगाता हुआ स्वर्णमयी दृश्य मन को मोह लेता है।

कल्माणमयी आत्मन्!

न प्रशंसा से काम और न निन्दा से प्रयोजन!
न है कोई मित्र, न कोई शत्रु,
न किसी से प्रेम, न किसी से घृणा,
न शरीर और न उसके सम्बन्धी,
न है घर और न है परदेश!

नहीं, इस संसार की कोई भी बात महत्व की नहीं होती। ईश्वर है, ईश्वर ही सच्चा है, ईश्वर ही एकमात्र सच्चाई है।

किसी की परवाह नहीं, सब कुछ चला जाय! केवल परमात्मा, मात्र परमात्मा ही सब कुछ है। अनादि शान्ति जल-बुन्दों की तरह बरसती है, अमृत की वर्षा हो रही है। राम का हृदय शान्ति मे भरा हुआ है और चारों ओर आनन्द का प्रवाह बह रहा है।

आनन्दमय राम सदा आनन्द-मग्न है,

तुम भी, प्यारी माता, शान्ति और कल्याण का भण्डार बनो !
प्रेम ! आनन्द ! आनन्द ! ओम् ! ओम् ! ओम् !
प्रेम और आशीर्वाद, तुम्हारे शिष्यों को,
तुम्हारे मेजवान और मेजवानी को—
(श्रीमान् और श्रीमती ज्योतिष् स्वरूप)

तुम्हारा हो निजात्मा
राम

जुलाई ५, १९०५

परम कल्याणमयी आत्मन्,

राम का एक सप्ताह पूर्व मसूरी के पते पर भेजा हुआ पत्र पहले ही तुम्हारे श्रेष्ठ करों में पहुंचा होगा। इस वर्ष गरमी में राम तुम्हारे साथ कश्मीर न जा सकेगा। इसलिए तुम आनन्द के साथ कैलाश, मानसरोवर आदि स्थानों में भ्रमण करो, कोई जल्दी नहीं। इन सुन्दरतम पर्वतीय दृश्यों में निस्सन्देह अपने घर जैसा आनन्द मिलता है। इन प्राकृतिक दृश्यों से तुम्हें अपने कल्याणमय अमरीका के मनोहर दृश्यों का स्मरण होता होगा—कैसा अपूर्व सामंजस्य !

मुझ में आ मिलती शान्ति सरित-धारा बन-बन,
मुझ तक बहती है शान्ति मधुर बन मलय पवन,
है शान्ति बह रही मुझ में ज्यों गंगा निर्मल।
प्रति रोम उँगुलियों से झरती है शान्ति विमल।
उत्तुंग तरंगें शान्ति-महासागर की उठ,
जन-जन के सिर-पद-उर से होकर बह जायें !

ओम् परमोल्लास ! ओम् महानन्द ! ओम् महा शान्ति !

❀ ❀ ❀

राम है महा प्रसन्न।

जीवन की बाढ़ और कर्मों की आंधी में—
ऊपर-नीचे मैं उड़ता-फिरता,
इधर-उधर, सभी ओर
जन्म से मरण तक बुनता रहता
अन्तहीन जाली मैं !
परिवर्तनशील सिन्धु—
यह परम प्रकाश भरे जीवन का !
इसी भाँति काल के सतत स्वरमय करघे पर,
परमात्मा का सजीव वस्त्र मैं बुनता रहता ।

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

ॐ

अगस्त १०, १९०५

कल्याण ! प्रेम ! आनन्द !
शान्ति ! शान्ति !!

परम कल्याणमयी भगवती,

कुछ दिन पहले तुम्हारा पत्र मिला था । किन्तु राम ने इधर किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया । आज तीन बड़ी ही उपयोगी पुस्तकें समाप्त हुई हैं, जो जनता के लाभार्थ राम हिन्दी में लिख रहा था । तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ? राम की इच्छा है—तुम पूर्ण स्वास्थ्य, पूर्ण बल प्राप्त करो ।

ओम् ! ओम् ! ओम् !

तुम्हारी अमरीका यात्रा के व्यय के लिए रुपया जुटाना कोई कठिन काम नहीं किन्तु हम लोग तुम्हें अपने साथ रखना चाहते

थे। शायद यह हमारा स्वार्थ हो किन्तु तुम स्वयं यहां के लोगों को प्यार करती हो। क्या तुम्हें पूरा निश्चय है कि तुम्हारे शारीरिक शैथिल्य का एकमात्र कारण भारत का जलवायु है और अमरीका लौटने पर वह अपने आप जाता रहेगा ! यदि ऐसा है तो हम में से किसी को भी तुम्हें यहाँ रोकने का आग्रह न करना चाहिए। तुम चैन से कैलीफोरनिया पहुंच जाओ—हम सब इसके लिए उद्योग करेंगे।

शान्ति, हार्दिक आशीर्वाद ! प्रेम !!

आशा है, यह पत्र तुम्हें उत्तम स्वास्थ्य में पायगा।

ओम्

तुम्हारा ही निजात्मा
राम

नीचे कुछ पत्र दिये जाते हैं, जो स्वामी राम ने मिसेज पोलिन ह्विटमैन, उसकी मां और उसकी बहन को लिखे थे। स्वामी राम अपने निराले ढंग से मिसेज पोलिन ह्विटमैन को 'कमलानन्द' और उसकी मां को 'चम्पा' के नाम से पुकारते थे।

ॐ

१५ सितम्बर, १९०३

सबसे प्यारी बच्ची कमला,

तुम शुद्ध, पवित्र और पूर्ण निर्दोष हो। कोई त्रुटि नहीं, कोई धब्बा नहीं, दुनियादारी गायब, न कोई शंका, न कोई पाप !

यदि तुम्हारा जी चाहे तो तुम निम्नलिखित विचारों को अपने काव्य में पिरो सकती हो। ऐसे प्रयास में लगे रहने से तुम्हारा चित्त सर्वोच्च लोकों में विचरण करने लगेगा।

राम ने आज प्रातःकाल एक फारसी कविता बनायी थी। यह उसी का भावार्थ है। पोर्टलेण्ड या डेनवर में रहते हुए भी तुम उसे कविता रूप में ढाल सकती हो। ऐसा प्रयास करके देखो तो सही !

तुम्हें विचारों को अपने अनुकूल करने का पूर्ण अधिकार है।

१. ऐ तूफान उठ और जोर-शोर से आंधी-पानी बरपा कर। ओ आनन्द के महासागर ! पृथ्वी और आकाश को तोड़-फोड़ कर एक कर दे। गम्भीर से गम्भीर गोता लगा, जिससे विचार और चिन्तायें छिन्न-भिन्न हो जायं, जिससे कहीं उनका पता ही न चले। भला, राम को उनसे क्या काम ?

२. आओ, हम लोग पियें, खूब पियें, इतना अधिक पियें कि बेसुध हो जायँ। आओ, अपने हृदय से द्वैत की भावना को चुन-चुन कर निकाल डालें, अपने ससीम अस्तित्व की दीवालों को जड़ से ढहा दें, जिससे आनन्द का वह महासागर प्रत्यक्ष लहराने लगे।

३. आओ, प्रेम की मादकता ! जल्दी चढ़ो, प्रेम की मस्ती ! तुरन्त हमें डुबा दो, विलम्ब करने से प्रयोजन ! मेरा मन अब एक पल, एक निमिष के लिए भी इस दुनियादारी में फंसना नहीं चाहता। ओ इस मन को तो अपने में, उसे प्यारे प्रभु में डूब जाने दो, शीघ्रता करो, शीघ्रता करो और जलते हुए तन्दूर की अग्नि से बचा लो, बचा लो।

४. इस मैं और मेरे, तू और तेरे के झमेले में आग लगा दो। आशाओं और आशंकाओं को उतार फैंको। टुकड़े-टुकड़े करके गला दो, द्वैत की भावना जड़ से उड़ा दो, वह हवा में काफूर हो जाय। कहां सिर, कहां पैर, कहीं कुछ पता न रहे।

५. रोटी नहीं, न सही। पानी नहीं, न सही। आश्रय और विश्राम नहीं, न सही। पर मुझे तो चाहिए प्रेम की, उस दिव्य प्रेम की प्यास और तड़प। एक इस ढांचे की क्या, तेरे प्रेम की बलिवेदी

पर ऐसे लाखों, करोड़ों ढाँचे—हड्डियों के ढांचे स्वाहा हो जायँ तो भी थोड़ा है।

वह देखो, पश्चिमीय क्षितिज—

कैसी रंगविरंगी प्रभा से जाज्वल्यमान हो उठा है।
अरे, क्या सूर्य की आभा इसे सुशोभित कर रही है प्यारे !
वह तो तेरा अपना प्रकाश है।

तुम्हारा निजात्मन्
राम

ॐ

शास्ता स्प्रिंग्स
जुलाई २२, १९०३

परम कल्याणमयी चम्पा,

शायद तुम को इस प्रकार पुकारा जाना पसन्द न आये। किन्तु तुम पसन्द करो या न करो, राम को तुम्हें इस नाम से पुकारना अच्छा प्रतीत हुआ है। हिन्दुस्तान की भाषा में प्रत्येक नाम का एक विशेष अर्थ होता है और चम्पा नाम (जो प्राय: श्रेष्ठ परिवारों की लड़कियों को दिया जाता है) का शाब्दिक अर्थ है मधुर सुगन्ध से पूर्ण खिला हुआ पुष्प विशेष !

राम ने ज्योंही इस पत्र को लिखने के लिए कलम उठायी त्यों-ही अनायास भीतर से यह नाम राम के सामने प्रकट हुआ।

हाल ही में तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर में एक लम्बा पत्र कमला (पोलिन) को लिखाया गया था। वह पत्र तुम्हें दिया गया या नहीं ? उसमें राम की कुछ नूतन रचनायें भी थीं।

वेदान्त के आदेश

१. वेदान्तिक धर्म का निचोड़ केवल एक ही आदेश में संग्रहीत किया जा सकता है—

अपने आप को सदैव पूर्ण शान्त और आनन्दमग्न रखो, चाहे जैसी घटना हो, उसमें व्याघात न होना चाहिए। भूख-प्यास, रोग-दुख, अपमान, लज्जा और मृत्यु ! सदैव प्रसन्नचित्त और शान्त रहो, क्योंकि तुम तो परमात्मा, परम तत्व हो, जिसे तुम कभी नहीं भूल सकतीं, जिसकी तुम कदापि अवहेला नहीं कर सकतीं।

२. यदि तुम अपनी वास्तविक आत्मा के राज-सिंहासन पर बैठने के लिए तत्पर हो जाओ तो संसार, उसके निवासी, उसके सम्बन्ध—सभी कुछ न जाने कहां लोप हो जायंगे।

जांच करो, देखो और परखो अथवा कोई और भी काम करो किन्तु करो उसे अपनी वास्तविक आत्मा के प्रकाश में–अर्थात् यह कभी मत भूलो कि तुम्हारी आत्मा इन सब से ऊपर है, सारी आवश्यकताओं से परे है।

तुम्हें वास्तव में किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें किसी चीज की इच्छा ही क्यों होना चाहिए ? अपने सारे काम संसार के स्वामी के महिमामय गौरव से करो, खुशी के लिए, खेल के लिए केवल मनोरंजन के हेतु। कदापि, कदापि इसका अनुभव न हो कि तुम्हें किसी बात की आवश्यकता है।

३. जब तुम वेदान्त के इन सिद्धान्तों को जीवन में उतार लोगी, अपने आप सत्य की मधुरतम ज्योति तुम्हारे अन्दर से चारों ओर बिखरने लगेगी।

सोने से पहले—जब आंखें बन्द होने लगें—दोपहर हो या रात्रि हो, तब अपने मन में ऐसा दृढ निश्चय करो कि तुम जागने पर वेदान्त की, सत्य की साक्षात् मूर्ति के रूप में प्रकट होगी।

जब तुम जागो तब अन्य कोई काम करने के प्रथम अपने

अन्तःकरण में पुनः उस संकल्प का चित्र खींचो, जो सोने के पहले किया था ।

जब भी सम्भव हो, तभी जोर से या मन ही मन ओम् ! ओम् ! ओम् ! गाओ और गुनगुनाओ ।

इस प्रकार तुम सचमुच असली चम्पा के फूल की भांति हर समय अपने चारों ओर मधुर चित्ताकर्षक सुगन्ध बिखेरती रहोगी ।

तुम्हारे रूप में—
राम स्वामी

पुष्कर, जिला अजमेर
फरवरी २२, १९०५

परम कल्याणमयी भगवती,

यहां जहां राम है, वहां कैसी सुन्दर और मनोहर ऋतु है ! प्रतिदिन वर्ष का नव दिन और प्रति रात्रि क्रिसमस की रात्रि बनी हुई है । नीलाम्बर है मेरा प्याला और चमकदार किरणें मेरी सुरा ।

मैं पहाड़ियों की मन्द-मन्द वायु हूं, जो उड़ती है, बराबर उड़ती ही रहती है । पहाड़ियों से मैं शहरों और नगरों में उतर जाती हूं—हरी-भरी और स्वच्छ—मैं सड़क-सड़क में फैल जाती हूँ ।

उसे छुआ, पुरुष को छुआ, स्त्री को छुआ, तुम्हें छुआ, यह सब मेरा खेल और मनोरंजन चलता ही रहता है ।

मैं प्रकाश हूँ—अपने प्यारे बच्चों—फूलों और पौधों को प्रेम से खिलाता रहता हूँ । मैं उन्हीं की आंखों में, उन्हीं के हृदय में रहता-सहता हूँ, जो सुन्दर और सबल हैं ।

तुम मेरे साथ रहो तब करूंगा मैं प्रार्थना
तुम मेरे ही सँग रहो सदा दिन भर, निशि भर—

औ' तब तक जब कि दिवा-निशि हो जायँ विलुप्त
तुम चुपके-चुपके साथ रहो, अब दूर यहां से मत जाओ !
मुझको तुम छोड़ न जा सकते।
मैं भी हूँ वहीं, जहां तुम हो।
दृढ़ता से मैंने तुम्हें पकड़ रक्खा है।
बालुका तट पर ? नहीं, न सागर-लहरों पर
प्रत्युत अपने प्राणों में मैंने बाँध रखा है तव प्राणों को।

प्रकाशों के प्रकाश में निवास करने से मार्ग अपने आप खुल जाता है। जब प्रेम और ब्रह्मज्ञान के मधुर प्रकाश की छटा फैलती है तब काम-काज अपने आप सुचारु रूप से सम्पादन होने लगते हैं। (जैसे गुलाब की कली सूर्य-ताप से स्वतः अपना मुँह खोल देती है।)

आशा है, तुम्हें Thundering Dawn (घनघोर प्रभात) का जनवरी अंक पूरन, सूत्रमंडी, लाहौर से प्राप्त हुआ होगा।

तुम्हारा अपना आप
स्वामी रामतीर्थ

जनवरी के अंक में तुम्हारी कवितायें 'कमलानन्द' के नाम से—पूरे संन्यासी के नाम से–प्रकाशित हुई हैं।

आगे यदि तुम कोई नूतन रचना भेजो तो, यदि तुम्हें पसन्द पड़े, ओम् के नाम से प्रकाशित करना।

प्यारी कल्याणमयी गिरिजा और सब को प्रेम, आशीर्वाद, आनन्द,

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

ॐ ॐ ॐ

पुष्कर, जिला अजमेर, भारतवर्ष

आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !

शान्ति, कल्याण, प्रेम !

परम कल्याणमयी प्रियतम आत्मन्,

शान्त, स्वच्छ, गम्भीर और गहरी झील के किनारे राम का डेरा जमा है। उसके चारों ओर प्राय: एक सी ऊँचाई की पहाड़ियों की एक लम्बी पंक्ति फैली है जिन पर मानों एक सुन्दर हरित वर्ण शाल चढ़ा हुआ है। राम के निवासस्थल में दो फुलबगियाँ हैं जहाँ शानदार मोरों के झुण्ड निरन्तर आलाप किया करते हैं। बतखें झील में गोता लगाती तैरती हुई मौज लूटती हैं। नारायण स्वामी (जिसके बारे में राम ने तुम्हें बताया होगा) यहां राम के लेखों की प्रतिलिपि में सहायता दे रहा है।

यह झील पृथ्वी की आंख कहलाती है। जंगल से भरी हुई पहाड़ियों और चट्टानों को उसकी लटकती हुई भवें समझो। वह एक दर्पण है जिसे कोई पत्थर तोड़ नहीं सकता, जिसका पारा कभी उतरता नहीं-ऐसा दर्पण जिसमें फेंकी हुई सारी गन्दगी नीचे बैठ जाती है, जो सूर्य के चंचल प्रकाश के झाड़न से निरन्तर स्वच्छ और परिष्कृत होता रहता है।

यह सरोवर सचमुच एक सुन्दरतम चरित्र है, जो राम के देखने में आया है। कितनी सुन्दरता से उसकी पवित्रता स्थिर रहती है। इतनी अधिक लहरों के पश्चात् क्या कहीं उसमें एक भी सिकुड़न पड़ती है ? जब देखो तब पूर्ण तरुण।

बस ऐसा ही हो जाय हमारा हृदय !

ये हरे लाल पंछी पेड़ों पर बैठे गाया करते हैं,
या वक्र पंक्ति में बैठ झुके सिर सपने देखा करते हैं,
हर एक वृक्ष पर इन्द्र-धनुष छा जाता है।
मेरे सिर के ऊपर डालों पर गाते ये—

मृदु गायन ज्यों गाते गाते सो जाते ये।
ध्वनि क्षीण कि ज्यों दूरागत झरने का स्वर हो !
ये पंछी कभी नहीं देखा करते हमको—

अपनी आत्मा का आशीर्वाद, प्रेम, और शान्ति।
स्वामी राम।

———

निम्नलिखित दो पत्र स्वामी राम ने मिसेज ई. सी. केम्पबेल (डेनवर, कोलारेडो) अमरीका की अपनी एक भक्तिनिष्ठा शिष्या को लिखे थे।

पोर्टलेंड ओर

मिसेज ई. सी. केम्पबेल,

जव मनुष्य किसी चीज पर अपना दिल लगाते हैं और जब वाधायें सामने आती हैं, तो वे बहुत भड़भड़ाते और क्रुद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में बिना अपवाद के उत्तेजना और भड़भड़ाहट का एक-मात्र कारण यह होता है कि हम तुरन्त सामने दिखायी देने वाली बाधा के विरोध की चेष्टा करते हैं। देखो तो, ईसा के हृदय में उस समय कितनी शांति होगी, जब उसने कहा था—'अशुभ का विरोध मत करो।' सदा शान्त रहो और जो कुछ भी सामने आये, प्रसन्नता से उसका स्वागत करो, फिर वह चाहे तुम्हारी इच्छा की धारा के विपरीत ही क्यों न जाये। जब हम केन्द्रच्युत न होकर अपनी आत्मा में निवास करते हैं, तब राम ने स्वयं अपने निजी अनुभव से देखा है कि प्रत्यक्ष बुराई भलाई में बदल जाती है। क्या तुम्हें याद नहीं कि कैसे एक प्रत्यक्ष बुराई के अनन्तर १० रुपये उस हिन्दू विद्यार्थी को भेजे गये थे। अपने ही चिड़चिड़ेपन एवं अनात्मवृत्ति के द्वारा हम अपने लिए, शुभ वरदानों, उत्तम विचारों और सौभाग्य के अवसरों

का द्वार बन्द कर देते हैं, जो अन्यथा हमें अवश्य ही प्राप्त होते। हर एक बुराई और हर एक कठिनाई का एक ऐसे हृदय से सामना करो, जो शरीर और सांसारिक जीवन को सदा अपनी हथेलियों पर लिये रहे। दूसरे शब्दों में, जो हृदय पूर्णतः प्रेम में सराबोर हो, उससे बढ़कर संसार में और कोई शक्ति नहीं।

तुम्हारी ही प्रियतम आत्मन्,
राम स्वामी

पोर्टलेण्ड, आर

ओम् ! ओम् !!

मिसेज ई० सी० केम्पबेल,

तुम निरन्तर राम की स्मृति में निवास करती हो।

तुम इतनी सच्ची, शुद्ध, उत्तम, सरलहृदया, स्वामिभक्ता और कितनी अच्छी हो ! तुम क्या इसे अनुभव नहीं करतीं ?

१. मन में एक व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति से तुलना करना, उसे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ अथवा तुच्छ ठहराना।
२. किसी दूसरे व्यक्ति के साथ मन ही मन स्वयं अपनी तुलना करना।
३. भूतकाल को वर्तमान के सामने रखना और भूतकाल की गलतियों पर पश्चाताप करना।
४. भविष्य की योजनाओं पर मनन करना और किसी चीज से डरना।
५. केवल एक परमतत्व परमात्मा के सिवा अन्य किसी वस्तु में दिल लगाना।
६. बाहर के दिखावों पर विश्वास करना और व्यवहार्यतः पूर्ण

हृदय से उस आन्तरिक सामंजस्य और समता में विश्वास न करना, जो सबका शासक है।

७. लोगों के शब्दों को सुनकर अथवा उनके ऊपरी व्यवहार को देख कर झट से परिणामों पर कूदना।

८. लोगों से बातचीत करते हुए इतने आगे बढ़ जाना कि अन्त में इन बातों से मन में असंतोष पैदा होने लगे।

तुम दुख का सूत्रपात करने वाली इन आठ बातों से सदा दूर रहो। ओम्।

तुम्हारा ही श्रेष्ठ आत्मन्
राम स्वामी

निम्नलिखित पत्र में स्वामी राम ने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में स्वामी शिवगणाचार्य को बतलाया है कि उनका उद्देश कोई आडम्बर बनाकर काम करना नहीं है, वरन् वे उससे कहीं उच्च आदर्श की पूर्ति करना चाहते हैं।

किशनगढ़

नारायण,

डाक्टर लोग कहते हैं कि जब तक हमें अन्दर से भूख न हो, तब तक कदापि भोजन न करना चाहिए, फिर भोजन चाहे जितना मधुर और स्वास्थ्यकर क्यों न हो, अथवा हमारे मित्र एवं सम्बन्धी खाने के लिए कितना ही अधिक आग्रह क्यों न करें? आपने जो कुछ लिखा, वह सब ठीक है। यदि मैं तुरन्त चल पड़ूँ तो निस्संदेह स्वयं आप के एवं किशनगढ़ राज्य के सुयोग्य मन्त्री के सहवास का उत्तम अवसर प्राप्त हो सकता है। आप दोनों के सद्परामर्शों का भी लाभ मुझे मिल सकता है। किन्तु मेरी अन्तरात्मा इस समय मुझे ठहरने के लिए कहती है—यह आशा दिलाकर कि शायद्

भविष्य में, जब मैं पूर्णतः सम्पन्न हो जाऊं, तब इससे भी बढ़कर उपयोगी अवसर मेरे हाथ आयें। अपनी पहले की असफलताओं से— यदि उन्हें मैं असफलताओं का नाम दूं—मैं किसी प्रकार उद्विग्न नहीं होता। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे भविष्य जीवन में सफलताओं की कमी न रहेगी। मैं यहाँ जो कुछ कर रहा हूं, वही मैं समझता हूं कि किशनगढ़ में हम लोगों की मित्रगोष्ठी का परिणाम होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमें उपयोगी सुअवसरों से लाभ उठाने में कभी असावधान न होना चाहिए। किन्तु साथ ही हम कभी अधीर भी न हों। हम सब काम चाहते हैं। इस उद्देश्य के हेतु कि मैं अपने देशवासियों में शक्ति और क्रियाशीलता का संचार कर सकूं, मैं समझता हूं कि मेरे पास स्वयं शक्ति का अति विशाल संचय होना चाहिए। समय आने दीजिये, आप संभवतः अवश्य मेरे साथ होंगे।

यदि मुझे केवल छोटी-मोटी बातों के बारे में ही 'हो हल्ला' नहीं मचाना है, यदि सचमुच अपनी मातृ-भूमि की कोई ठोस और वास्तविक सेवा करनी है, यदि मैं वास्तव में देश के लिए उपयोगी बनना चाहता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि इस भारी काम के सर्वथा योग्य बनने के लिए अभी मुझे कुछ और तैयारी की आवश्यकता है।

मैं यहाँ पर अपने शास्त्रों एवं सर्वोच्च पाश्चात्य विचारधारा का गहन अध्ययन कर रहा हूं, साथ ही मेरी स्वतन्त्र शोध भी चल रही है। मुझे इस काम में सारा जीवन न लगाना होगा। वरन् मैं शीघ्र ही उस ज्ञान को, जिसे मैं इतने अधिक निरन्तर दुस्साध्य परिश्रम के द्वारा संचय कर रहा हूं, मनुष्यमात्र के हृदय और व्यवहार में पैठाने के लिए निकल पड़ूंगा। मुझे पूरा निश्चय है कि यदि मैं चाहता तो इससे बहुत पहले ही देश में एक छोर से दूसरे छोर तक घनघोर हलचल मचा देता किन्तु मेरी अन्तरात्मा कहती है। मैं व्यक्तिगत नाम, वा लाभ के लिए अथवा किसी भय और किसी तात्कालिक संकट से,

यहाँ तक कि मृत्यु के भय से भी—किसी ऐसी बात का प्रचार नहीं करना चाहता जिसे मैंने स्वयं सत्य के रूप में अनुभव न किया हो।

यदि सत्य में कोई शक्ति है—और निस्संदेह वह अनन्त शक्ति है—तो राजा लोग भी और साधुगण भी, उच्च श्रेणी के लोग और साधारण जनता—सभी को उस सत्य और धर्म के आगे सिर झुकाना और आदर करना होगा, जो रामतीर्थ स्वामी उन्हें बतलाना चाहता है। मैं इस काम के सर्वथा योग्य हूं और यदि मैं किसी उतावली या अधैर्य के वश होकर किसी छोटे-मोटे काम में अपने को जुटा देता हूँ तो मैं अपनी शक्तियों का दुरुपयोग ही करूँगा।

मुझे प्रचार करना है; अन्यथा बचपन से ही क्यों मैं इस इच्छा को हृदय के भीतर इतने प्रेम से पालता रहा हूँ। मुझे प्रचार करना होगा, अन्यथा मैंने अपने माता-पिता, स्त्री-बच्चे, लौकिक—पारलौकिक उज्ज्वल भविष्य को तिलांजलि ही क्यों दी ? ज्ञान की दिव्य प्रभा को अपने भीतर संचित करके मुझे बाहर प्रचार करना होगा—वीरता से और निर्भीकता से—यहाँ तक की सभी प्रकार की यातनाओं और विरोध की उपेक्षा करते हुए मुझे उस ज्ञान का प्रचार करना होगा—जिसे मैं यहां अपने में अनुभव कर रहा हूँ।

अपने भविष्य के कार्यों के लिए रुपया रखने के आपके परामर्श को साधुवाद और धन्यवाद !

नियमित व्यायाम, स्वास्थ्य उत्तम, जलवायु अत्यन्त रुचिकर! आपको और बाबू साहब को शान्ति की कामना के साथ—

—रामतीर्थ स्वामी

———

निम्नलिखित अवतरण में कुछ वे पत्र हैं जो उन्होंने स्वामी नारायण को लिखे थे और जो प्रकाशन के लिए 'अनन्त जीवन का

नियम' शीर्षक से संक्षिप्त कर लिये गये। उनके इन पत्रों में उनके हृदय की गम्भीरता को भेदना अति दुष्कर है। यह उन्होंने अमरीका से लौटने पर लिखे थे। इनमें उनके जापान और अमरीका के भाषणों जैसा आनन्द-विभोर हृदय का अनायास फूट पड़ने वाला आह्लाद उतना नहीं दिखायी देता जितनी कि ज्ञान की गरिमा।

राम किसी 'मिशन' का दावा नहीं करता। उसे देवदूत बनने की इच्छा नहीं। काम मात्र तो ईश्वर का है। हमें बुद्ध और अन्य देवदूतों के उदाहरणों और प्रमाणों से क्या करना है? हमारे मन को तो सीधे 'ईश्वरीय नियम' की आज्ञाओं के वशवर्ती होना चाहिए। बुद्ध और ईसामसीह को भी मित्रों और अनुयायियों ने छोड़ दिया था। देखो, अरण्य जीवन के सात वर्षों में से बुद्ध को अन्तिम दो वर्ष बिल्कुल एकाकी बिताने पड़े थे और तब कहीं उन्हें देदीप्यमान प्रकाश प्राप्त हुआ था। और उसके बाद शिष्यों के झुण्ड के झुण्ड उनके पास जुटने लगे। तब उनका स्वागत हुआ। अपने शुभचिन्तक आदरणीय परामर्शदाताओं की रायों और विचारों से प्रभावित होना व्यर्थ है, यदि सचमुच उनके विचार उस 'ईश्वरीय नियम' से एकस्वर होते तो उन्होंने न जाने कब के ढेरों के ढेर 'बुद्ध' संसार में पैदा कर दिये होते।

धीरे-धीरे और दृढ़ता के साथ जैसे मधु में फंसी हुई मक्खी एक-एक करके अपने पैरों को खींचने की चेष्टा करती है, उसी प्रकार हमें नाम—रूप और व्यक्तियों के प्रति अपनी आसक्ति के कण-कण को हृदय से दूर करना होगा। एक के बाद एक सभी नाते-रिश्ते काटने होंगे, सभी सम्बन्ध तोड़ना पड़ेंगे—उसके बहुत पहले कि ईश्वर की कृपा के रूप में मृत्यु हमें अनिच्छापूर्वक सब कुछ त्याग करने के लिए बाध्य करे।

'ईश्वरीय नियम' का चक्र बड़ी निर्दयता के साथ घूमता है। जो उसका पालन करता है, वह उस पर सवारी करता है, जो उसके

राम-शिष्य श्रीमन्नारायण स्वामी

विरुद्ध अपनी इच्छा को खड़ा करता है--ऐसा व्यक्ति अवश्य कुचला जायगा और नारकीय यातनायें भोगेगा।

ईश्वरीय नियम अग्निरूप है। वह सभी सांसारिक आसक्तियों को जला डालता है। वह अज्ञानी मस्तिष्क को झुलसा देता है किन्तु वह हृदय को शुद्ध करके आत्मा को आवृत्त करने वाले सभी विषैले कीड़ों को भी समूल नष्ट करने वाला है।

धर्म हमारे प्राणों का प्राण है और हमारे जीवन में उसी प्रकार सर्वव्यापक है जैसे भोजन की क्रिया। धर्म से विमुख सफल नास्तिक मानो स्वयं अपनी ही पाचन-क्रिया से अनभिज्ञ है। ईश्वरीय नियम हमें तलवार की वार से धार्मिक बनाता है। वह हमें कोड़े मार-मार कर जगायेगा। उस नियम से किसी प्रकार हमारा छुटकारा नहीं हो सकता। ईश्वरीय नियम ही सत्य है, और सब मिथ्या। सभी नाम-रूप और व्यक्तियां उस ईश्वरीय नियम के महासागर में बुलबुले मात्र हैं। सत्य की परिभाषा है 'वह जो सदा विद्यमान रहे।' अब देखो कि क्या संसार की कोई चीज, कोई नाम-रूप, कोई सम्बन्ध, कोई शरीर, कोई संगठन, कोई समाज उतनी ही दढ़ता से विद्यमान रह सकता है, जितनी दृढ़ता से त्रिशूल का यह नियम स्थिर है।

प्रश्न यह है कि क्यों भ्रान्त, अदूरदर्शी जीव उस आदर्श नियम की अपेक्षा नाम-रूपात्मक व्यक्तियों को अधिक प्यार करते हैं। इस लिए कि अज्ञान के कारण उनको संसार के व्यक्ति एवं अन्य दृश्य पदार्थ सदा टिकने वाले ठोस मालूम होते हैं और वे ईश्वरीय नियम को हवाई, क्षण-क्षण में बदलने वाला, बादल जैसा नगण्य समझते हैं। परन्तु केवल ईश्वरीय नियम ही परम सत्य है।

प्रकृति उन्हें यह पाठ पढ़ाना चाहती है कि एक मात्र 'त्रिशूल' का नियम ही अन्तिम तथ्य है और संसार के सभी व्यक्ति एवं हमारे प्यार की सभी वस्तुयें थोड़ी देर का तमाशा, केवल छाया

या माया जैसी काल्पनिक हैं। यदि वे सीधे–सीधे उस पाठ को सीखने लगते हैं तो कठोर ठोकरों और दुखद धक्कों से बचा लिये जाते हैं। प्रकृति–नियामक 'विहारी जी' खेल खेलने में बड़ा पटु है। हमारे जीवन की मीठी और कड़वी चीजें, ऊपरी सौन्दर्य एवं भयंकरता उसी के विभिन्न भेष हैं, जो वह हमें अपने दर्शन, अपना प्रकाश दिखाने के लिए धारण किया करता है।

जब हम अपने मित्रों और शत्रुओं के रूपों को सच्चा मान बैठते हैं, तब वे हमें धोखा देते और विश्वास भंग करके साथ छोड़ बैठते हैं। और जब हम बदला लेना प्रारम्भ करते हैं, उन्हें दुष्ट-प्रकृति समझ कर उनके प्रयोजनों पर सन्देह करते हैं, तब मामला और भी बिगड़ जाता है। उनका पहला विद्रोह तो इस कारण हुआ था कि प्रेम के मारे हम उन्हें वह सच्चाई, वास्तविकता प्रदान कर बैठे थे, जो एकमात्र उस ईश्वर का स्वरूप है। अब जब हम उनका विरोध करते हैं तो मानो हम अपनी पहली भूल को और भी गंभीर बनाते हैं, उनसे घृणा करके हम उनके रूपों को और भी सच्चा मानते हैं और इस प्रकार अपने ऊपर और अधिक दुख-दर्द बुलाते हैं। सावधान हो जाओ! पूर्ण त्याग, पूर्ण सन्यास, 'शिवरूप' ही जीवन का अन्तिम प्रयोजन है। वही एकमात्र जीता-जागता तथ्य है, ठोस कहलाने वाले पत्थरों से भी वह कहीं अधिक कठोर है! अतः पाषाणलिंग द्वारा उसे व्यक्त करना कुछ अनुचित नहीं हुआ। असावधान हृदय को ठीक मार्ग पर लाने के लिए वह पत्थरों से अधिक कठोर चोट करता है। उसे निरन्तर ध्यान में रखना हमारी अनिवार्य आवश्यकता है।

मुसलमान और ईसाइयों ने इस ईश्वरीय नियम को घय्यर (ईर्ष्यालु) और कहर (भयानक) कहने में कोई गलती नहीं की। यथार्थ में वह व्यक्तियों का शील रखने वाला नहीं। चाहे कोई हो, जो भी संसार की किसी चीज में दिल लगायेगा, प्रकृति का क्रोध

अवश्यमेव उसे भोगना पड़ेगा और फिर भोगना पड़ेगा। लोग सत्य का यह पाठ सीखने में प्रमाद करते हैं, क्योंकि उनमें ठीक-ठीक निरीक्षण की शक्ति नहीं होती। वे अधिकतर जब स्वयं उनके व्यक्तित्व से सम्बन्ध की कोई बात होती है, तब उसका कारण स्वयं अपने में नहीं ढूंढते अपितु तुरन्त दूसरों को उन अपराधों के लिए दोष देने लगते हैं। वे एक निष्पक्ष साक्षी की भांति स्वयं अपने ही अन्तःकरण की वृत्तियों और भावनाओं तथा उनसे होने वाले दुष्परिणामों का विश्लेषण और आत्म-निरीक्षण करना नहीं जानते। धोखा और प्रवंचना हमें मिलेगी, और फिर मिलेगी, जब तक हम नाम-रूप का विश्वास करेंगे अथवा जब हम अपने हृदय के अन्तस्तल में उन झूठी चीजों और व्यक्तियों को वह आदर प्रदान करेंगे, जो एकमात्र उस अन्तिम तथ्य परमात्मा को मिलना चाहिए, दूसरे शब्दों में, जब हम अपने हृदय-मन्दिर में भगवान् के बदले केवल पाषाण की प्रतिमा प्रतिष्ठित कर बैठते हैं। तर्क-संगत अन्वय-व्यतिरेक का नियम बिना किसी अपवाद के सदा अनात्म पदार्थों का मिथ्यापन और खोखलापन ही सिद्ध करता है।

ऐसे कितने ही अवसर आते हैं, जब हम सब भांति शिष्ट और भद्र पुरुषों के वचनों पर अवलम्बित होकर, उन लोगों में ईश्वर की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वास जमा कर उनको ऐसा बना देते हैं कि वे फिर अपने वचनों का पालन नहीं कर पाते। कितनी ही बार हम स्वयं ईश्वर के नियम को भूलकर अपने बच्चों के शरीरों को इतना अधिक प्यार करने लगते हैं कि स्वयं उनके नाश अथवा मृत्यु का कारण बनते हैं। कितनी ही बार हम अपने सच्चे मित्रों पर इतना अवलंबित होते हैं, उनके व्यक्तित्व पर इतना आंतरिक विश्वास जमाते हैं, जो केवल उस ईश्वर को, 'त्रिशूल' को मिलना चाहिए। हम ही उन्हें झूठा, वचन-भंग करने वाला बना देते हैं। कितनी ही बार हम अपने जीते-जागते गुरुओं को उनकी आध्यात्मिक ऊँचाइयों से

नीचे घसीट लाते हैं, क्योंकि हम उन्हें अपने में इतना अधिक विश्वास करने के लिए विवश करते हैं और हम स्वयं उन पर इतना अधिक अवलम्बित हो जाते हैं ! ईश्वरीय नियम स्पष्ट है कि हमें अपने गुरुओं के व्यक्तित्व को भी प्रभात होने से पहले—मुर्गे के बांग देने से पहले तीन बार, तीन से भी अधिक बार—सत्यता प्रदान करने से नमस्कार कर लेना चाहिए। कितनी ही बार हम अपनी स्त्रियों को दिल सौंपकर, उन पर पूर्णतः अवलम्बित होकर, स्वयं गृहस्थी के झगड़ों का कारण बनते हैं और अनेक विपत्तियां बुलाते हैं। एक शब्द में, उस ईश्वर की अपेक्षा किसी भी वस्तु को अधिक महत्व दो और वह ईश्वरीय 'प्रेम' अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से तुम्हारे हृदय को भेदे बिना, क्षत-विक्षत किये बिना न रहेगा, न रहेगा !

अन्य लौकिक अयोग्य प्रेमों की क्या चर्चा की जाय, स्वयं गोपियों का उदाहरण क्यों नहीं देखते। उन्होंने भगवान् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के मनोहरतम स्वरूप पर अपना दिल लगाया। फिर भी उन्हें अपनी इस भूल के कारण रक्त के आंसू बहाने पड़े ! हाथ क्या लगा ? शुद्ध एवं पवित्र प्रेम की अवतार सीतादेवी भगवान् राम के देदीप्यमान पार्थिव स्वरूप की सत्यता में विश्वास कर बैठीं ! लो, उन्हें भी, अपनी इस भूल के कारण उस निष्ठुर अमूर्त राम के द्वारा, वास्तविक राम के द्वारा अपने स्वामी, संसार के स्वामी के द्वारा घनघोर वनों में घसिटना पड़ा।

❀ ❀ ❀

त्याग और संन्यास का नियम एक कठोर सत्य है। कोई हवा में उड़ने वाली कल्पना नहीं। लोग अपनी विपत्तियों के वास्तविक कारण को न जान कर जो केवल उस 'ईश्वरीय नियम' की धारा से बेसुर हो जाते हैं, अपनी यातना के बाह्य चिह्नों, वर्तमान परिस्थितियों से लड़ना-झगड़ना प्रारम्भ करते हैं। चाहिए तो यह कि हम लोगों की अच्छी या बुरी बातें, उनका अच्छा या बुरा स्वभाव इस

प्रकार अपनी चेतना से बाहर निकाल दें, जैसे रात के धुँधले स्वप्न अपने आप विस्मरण होकर लुप्त हो जाते हैं। स्वप्न चाहे भयंकर हों या मीठे, हम कभी उन्हें अपने अनुकूल बनाने अथवा उनसे झगड़ने की चेष्टा नहीं करते। करते हैं तो केवल अपने ही पेट को ठीक करने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रकार हमारा अच्छे या बुरे, चाहे जैसे लोगों से मिलना-जुलना हो हमें उनकी कतई परवाह न करके सदा अपनी आध्यात्मिक दशा को उन्नत करना चाहिए। देख, तेरे और तेरे ईश्वर के बीच में कोई बुरी प्रतीत होने वाली बात अथवा कोई अभाग्य किसी प्रकार बाधा न डाले। महान् से महान् अपमान इतना बड़ा नहीं हो सकता कि हम उसे क्षमा करके आत्मसन्तुष्ट न हो सकें।

ईश्वर की तुलना में कभी किसी चीज का मूल्य अधिक नहीं होना चाहिए। ईश्वर के समान और कुछ मूल्यवान् नहीं होना चाहिए। निन्दा और स्तुति, आधि-व्याधि और आमोद-प्रमोद एक समान घातक हो जाते हैं, यदि हम समझते हैं कि उनसे आत्मा आक्रान्त होती है। अपने आपको ईश्वर अनुभव करो और अपने ब्रह्मत्वभाव में आनन्द के गीत गाओ। निन्दा और स्तुतियों को ठीक ऐसे समझो, जैसे राम शारीरिक व्याधियों को उस ईश्वरीय दरवार का चपरासी मानता है, जो सर्वोच्च अधिकार के साथ हमें यह आदेश दिया करते हैं, "तुरन्त इस मकान, शरीर-चेतना से बाहर निकल जाओ।" पर जब मैं स्वयं दरवार के राजसिंहासन पर जा विराजता हूँ तो वे झट से मेरे आज्ञानुवर्ती बन जाते हैं। और जब तक मैं इस अन्धगुफा रूपी शरीर-चेतना, देहाध्यास, में घुसा रहता हूँ तब तक वे कोड़े मारते और वार पर वार करते हैं।

वे राज्यसत्तायें भी, जिनके तथाकथित कानून 'त्रिशूल' के उस ईश्वरीय नियम से मेल नहीं खाते, स्वयं अपनी मृत्यु के लिए गड्ढा खोदती हैं। प्रसिद्ध कंजूस 'शाइलोक' की भांति अपनी व्यक्तिगत सम्पत्तियों पर जोर देना, इस या उस चीज को अपनी समझना,

सम्पन्नता की भावना रखना, यह कहना कि ऐसा करना कानून-सम्मत है, उस वास्तविक नियम का विरोध करना है जिसके अनुसार हमारा एकमात्र 'हक' केवल हक ईश्वर है और दूसरे सब हक मिथ्या, गलत हैं। यदि और कोई दूसरे इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं तो कम से कम संन्यासियों को तो अवश्य इसे अपने जीवन में उतारना चाहिए।

यह ईश्वरीय नियम सर्वव्यापक है, यह प्रत्येक मनुष्य के अस्तित्वमात्र की उच्चतम आत्मा है। इस रूप में वह स्वयं राम है। वही इस व्यक्तिगत आत्मा को ठोकरें मार-मार कर प्राणहीन कर देगा! वह निर्दय है किन्तु उसकी निर्दयता ही प्रेम का मूलस्वरूप है, क्योंकि इस दिखावटी आत्मा की मृत्यु से ही उस वास्तविक आत्मा और अनन्त, अनादि जीवन का पुनरुत्थान होता है। वह जो इस झूठी आत्मा से चिपटता है, जो इसके लिए परमात्मा—स्वामी आत्मा के विशेषाधिकारों का दावा करता है, एक दिन अवश्य ही मिथ्याहंकार की पहाड़ियों पर गिद्धों द्वारा हड़प किया जायगा, वेदान्त की स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि इस परिच्छिन्न स्थानीय आत्मा—व्यक्तित्व और शरीर—को उस ईश्वरीय नियम से मुक्ति मिल जाय। यह तो खुद खुदा को शैतान बना देना है। लाखों-करोड़ों जीवन प्रतिक्षण इस भूल के कारण नष्ट हो रहे हैं। हजारों मस्तिष्क निराशा के गर्त में डूब रहे हैं और हजारों-लाखों हृदय प्रतिक्षण उस 'ईश्वरीय नियम' के अज्ञानजनित विपर्यय से भग्नमनोरथ होते हैं। उस ईश्वरीय नियम से मुक्ति, स्वयं वही नियम बन जाने से ही मिल सकती है। दूसरे शब्दों में, केवल शिवोऽहम् का साक्षात्कार ही हमें वह मुक्ति दिला सकता है।

इन्द्रियों का शिकार, जो उन चीजों को गिनता रहता है जिन्हें तथ्य और आँकड़े कहते हैं, जो नाम–रूप के आधार पर अवलम्बित हैं, वह मानों बालू की दीवार पर खड़ा है, एक न एक दिन अवश्य

डूब जायगा। और वह सचमुच अटल आधारशिला पर खड़ा हुआ है जिसके हृदय के अन्तस्तल में—

ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या और त्रिशूल का नियम है जीती-जागती अनन्त शक्ति !

❀ ❀ ❀

वैदिक युग में किसी किसी अवसर पर क्वाँरी लड़कियां हाथ जोड़कर अग्नि के चारों ओर इकट्ठी होती थीं और उस ज्योति की परिक्रमा करती हुई ऐसा गीत गाया करती थीं–हे भगवन्, हम सब उस सुगन्धमय भगवान्, उस सर्वद्रष्टा भगवान्, उस पतिज्ञाता भगवान् की सेवा–पूजा में डूब जायें। जैसे बीज भूसी से अलग होता है, वैसे ही हम भी यहां (पितृ-गृह) के बन्धन से मुक्त हों किन्तु वहां (पति-गृह) से कभी भी पृथक न हों, कभी पृथक न हों।

वही प्राचीन आर्य-कन्याओं की प्रार्थना राम के अन्तस्तल से हृदय की गम्भीरतम गहराई से निकल रही है और आँसुओ! आंसुओ! तुम क्यों पागलों की भांति बहे जा रहे हो!

हे ईश्वर, हे त्रिशूल, हे सत्य! यह सिर और यह हृदय तुरन्त उसी क्षण अलग-अलग कर देना, यदि तेरे सिवा कोई अन्य सम्बन्ध उनमें निवास करे। ओ, शरीर के रक्त! तू भी तुरन्त जमकर पत्थर हो जाय, यदि तेरे विचार के अतिरिक्त और कोई विचार राम की नस-नाड़ियों में चक्कर काटे।

दूसरी श्रुति––

"जैसे स्त्री पुरुष से, वैसे ही मैं तुझसे दीक्षित हूँगा, मैं तुझे और और अपने पास खींचूंगा, मैं तेरे ओंठों को चूसूंगा। और तेरे अंग-अंग के गुप्त रसों को पियूंगा। ओ त्रिशूल! ओ नियम! ओ स्वतन्त्रते! मैं तुझी से गर्भ धारण करूंगा।"

क्या राम त्रिशूल के साथ नहीं ब्याहा गया? क्या सत्य के

साथ, नियम के साथ उसका विवाह नहीं हुआ, जो उससे अब भी पति-वंचका की भांति अन्य शंका की जाती है !

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई !"—मीरा बाई

❀ ❀ ❀

लोग भगवान् से प्रेम करने में झिझकते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि उससे हमें कोई वैसा प्रत्युत्तर नहीं मिलता, जैसा कि इन काल्पनिक संसार के प्रेम-पात्रों से मिलता है। यही बेवकूफी, यही अज्ञान उनको भ्रमाये रहता है। ऐ प्यारे ! देखो तो, उसका हृदय कैसे राम की श्वांस-प्रश्वांस के स्वर में तुरन्त ही, नहीं साथ ही साथ, प्रत्युत्तर के रूप में बराबर गिरता-उठता है।

अपने दिखावटी मित्रों और शत्रुओं में उनके व्यवहार का कारण ढूंढने की चेष्टा मत करो। वास्तविक कार्य-कारण तो एक मात्र तुम्हारी वास्तविक आत्मा में प्रतिष्ठित है। ध्यान से देखो तो सही !

जैसे, जब चिड़िया का बच्चा उड़ना सीखता है, तो पहले वह एक पत्थर से दूसरे पर, अथवा एक डाली से दूसरी डाली पर सहारा लेता है, किन्तु पृथ्वीतल के इन पदार्थों को छोड़कर वह नभ-मण्डल में उन्मुक्त हो विचरण नहीं कर सकता, उसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का शिशु किसी एक पदार्थ से अपनी हार्दिक आसक्ति हटा कर अथवा किसी व्यक्ति से घृणापूर्वक उपराम होकर तुरन्त किसी दूसरे पर अवलम्बित हो जाता है। वह उसी प्रकार के किसी दूसरे भ्रम का पल्ला पकड़ लेता है किन्तु इन तिनकों और नाजुक बेलों का सहारा छोड़ना पसन्द नहीं करता। वह अपने हृदय में एक साथ सम्पूर्ण पृथ्वी का त्याग नहीं कर पाता। किन्तु वह जो अनुभवी तथा ज्ञानी है, एक ही पार्थिव पदार्थ के प्रत्यक्ष विश्वासघात को ब्रह्म में निमग्न होने का साधन बना लेता है। धर्म की कला इसी बात में है कि हम अपने प्रत्येक छोटे से छोटे अनुभव को उस अनंत

में निमग्न होने का साधन बना लें। बाहर दिखायी देने वाली वस्तुयें सब एक ही साथ जुड़ी हैं, एक वस्तु का बाह्यतः त्याग करते समय ज्ञानी अपने हृदय में उसे अन्य सब कुछ को त्यागने का चिह्न और प्रतीक बना लेता है।

घोरतम मूर्ख है वह जो सचमुच इस तीक्ष्णतम सत्य को स्वीकार नहीं करता कि एकमात्र इस स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व की मृत्यु ही जीवन का नियम, अटल विधान है। त्रिशूल हमारे व्यक्तित्वों का नाश करने वाला है। अपने हृदय से व्यक्तित्व की भावना को झाड़ देना, उस अनादि अनन्त जीवन में जागना ही वास्तविक पुनरुत्थान का मार्ग है। तू सदा उसी में निवास कर! अलबिदा!

ये वे कुछ पत्र हैं, जो उन्होंने भारतवर्ष में पर्यटन करते हुए विभिन्न लोगों को लिखे थे—

मुजफ्फरनगर
१८ अक्टूबर, १९०५

प्रियतम,

विशाल हृदय!

हाथों में लिपटी हुई राख हमारी चमड़ी को साफ कर देती है।

सो उन शारीरिक रोगों के भाग्य को कितना सराहा जाय, जब वे अपने साथ चर्म-चेतना, देहाध्यास, को भी बहा ले जाते हैं।

स्वागत! बीमारी और दर्द, स्वागत!

जितनी देर तक प्राणहीन मुर्दा घर में पड़ा हुआ है, तब तक हर एक प्रकार के संक्रामक रोग का डर बना रहता है। जब लाश हट गयी, स्वास्थ्य का अटल राज्य हो गया! ठीक इसी प्रकार जब तक शरीरचेतना का प्यारा बना हुआ है तब तक संसार के हर

एक दुख-दर्द को आने का लालच रहता है। शरीर और उसके बोझ को उतार फैंको, तुरन्त तुम शाहों के शाह बन जाओगे।

कितना प्रसन्न मैं !

ईर्ष्या-द्वेष मिटे सभी, प्रिय का प्रियतम अब मैं—

मिटे पाप—पश्चाताप !

भूत और भविष्यत् अब कुछ पास नहीं !

मुझे सब खुश करते, सुख देते हैं,

इतना पवित्र, इतना प्रसन्न

मैं आज बना ! मैं आज बना !

विद्वान महात्मा, जिनके सिर पर लम्बे बाल खड़े हैं और शोभनीय तोंदें हैं,

चश्माधारी प्रोफेसर जो सीधे-सादे विद्यार्थियों को प्रयोगशाला और वेधशाला में चमत्कृत करते हैं,

नंगे सिर वाले व्याख्याता जो मंच या सिंहासन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते हैं,

वह दरिद्री श्रीमान् भी जिसे किसी न किसी प्रकार की शिकायत बनी रहती है—

मैं ये सब हूँ,
मैं गगन और मैं हूँ तारे,
हैं दूर-निकट के विश्व सभी
मेरे उस स्वर में बँधे हुए
मैं जिसे गुनगुनाया करता हूं।
कोई प्रतिस्पर्द्धी शत्रु नहीं,
अब हानि-कष्ट व्यापते नहीं
नुकसान करेगा क्या कोई ?
वह अमृतात्मा धारा बनकर
मेरी प्रिय आत्मा में मिलती।

ओ, सच्चा स्वास्थ्य यही तो है !
कलकल करने वाले झरनें,
खुशियाँ भरने वाले सपनें,
रावण हो या हो राम,
मुझे सब खुश करते, सुख देते हैं ।
इतना पवित्र, इतना प्रशान्त ।
मैं आज बना ! मैं आज बना ।

राम

ओम्

आनन्द ! कल्याण ! शान्ति ! प्रेम !

परम कल्याणमयी प्रियतम आत्मन्,*

तीन महीने से राम एक पहाड़ की चोटी (लगभग८०००फुट) पर संसार के सर्वोच्च शिखर माउण्ट ऐवरेस्ट के सामने रहता है ! परसों वह नीचे मैदान में उतरेगा। पांच पुस्तकें लिखी गयीं और बीस पुस्तकें पढ़ी गयीं।

राम का हृदय शान्ति और आनन्द से परिपूर्ण है।

मानो मन में संसार ही बिदा हो गया !

ईश्वर, केवल ईश्वर
सर्वत्र, स्थान-स्थान पर
भीतर और बाहर
पास और दूर !
ओ आनन्द !
उत्तेजक शान्ति
हलचल रहित आनन्द
दिव्य स्वर्ग !

शान्ति ! आशीर्वाद ! प्रेम !

---

*मिसेज ह्विटमैन के नाम।

स्वास्थ्य, आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सभी चिर-भिलषित कल्याण गिरिजा को, चम्पा को और तुम्हारे सब प्यारों को !

वर्षा की बूँदों में झरती है शान्ति अमर
सुधाधार गिरती है स्वर की वर्षा बन कर
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम !
घन ये गौरवशाली उड़ते आनन्द भरें
विश्व नये, हीरक कण जैसे ये बूंद झरें
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम !
मेरी यह नियम-वायु बहती संगीत भरी
झरती उससे हैं राष्ट्रों की पत्ती पँखुरी
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम !
मेरी ही साँसें हैं इस जग का नियम-पवन
बहता है जो सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम
उसमें वस्तुयें जगत की हिलती ज्यों टहनी
और कुछ गिरा करती ओस, बूंद बनकर ज्यों
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम !
मेरी गौरवशाली ज्योति श्वेत सागर है
या कि दुग्ध महासिन्धु लेता है हिलकोरें,
उठती ऊर्मियां यहाँ लघु-लघु कोमल कोमल
फिर करता गर्जन शतधा हो-होकर गिरता
बरसाता मैं हूं तारे जैसे फुलझड़ियाँ
रिमझिम, रिमझिम, रिमझिम ।
ओम् ! ओम् ! ओम् !
शान्ति ! कल्याण ! प्रेम ! आनन्द !

(दारजिलिंग पार्श्व)

परम कल्याणमयी परमात्मन्,

शायद तुम्हें यह ज्ञात होगा कि राम मसूरी से लगभग एक हजार मील दूर पहाड़ों में निवास करता है । राम एकदम अकेला एक पुराने मकान में रहता है, जो बंगाल के 'जंगल विभाग' का है। ओ कैसा दिव्य स्थान, रेल से दूर, डाकखाने से पृथक, मिलने-जुलने वाले आगन्तुकों की पहुंच से बाहर, संसार के सुन्दरतम दृश्यों से घिरा हुआ, पास ही में छोटी-छोटी क्रीड़ाशील जलधारायें और निर्झर स्वच्छ वायुमण्डल में कुछ दूरी पर संसार के सर्वोच्च शिखर 'माउण्ट ऐवरेस्ट' का पूर्ण दिग्दर्शन ! यहां पर भी जंगल के निवासी पहाड़ी राम के लिए ताजा-ताजा दूध ले आते हैं। जंगलों के विच-रण एवं अध्ययन में राम का समय बीतता है।

भला, उस नाम-धाम, इच्छा, यश, धन और साफल्य को लेकर क्या होगा "जब जंगलों में भगवान् का साक्षात् दर्शन होता हो।" क्यों हम करने-धरने के ताप से आक्रान्त हों और उसे प्यार करें ?

राम तो ईश्वरमय रहेगा। प्रातः कालीन समीर चलती है, उसे परवाह नहीं, कितने और किस प्रकार के फूल खिलते हैं उससे? वह तो केवल यत्र-तत्र स्पन्दन करती है। जो कलियां वयस्क होती हैं, झट से अपनी आँखें खोल देती हैं। सिंह की माद, जंगलों की ज्वाला, अंधी गुफायें, भूकम्प के धक्के, गिरती हुई चट्टानें, तूफान, युद्ध-क्षेत्र और निगलने वाली कब्रें—यदि उनके साथ ईश्वर चेतना--- 'ब्रह्म भाव' स्थिर रह सकें तो वे उस यश, वैभव, तड़क-भड़क, सिंहासन, आमोद-प्रमोद और अन्य समस्त गौरवों से बढ़कर, कहीं बढ़कर हैं, जिनके साथ मनुष्य अपनी पूर्णता में नहीं रह पाता, अपने हृदय के एकान्त में परमात्मा के साथ, अद्वितीय के साथ नहीं रम पाता। ओ, सारे काम पूरे होने की खुशी, हलके पैरों से पर्यटन,

कदम-कदम अपनी यात्रा का अन्तिम लक्ष्य, हर एक रात्रि शारीरिक मृत्यु और एक दिन एक नया जन्म !

अलबिदा ! ऐ साथियो, नमस्कार !
यह सृष्टि-महल है लघु, अति लघु ।
मैं ले निज प्यार, दूर इससे जा खेलूंगा
ओ साथ-साथ वह जलक्रीड़ा । आनन्द परम ।
पर नहीं, साथ क्या ?
तैराकों की खुशी सिन्धु लहरों में घुल-मिल जाती है !
आनन्द ! आह्लाद ।
ओम्

तुम्हारा अपना आप ओम्

(ये पत्र राय साहब बैजनाथ को लिखे गये थे ।)

ॐ

वशिष्ट आश्रम
२७ मार्च १९०६

परम कल्याणमय भगवन् !

यह आश्रम हिम-रेखा के ऊपर है । एक अत्यन्त सुन्दर निर्झर–वशिष्ट नामक गंगा–ठीक राम की गुफा के नीचे बहती है । निर्झर में पांच-छः जल प्रपात हैं । निर्झर की घाटी में मानो शिव ने स्वयं अपने हाथों से कठोर चट्टानों को तोड़-फोड़कर प्रायः दो दर्जन सुन्दर तालाबों का निर्माण किया है । पहाड़ियों पर जंगल के वे सीधे-सादे प्रकाश–प्रेमी, विशालकाय वृक्ष तने खड़े हैं जिनकी हरियाली उस समय भी कम नहीं होती, जब कि छः-छः फुट ऊंची बर्फ की तहें उनके ऊपर जम जाती हैं । वही निस्सन्देह उस महान् बनमाली कृष्ण की दया और प्रेम के सर्वथा योग्य पात्र हैं ।

भगवान् महादेव के बच्चे–कोमल-हृदय पक्षि और हरितस्कन्ध वृक्ष ही–यहां राम के एकमात्र साथी हैं। नारायण स्वामी नीचे मैदानों में भेज दिया गया है। कम से कम दो वर्ष तक उसे राम से भेंट न करने की आज्ञा हुई है। एक नवयुवक आकर प्रतिदिन भोजन बना जाता है और रात्रि किसी समीपवर्ती ग्राम में काटता है। सबसे समीपवती ग्राम भी यहां से तीन मील से कम दूर नहीं।

पहाड़ियों पर केवल आध मील चढ़कर राम इस पर्वत (वसून) की चोटी पर पहुंच जाता है, जहां से सभी पवित्र हिमस्रोत–– केदार, बदरी, सुमेरु, गंगोत्री, यमुनोत्री और कैलाश, स्पष्ट दृष्टि-गोचर होने लगते हैं।

'केदार खण्ड' में इस स्थान का सविस्तार वर्णन है। 'योग वाशिष्ट' के निर्माता ने आश्रमपाद के लिए ऐसा ही उपयुक्त स्थान चुना था। बड़ा भाग्य है, कि अभी तक इधर कोई बस्ती अथवा सड़क नहीं निकली है। मस्ती, आनन्द ! राम के आनन्द के बारे में मत पूछो ! राम की सर्वश्रेष्ठ कृति, कुछ वर्षों के अनन्तर नीचे मैदानों में प्रकाशन के हेतु भेजी जायगी, उसी से राम के हृदय में न समाने वाली आह्लादकारक शान्ति का कुछ अनुमान हो सकेगा ! कृपया उस समय तक कोई राम से भेंट करने की बात न सोचे–

ईश्वर परमात्मा ही एक मात्र सत्य है।

—— ——

रात्रि में यदि प्यारे से भेंट न हुई,
तो फिर आँखों की ज्योति मेरे किस काम की ?
जो पड़ा सो रहा हो निष्प्राण कब्र में—
उसे भला क्या मिलेगा—
कब्र के ऊपर की हरी-भरी घास से ?
भला या बुरा लोग क्यों कहते हैं,
मेरे बारे में ?

जब शरीर से ऊपर उठ गया मैं—
तब उनकी प्रसन्नता और रोष
सब हो गया बेकार न !
पाप और पुण्य भलाई अथवा बुराई
हैं सब उसके पास पहुंचने के जीने।
लगा दो, आग उस जीने में
अब मुझे उतरने की इच्छा ही नहीं !
ओ दुनियाँ, तेरा तुझ को दे दिया,
फिर जाती क्यों नहीं तू ?
मुझे तेरी जरूरत नहीं।
अब नहीं करूंगा तेरी आवभगत !
लो, नाचूंगा, अब तो अपने प्रभु के साथ,
न कोई लाज, और न कोई रोक,
व्यर्थ है जीवन (जहाँ ब्रह्म की श्वांस नहीं)
कब्र में कीड़े चुन-चुन खा जायेंगे,
और कहाँ है वह कब्र, इस शरीर के अतिरिक्त
यह जीवात्मा भी धोखा निकली,
ओ हो ! अब तो कृपा करके
भगा दो, उड़ा दो उसे—
सदा के लिए !

आपका प्रयाग कुम्भ के अवसर पर दिया व्याख्यान एक दम बढ़िया रहा। राम ने उसकी एक प्रति टेहरी–महाराज को भेंट की, प्यारे, सुनो, वेदान्त कोई धोखाधड़ी नहीं है और न कहीं कोई इस संसार का अस्तित्व ही है। वह जो इसे सत्य मानता है, अवश्य नष्ट होगा। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। निश्चय ! निश्चय ! निश्चय से ! ओम् ! ओम् !! राम

ॐ

वशिष्ठ आश्रम
जून का अन्त, १९०६

ब्रह्मभाव में स्थित होने पर यह सारा संसार ही सौन्दर्य का स्फुरण, आह्लाद का प्रकाश, आनन्द की बाढ़ सा बन जाता है। जब दृष्टि की ससीमता नष्ट हो गयी तब फिर हमारे लिए असुन्दर कुछ भी नहीं रह जाता। सारा संसार ही निर्मल और सुन्दर हो उठता है। प्रकृति की शक्तियाँ सचमुच हमारे हाथ-पैर और अन्य इन्द्रियों की भाँति काम करने लगती हैं।

आत्मा ही आनन्द है, वही सब कुछ है। अतः आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है कि हम अपनी ही आत्मा को सच्चिदानन्द रूप मानें, जो सम्पूर्ण संसार के परदों में झांकी मार रहा है।

अखिल ब्रह्माण्ड, मेरी ही आत्मा का स्थूल रूप होने के कारण अत्यन्त मीठा, स्वयं साक्षात् माधुर्य है। फिर मैं किसे दोष दूं? और किसकी आलोचना करूँ?

ओ परम मुख! सब कुछ मैं ही तो हूं। ओम्!

सफलता और विफलता (अभाव) के विषय में आध्यात्मिक नियम बिल्कुल स्पष्ट है। वेदों ने उसे किस सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—जहाँ किसी ने अपने हृदय के अन्तस्तल में छोटी-बड़ी किसी वस्तु पर अपना दिल जमाया, उसे सत्य माना, अपने विश्वास के योग्य समझा, बस, अनिवार्यतः या तो वह पदार्थ उसे छोड़ जायगा, या देगा धोखा। यह नियम गुरुत्वाकर्षण के नियम से भी अधिक ठोस, अधिक सत्य है। एकमात्र सत्य-स्वरूप आत्मरूप भगवान् हमें मार-मार कर संसार की अनित्यता का पाठ पढ़ाया करता है जिससे हम किसी भी वस्तु को सत्य मानकर कभी उसके भ्रम में न पड़ें।

कोई वस्तु, कोई वैचित्र्य—

ज्ञानी को बन्द नहीं कर सकता, भीतर—अज्ञान में
किन्तु सर्वोपरि सूर्य की भांति वह तो
दुर्ग पर विजय पाकर निश्चय
चमकेगा भीतर और बाहर।
आकाश की भाँति वह स्थिर रहेगा,
जिसमें बादल आते-जाते हैं,
जो अनादि दिवस के साथ रहता है सदा एकरस
उसमें कभी—
क्या कोई अन्तर आता है कभी ?

जब तक किसी भी प्रकार की कोई इच्छा या वासना मनुष्य के हृदय में वास करती है, तब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता, नहीं हो सकता ! अटल सत्य, ध्रुव नियम !

सत्रहवाँ परिच्छेद

उनके देश की समस्या : भारतवर्ष पर उनके विचार

अमरीका से लौटने पर स्वामी राम भारतवर्ष की सभी प्रकार की समस्याओं पर—धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों पर निरन्तर अपने महाप्रयाण के अन्तिम दिन तक बराबर कुछ न कुछ लिखते और बोलते रहे। वे अपने देशवासियों में एक नया दृष्टिकोण, एक नयी स्फूर्ति भर देना चाहते थे—वह यह कि किस प्रकार लोगों को भारतीय नागरिक के नाते अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। इसी हेतु उन्होंने अपने मौलिक व्याख्यान—'सफलता के रहस्य' को अनेक लेखों, अनेक पुस्तकों में फैलाया है।

संसार के सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में से वेदान्त का सिद्धान्त जिसे स्वामी राम ने और उनसे पहले स्वामी विवेकानन्द ने प्रचारित किया, ऐसा सत्य और दिव्य है कि उसके यथार्थ चिन्तन और मनन से छोटे से छोटे और बड़े से बड़े साधक को अपने आध्यात्मिक पथ में उत्तरोत्तर उन्नति करने में समुचित सहायता मिल सकती है। स्वामी राम और स्वामी विवेकानन्द साधु थे, पर पुराणपंथी नहीं। उन्होंने वेदान्त पर आधुनिक ढंग से विचार किया था। उनके लिए सारा विश्व और उससे भी परे सारा ब्रह्माण्ड केवल एक आत्मरूप था। उनकी इस विचार-धारा ने संसार के साधारण जीवन को एक दिव्य आध्यात्मिक धरातल प्रदान किया था, और उसे बनाया था आत्मा के प्रस्फुरण का साधन। उसके अनुसार मनुष्य अपने झूठे अहंकार के मोह से ऊपर उठकर परिवार-प्रेम,

देश-प्रेम, मनुष्य-प्रेम—यथार्थ में विश्वप्रेम में विचरता हुआ सच्ची आत्मा-परमात्मा के साक्षात्कार में अग्रसर होता है।

इस नूतन दृष्टिकोण के सौंदर्य ने, जो इन दो मेधावी महात्माओं ने उपनिषदों के दर्शन को प्रदान किया था, लोगों को अपनी ओर खींचा और कई एक भारतीय मस्तिष्कों को जो जीवन का सदैव और सर्वत्र आध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं, उनके संदेश से आगे बढ़ने की उत्प्रेरणा भी मिली।

इस दृष्टि से स्वामी राम के कुछ प्रसिद्ध लेख 'आलोचना और विश्वप्रेम' 'यज्ञ के मंतव्य' 'भारत के नवयुवको से' 'उन्नति का निश्चित विधान' 'नकद धर्म' और अनेक स्फुट लेख आधुनिक भारत के राष्ट्र उन्नायक साहित्य के एक सर्व-श्रेष्ठ विचार-प्रवीण अंग कहे जा सकते हैं। कुछ भी हो, उनके शब्दों में सर्वत्र एक दिव्यानन्द की पुट भरी हुई है। लो, वे स्वयं अपने को, अपने आप को भारतवर्ष के रूप में अनुभव करते हुए सबको आह्वान करते हैं:—

और फिर लिखते हैं—

भारतवर्ष मेरा शरीर है। कोमोरिन मेरे पैर और हिमालय मेरा सिर है। मेरी जटाओं से गंगा बहती है और मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिंध निकली हैं। विन्ध्याचल मेरी ही कमर की पेटी है। कोरोमण्डल मेरी बांयी और मालाबार मेरी दाहिनी टांग है। मैं सम्पूर्ण.......समूचा भारतवर्ष हूं। पूर्व और पश्चिम हिमालय मेरी बाहें हैं, जिन्हें मैंने मानव-समाज को आलिंगन करने के हेतु फैला रखा है। मेरा प्रेम सार्वभौमिक है। ओ, मेरे शरीर की आकृति कैसी है। मैं खड़े होकर अनन्त प्रकाश पर दृष्टिपात कर रहा हूं। मेरी अन्तरात्मा विश्वात्मा है। जब मैं चलता हूं, तो लगता है जैसे भारत चल रहा है, जब बोलता हूँ तब लगता है कि भारत बोल रहा है। जब श्वांस लेता हूँ तब भारत ही श्वांस लेता है। मैं

भारतवर्ष हूं, मैं शंकर हूं! मैं शिव हूं! यही देशभक्ति का सर्वोत्तम साक्षात्कार है। यही है व्यावहारिक वेदान्त!

ओ अस्ताचलगामी सूर्य! क्या तू भारतवर्ष में उदय होने जा रहा है? क्या तू दया करके राम का यह संदेश उस पुण्य और प्रताप की भूमि तक न पहुंचा देगा? ओ, मेरे प्रेम के अश्रु-विन्दु तुम भारत के खेतों में प्रातःकालीन ओस-कण बन जाओ! जैसे शैव शिव को पूजता है, वैष्णव विष्णु को, बौद्ध बुद्ध को, ईसाई ईसा को, मुसलमान मुहम्मद को, उसी प्रकार जलते हुए हृदय की लौ के साथ मैं अपने भारतवर्ष को एक शैव, वैष्णव, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, संन्यासी, शूद्र —सभी छोटे-बड़े भारतवासी की स्थिति से देखना और पूजना चाहता हूं। ऐ भारत-माता! मैं तेरे सभी रूपों, सभी प्रादुर्भावों का उपासक हूं। तू ही मेरी गंगा, मेरी काली, मेरा इष्टदेव, मेरा शालिगराम है। उपासना के बारे में उपदेश करते हुए वे भगवान्, जिन्हें इस पुण्यभूमि की मिट्टी खाने से बड़ा प्रेम था, कहते हैं "जो अपना दिल उस अव्यक्त परमात्मा में लगाते हैं, उनका मार्ग बड़ा दुष्कर होता है, क्योंकि सचमुच शरीरधारी को निराकार, अव्यक्त के पथ पर चलना बड़ा कठिन है।" ऐ मनमोहन श्री कृष्ण! तुम्हारी आज्ञा शिरोधार्य! मुझे भगवान् के उस साकार रूप की ही पूजा का मार्ग ग्रहण करने दो जिसकी सम्पत्ति के बारे में कहा जाता है कि एक बूढ़े बैल, एक टूटी खाट, एक पुरानी कुल्हाड़ी, धूनी की भस्म, सर्प और नरमुण्डमाला के सिवा उनकी गृहस्थी में कुछ और था ही नहीं! क्या ये महिम्नस्तोत्र के महादेव हैं? नहीं, नहीं, ये तो साक्षात् नारायणरूप भूखे भारतवासी हैं, उनकी सेवा प्रत्येक मनुष्य का धर्म, और भगवान् की भक्ति का सच्चा स्वरूप है। पर मौखिक अधूरे हृदय वाली भावनाओं अथवा सहानुभूति से काम नहीं चलेगा। राम तो भारतवर्ष के प्रत्येक बच्चे से सक्रिय सहयोग चाहता है कि वह राष्ट्रीयता के इस

गतिशील धर्म को फैलाने के लिए कटिबद्ध हो जाय। बच्चा युवावस्था को तब तक प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक वह पहले किशोरावस्था पार नहीं कर लेता। कोई व्यक्ति उस समय तक कदापि परमात्मा के साथ, उस अखिल आत्मा के साथ एकता का अनुभव नहीं कर सकता, जब तक संपूर्ण राष्ट्र के साथ एकता का भाव उसकी नस-नस में जोश न मारने लगे। लो, भारतवर्य का प्रत्येक सुपुत्र सम्पूर्ण भारत की सेवा के लिए सन्नद्ध हो जाय, क्योंकि अखिल भारतवर्ष उसके प्रत्येक पुत्र में मूर्तिमान हो रहा है। हमारे यहां प्रत्येक नगर, सरिता, वृक्ष, और शिला, यहां तक कि पशु भी देवता के रूप में माना और पूजा जाता है। क्या अब वह समय नहीं आया कि हम समूची भारत–भूमि को भगवती माता के रूप में पूजा के लिए तत्पर हो जायँ और उसका हर एक आंशिक प्रादुर्भाव हममें सम्पूर्ण भारत की भक्ति भर दे। प्राण-प्रतिष्ठा के द्वारा हिन्दू दुर्गा की मूर्ति को सजीव बना लेते हैं और उसे पूजते हैं। अरे क्या अभी समय नहीं आया जब हम भारत माता की जीती-जागती मूर्ति में प्राण और प्रकाश का संचार करें और उसके अप्रकट अन्तः गौरव को विकसित करने के लिए सन्नद्ध हो जायं। हम पहले अपने हृदय एक कर लें, फिर हमारे सर और हाथ-पैर, सब अंग-प्रत्यंग स्वयं एक होकर काम करने लगेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य अपनी श्रद्धा और विश्वास का पुतला है। जैसा जिसका विश्वास होता है, वैसा ही वह बन जाता है। ऐ प्यारे धर्मनिष्ठ भारतवासियो ! शास्त्रों को ठीक-ठीक बर्ताव में लाओ। देश का आपद्धर्म तुमसे यह मांग रहा है कि जाति-पाँति की कड़ी जंजीरों को ढीला करके आपस के उग्र भेद-भावों को राष्ट्रीय भावना के अधीन कर दो। कैसा आश्चर्य ! जिस भारत ने सारे संसार के भगोड़ों को अपने यहाँ शरण दी, और संसार की विभिन्न जातियों का पेट पाला, वही भारत आज अपने प्यारे पुत्रों

को सूखी रोटी देने में अशक्त हो रहा है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी उचित स्थिति प्राप्त करने के लिए पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। हमारे सिर चाहे जितने ऊँचे रहें, किन्तु पैर सबके एक समतल भूमि पर ही रहें। कभी किसी के कंधों और गर्दनों पर पैर धरने की इच्छा न करो, चाहे वह कितना कमजोर क्यों न हो, अथवा स्वयं तुम्हारे पैर दबाने के लिए राजी ही क्यों न हो।

❀ ❀ ❀

जब राम शूद्रों के परिश्रम का गुण-गान करता है, तो इससे यह प्रयोजन नहीं कि राम तमोगुण को रजोगुण और सतोगुण से अच्छा समझता है; वरन् असली तात्पर्य यह है कि भारत में चिर-काल से हम तमोगुण से घृणा करते आये हैं और घृणा की प्रति-क्रिया से ही हम में तमोगुण बेहद बढ़ गया है। अब हमें तमोगुण का उपयोग करना सीखना होगा। भला, बाग-बगीचे क्योंकर फल-फूल सकते हैं, यदि हम मलिन कूड़ा-कर्कट के खाद का सदुपयोग न करेंगे।

तमोगुण-रूपी कोयले के बिना रजोगुण-रूपी अग्नि एवं सतो-गुण-रूपी प्रकाश प्रकट नहीं हो सकता। जिस देश में कोई आन्दोलन उत्पन्न करना हो, तो उसमें तमोगुण-रूपी कोयला का संचय जितना अधिक होगा, उतनी ही रजोगुणी अग्नि और सात्विकी प्रकाश अधिक बढ़ेगा। मनोविज्ञान के अनुसार शूरवीरता, बहादुरी और चरित्र-बल के लिए केवल सदाचार और बौद्धिक शक्तियों का विकास ही पर्याप्त नहीं है, वरन् मनुष्य में तमोगुण अर्थात् पाशविक शक्ति भी प्रचुरता से होनी चाहिए। यही कारण है कि हिन्दू देवाधिदेव महा-देव जी को तमोगुण का पोषक और शासक मानते हैं।

यदि हम भारतवर्ष के इस विपत्ति-ग्रस्त समय में उत्पन्न हुए हैं, तो हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि हमको अपने स्वदेश के भाइयों की सेवा करने का सुन्दर सुअवसर मिला है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो बहुत सोता है, वह खूब जागता है।

भारतवर्ष खूब सोया, इसलिए इसकी जागृति भी अब विलक्षण होगी। अब हमें भारतवासियों में गुण-ग्राहकता, भ्रातृ-भाव, सहयोग की प्रवृत्ति, यथायोग्य कार्य-विभाजन और परिश्रम की महत्ता उत्पन्न करनी चाहिए; केवल छिद्रान्वेषण से काम बिगड़ेगा और फिर बिगड़ेगा, कभी सुधर नहीं सकता।

ओह! इस देश में कितनी अधिक शक्ति भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के परस्पर प्रत्यालोचना में नष्ट हो रही है। हमें उन सिद्धान्तों का पता लगाना चाहिए जिनमें हम सब सहमत हैं, और उन्हीं पर सर्वाधिक बल देना चाहिए। कुछ मनुष्यों पर आर्य-समाज का ही प्रभाव हो सकता है, सनातन-धर्म का नहीं; कई ऐसे हैं जिन्हें ब्रह्म-समाज ही अच्छा मालूम होता है; किसी को वैष्णव-धर्म ही प्यारा है। हमें क्या अधिकार है कि हम इस मत-वैचित्र्य को बुरा-भला कहें। जो हमारे साथ आना चाहते हैं, आवें; जो ठहरना चाहें, ठहरें और जो न ठहरना चाहें, न ठहरें। संसार कुछ कहे, हमें अपने काम से काम। हमें या तुम्हें क्या अधिकार है कि हर एक को अपने सम्प्रदाय में ही सम्मिलित कर लें। मेरा अधिकार तो प्रत्येक की सेवा करना है, उनकी भी सेवा जो मुझसे प्रेम करते हैं और उनकी भी जो मुझसे द्वेष करते हैं। माता उन्हीं बच्चों को अधिक प्यार करती है, जो अधिक दुर्बल और कृश होते हैं। क्या वे सब लोग जो तुमसे सहमत नहीं हैं, भ्रांति में पड़े हुए हैं? ऐसा ही हो, फिर भी हैं तो वे देश के आवश्यक अंग। सच्ची शिक्षा का अर्थ है कि हम प्रत्येक वस्तु को ईश्वरीय दृष्टि से देखें, सबको ईश्वर रूप समझें और सबसे अपना जैसा प्यार करें।

हमें अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक धर्म को कभी राष्ट्रीय धर्म से उच्च पद न देना चाहिए। हमें अपने हर एक कर्तव्य को उपयुक्त स्थान पर रखने से ही परम सुख प्राप्त होता है। राष्ट्र धर्म हमारा सर्वोपरि धर्म है। देश और राष्ट्र की उन्नति के लिए काम

करना ही आधिदैविक शक्तियों और देवताओं की पूजा करना है। आज भारतमाता के निमित्त इस प्रकार के यज्ञ या बलिदान की आवश्यकता है। आजकल गीता के निम्नलिखित श्लोक का यही अभिप्राय होना चाहिए—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ;
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।

जो मनुष्य यज्ञ से बचे हुए प्रसाद को खाते हैं, वे समस्त पापों से शीघ्र छुटकारा पाते हैं; किन्तु जो केवल अपने पेट को भरने के लिए ही पकाते हैं, वे पापी पाप को भोगते हैं।

❀ ❀ ❀

ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए, हमें संन्यासी भाव ग्रहण करना होगा। दूसरे शब्दों में स्वार्थ का पूर्ण त्याग करके अपनी क्षुद्र आत्मा को भारत माता की महान् आत्मा का अनुगत—सच्चा अनुगामी बनाना होगा। सच्चिदानन्द परमात्मा के अनुभव के लिए, हमें ब्राह्मणभाव ग्रहण करना होगा अर्थात् अपने मस्तिष्क को पूर्णतः राष्ट्र की उन्नति के विचारों में लगा देना होगा। सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिए हमें सच्चा क्षत्रियभाव ग्रहण करना होगा ; जिससे प्रेरित होकर हम प्रति क्षण देश के लिए जीवन उत्सर्ग करने को कटिबद्ध हो जायं। ईश्वर के साक्षात् अनुभव के लिए हमें सच्चा वैश्यभाव सीखना पड़ेगा जिससे हम सदा अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र की धरोहरमात्र मानने लगें। किन्तु आज इस लोक या परलोक में आनन्द और राम के अनुभव के लिए हमें अपने मानसिक विचार-प्रधान धर्म को व्यावहारिक स्थूल रूप देना होगा। हमें इस संन्यास-भाव को, इस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यभाव को क्रिया के रूप में परिणत करना होगा; उसे अपने हाथों-पैरों के द्वारा शारीरिक श्रम के कार्यों में व्यक्त करना होगा; जो किसी समय केवल पवित्र-हृदय शूद्रों का धर्म माना जाता था। आज संन्यासपूर्ण हृदय और अस्पृश्य करों का

का पाणिग्रहण हो । आज केवल, एक मात्र यही मार्ग है । जागो, उठो और आगे बढ़ो !

देखो, संसार के अन्य देश भी अपने व्यवहार के द्वारा हमारी भारत–भूमि को, संसार की एकमात्र 'ब्रह्मभूमि' को आज इसी व्यावहारिक धर्म की शिक्षा दे रहे हैं ।

जब कि एक जापानी नवयुवक को उसकी माता की सेवा में (गृहस्थ-धर्म) व्याघात होने के डर से सेना में भरती नहीं किया जाता, तो माता आत्म-हत्या कर लेती है । निम्न श्रेणी के (गृहस्थ) धर्म को उच्च श्रेणी के राष्ट्रीय धर्म की वेदी पर बलिदान करने से वास्तविक धर्म का पालन होता है ।

भला, उन तेजपुंज आदर्श-मूर्ति गुरु गोविन्द सिंह के त्याग का उदाहरण संसार में अन्यत्र कहां मिल सकता है, जिन्होंने राष्ट्रीय धर्म के पीछे व्यक्तिगत, गार्हस्थ और सामाजिक धर्मों का पूर्ण परि-त्याग करके आत्मबलिदान का महानतम आदर्श उपस्थित किया था ।

लोग शक्ति के पीछे पागल रहते हैं । एक बार अपनी आत्मा को समस्त राष्ट्र की आत्मा के साथ तदात्म तो कर लो और देखो, अनन्त शक्ति तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती है या नहीं ? अन्त में राम इस्लाम धर्म के पैगम्बर के सुन्दर शब्दों में इस भाव को दुहराना चाहता है—

"यदि सूर्य मेरी दाहिनी ओर खड़े होकर और चन्द्रमा मेरे बायीं ओर खड़े होकर मुझे लौटने का आदेश दे तो मैं कदापि उनकी आज्ञा नहीं मान सकता ।"·· ओम् ! ओम् !

हम रूखे टुकड़े खायेंगे, भारत पर वारे जायंगे ।
हम नंगे उमर वितायेंगे, भारत पर जान मिटायेंगे ।।
सब नाते-रिश्ते तोड़ेंगे दिल एक आतम संग जोड़ेंगे ।
सब विषयों से मुंह मोड़ेंगे, सिर सब पापों का फोड़ेंगे ।।

❀ ❀ ❀

कभी-कभी मौलिक अथवा लोकप्रिय बनने की इच्छा हमें सत्य के मार्ग से दूर हटा देती है। ऐसी किसी इच्छा के प्रलोभन में न पड़कर यदि हम शान्त चित्त से भारत की वर्तमान आवश्यकता पर विचार करें तो हमें अपने देश की उस दयनीय स्थिति को समझते देर न लगेगी कि हम लोगों में अनेक पीढ़ियों से एक ही पवित्र भूमि में रहने पर भी सहज स्वाभाविक भाई-चारे के सौहार्द का कितना अधिक अभाव है। एक प्रकार की धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता ने हमें मनुष्यता से नीचे गिरा दिया है और हम सब एक ही राष्ट्र के अंग हैं—इस विचार को हमारे भीतर कभी ठीक से पनपने ही नहीं दिया।

अमरीका में भी प्रायः उतने ही मत-पथ और सम्प्रदाय हैं जितने कि भारतवर्ष में। परन्तु वहां के लोगों में ऐसी धार्मिक कट्टरता और कटुता नहीं है कि वे मनुष्य-मनुष्य के बीच सहज प्रेम को ही भूल जायं। भारतवर्ष में मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ एक ही स्थान में रहते हुए अनेक पीढ़ियां बीत जाने पर भी उनकी हार्दिक सहानुभूति हिन्दुओं की अपेक्षा अरब देश के निवासियों के प्रति अधिक देखी जाती है। यदि हिन्दू माता-पिता का कोई बच्चा ईसाई हो जाता है तो फिर उन्हें उससे उतना भी प्रेम नहीं होता जितना कि एक पालतू कुत्ते से हो सकता है। सच पूछा जाय तो एकराष्ट्रीयता की सच्ची भावना हमारे लिए अभी कल्पना मात्र है। इसका कारण क्या है ? कारण स्पष्ट है, हम धर्म के पवित्र नाम पर प्राचीन काल से चले आ रहे बहुत से रीति-रिवाजों, विश्वास और अंधविश्वासों, विचार और अविचारों से इस बुरी तरह चिपटे हुए हैं, मानो ये अटल सत्य हैं, उनमें कभी कोई परिवर्तन या संशोधन हो ही नहीं सकता।

इस आत्मघातक कट्टरता से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है कि लोगों को आधुनिक विज्ञान की विधिवत् शिक्षा दी जाय,

जिसके प्रयोगात्मक परीक्षणों के द्वारा उनका मानसिक क्षितिज कुछ व्यापक हो और यथार्थ प्राकृतिक ज्ञान के प्रति उनमें सच्ची उत्सुकता जाग्रत हो। अभी तो अंधविश्वास की पराकाष्ठा यहां तक बढ़ गयी है कि बच्चे को यह बताने के पहले कि वह एक मनुष्य है, यह सिखाया जाता है कि वह हिन्दू है, वह मुसलमान है, वह ईसाई है। वस्तुस्थिति यह है कि प्रायः प्रत्येक भारतवासी अपने धर्म की मोटी-मोटी बातें जानने के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के विषय में कुछ भी नहीं जानता। हां, यह बात उसके हृदय में अवश्य जमा दी जाती है कि दूसरे धर्म उसके धर्म के विपरीत हैं। इस अज्ञानजनित बुराई को दूर करने के लिए राम का प्रस्ताव है कि स्थान–स्थान पर ऐसे साधन–मठ स्थापित किये जायं, जहां लोग––जिज्ञासु और साधक–संसार के सभी धर्मों और दर्शनशास्त्रों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। परस्पर लड़ने-झगड़ने वाले प्राचीन और अर्वाचीन धर्मों एवं दर्शनों का यह अध्ययन पूर्ण निष्पक्षता और गम्भीरता से होना चाहिए––एक न्यायाधीश या पंच के दृष्टिकोण से। यद्यपि प्रत्येक विद्यार्थी प्रारम्भ में अपने ही अनुकूल ग्रन्थों का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करेगा, परन्तु समय-समय पर सब अपनी अनुभूतियाँ सबके समक्ष प्रकट किया करेंगे और एक विद्वान आचार्य को उनका समन्वय करना होगा, जिससे किसी विद्यार्थी के हृदय में पक्षपात अथवा दुर्भावना का अंकुर न जमने पाये। मठ में इस प्रकार के बौद्धिक तथा सामाजिक सहयोग से अध्ययन की उपयोगिता भी बढ़ जायगी और विद्यार्थियों के हृदय में उदारता की श्रीवृद्धि भी होगी।

इस मठ में धर्मों और दर्शनों के सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान की सभी शाखाओं जैसे भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-विज्ञान, प्राणिशास्त्र, भूगर्भ-विद्या, ज्योतिष आदि सभी विज्ञानों के अध्यापन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए और इसके लिए मठ में एक विशाल पुस्तकालय, एक सुसज्जित

प्रयोगशाला, वैज्ञानिक वेधशाला का भी प्रबन्ध होना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने से अंधविश्वास और अंधश्रद्धा में धीरे-धीरे कमी होने लगती है और विचार-शक्ति तीक्ष्ण हो जाती है।

इस साधना-मठ में (१) धर्मों और दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन (२) आधुनिक भौतिक विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ (३) एक विभाग भी होना बहुत आवश्यक है और वह है ललित-कलाओं और उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध। यदि मनुष्य का केवल बौद्धिक विकास हो और वह विज्ञान किसी प्रकार व्यवहार में प्रयुक्त न किया जाय, तो ऐसी उन्नति अन्त में एकांकी और निरर्थक ही सिद्ध होती है।

अन्त में यह प्रस्तावित साधना-मठ या जीवन-मठ—सर्वथा सार्वभौमिक होगा, चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, उसमें सब का एक समान स्वागत होगा। हां, मठ का एक ही संकल्प और एक ही आदर्श होगा—सत्य, सम्पूर्ण सत्य और केवल सत्य। सत्य की शोध और सत्य का प्रयोग।

* * *

हमें स्वयं अपनी समस्यायें हल करनी होंगी, अतः हमें उन पर अपने प्राचीन परम आदरणीय ऋषि-मुनियों की दृष्टि से देखने की अपेक्षा स्वयं अपनी आखें खोलकर देखना चाहिए। परिवर्तन, शाश्वत परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। कल हम जीवन के जिस आचरण पर एकमत हुए थे, आज हमें उस पर पुनर्विचार करके देखना होगा कि उसमें क्या परिवर्तन होना चाहिए। नियम और संस्थायें मनुष्य के लिए होती हैं, मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिए नहीं होता।

सत्य को किसी के आगे झुकने की आवश्यकता नहीं। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती रहे, सूर्य क्यों किसी की परिक्रमा करने लगा! क्या गणित के किसी नियम अथवा रसायन-शास्त्र के

किसी वैज्ञानिक प्रयोग की सच्चाई ईसा मसीह, मुहम्मद, बुद्ध या वेदों के प्रमाण से घट-बढ़ सकती है ? सत्य तो वह है जो तीनों कालों—भूत, वर्तमान, और भविष्य में सदा एक सा स्थिर रहे ।

प्राचीन काल में हमारे देश में यज्ञों का चलन था । क्या हमें फिर उन यज्ञों का प्रचार करना चाहिए ? हवन यज्ञ का एक आवश्यक अंग है । कुछ लोग सोचते हैं कि हवन से वायु शुद्ध होती है और सुगन्ध फैलती है । पर इस कल्पना में कुछ दम नहीं । सुगन्ध से निस्संदेह क्षणिक सुखद उत्तेजक स्फूर्ति मिलती है, पर सभी उत्तेजकों का अनिवार्य परिणाम होता है शैथिल्य । इसके सिवा सुगन्ध तो हवन का एक अत्यल्प अंश है, उसके द्वारा अधिकांश में कारबन डाइओकसाईड गैस पैदा होती है जो एकदम हानिकारक है । इस समय भारत की एक मात्र आवश्यकता है ओक्सीजन और ओजोन की, जो हवन से नहीं मिल सकती ।

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि हवन की रासायनिक क्रिया से वायु पर जो प्रभाव पड़ता है, ठीक वही परिणाम लोगों की जठराग्नि को तृप्त करके पैदा किया जा सकता है । अतः हवन की कृत्रिम अग्नि के मुख में वहुमूल्य घी जलाने के स्थान में भारत के हजारों-लाखों भूखे किन्तु जीवित नारायणों की जठराग्नि की तृप्ति के लिए रूखी-सूखी रोटी जुटाना आज हमारी पहली आवश्यकता है ।

पर इस उदारता से भी काम नहीं चलेगा । यदि हमने एकदिन हजारों गरीबों को भरपेट खिला दिया तो उससे क्या ! भारतवर्ष में इतना दारिद्रय और दुख क्यों है—इसी विचारहीन दानशीलता से । दान ठीक है या नहीं- इसका निर्णय दाता की नीयत से नहीं, वरन् उसके परिणाम से किया जाना चाहिए । कोमल-चित्त यात्री भिखारियों को पैसा-दो पैसा देकर यह भले ही सोचा करे कि इस

दान का कुछ न कुछ प्रतिफल उसे स्वर्ग में अवश्य मिलेगा। वह मिले या न मिले। इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं कि इस प्रकार के दान से उसने राष्ट्र का थोड़ा-बहुत अहित अवश्य किया है।

दानों में सबसे बड़ा दान ज्ञान-दान है। तुम आज एक मनुष्य को भोजन कराओ, वह कल फिर वैसा हीं भूखा होगा। यदि तुम उसे कोई कला-कौशल सिखा देते हो, कोई ऐसी विद्या सिखा देते हो, जिससे वह आजीवन अपना भरण-पोषण कर सके, जिससे उसे सचमुच जीने का कुछ रस मिले, तो यही सर्वोत्तम दान है। इधर-उधर की गपशप छोड़कर यदि कोई जूता बनाने की कला को सीखता है, तो वह सचमुच अपना और अपने राष्ट्र का कल्याण करता है। प्रत्येक भारतवासी को उन सब की सेवा के लिए अपने ही बच्चों की तरह सेवा के लिए तैयार हो जाना चाहिए जो उससे धन-सम्पत्ति, शक्ति और विद्या की दृष्टि से निम्न श्रेणी के हैं। माता क्या अपने बच्चों की संभाल के लिए किसी पुरस्कार की मांग करती है। यही तो सच्चा निष्काम यज्ञ है।

संक्षेप में, यज्ञ का अर्थ है देवताओं को भेंट चढ़ाना और देवता का अर्थ है जीवन और प्रकाश देने वाली शक्तियां। अब यज्ञ में देवता को भेंट चढ़ाने का युक्ति-संगत अभिप्राय क्या हो सकता है। अपनी व्यक्तिगत क्षुद्र शक्तियों को तदनुरूप सार्वभौमिक शक्तियों की सेवा में अर्पण कर देना, जैसे इन्द्र देवता को भेंट चढ़ाने का अर्थ हुआ देश के समस्त हाथों की भलाई के लिए काम करना, आदित्य देवता की सेवा का अर्थ है सम्पूर्ण समाज की नेत्ररक्षा के लिए काम करना, चन्द्र की सेवा की सेवा का अर्थ है सभी मनों की भलाई के लिए काम करना, एक शब्द में देश-हित में अपनी भलाई समझना, अपनी छोटी आत्मा को देश की विशाल आत्मा से मिला देना, अपने पड़ोसी को अपना ही रूप समझना सब को

अपना ही रूप समझना। एक प्रकार से वेदान्त के सर्वोच्च सिद्धान्त 'तत् त्वम् असि' की व्यावहारिक जगत् में सिद्धि करना।

अब प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा ही यज्ञ करना होगा होगा। यही हमारा सार्वभौमिक धर्म होना चाहिए। भारतवर्ष, इसे ग्रहण करो अन्यथा नाश को प्राप्त होगे। इस सत्य का कोई दूसरा विकल्प नहीं।

अठारहवां परिच्छेद

उनके देश की समस्या

(पूर्वानुगत)

रिसाला 'अलिफ' के प्रारम्भिक लेखों में भी हमें उनके आत्म-चिन्तन के बीच यत्र-तत्र अपने देश को दासता की मनोवृत्ति से ऊपर उठाने की एक तीव्र इच्छा अप्रकट रूप से काम करती हुई दिखायी देती है। हां, उसकी सिद्धि वे अपने समाधिजन्य ज्ञान की उस श्रेष्ठ आनन्दमय अवस्था के प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा ही करना चाहते थे। कुछ भी हो, ऐसा ज्ञात होता है कि लाहौर में स्वामी विवेकानन्द के साथ निजी सम्पर्क में आने के कारण देशोन्नति की यह इच्छा उनके हृदय में बलवती हो उठी और उसने उनके हृदय को अभिभूत कर लिया। इसके पूर्व, बचपन ही से वे अपने सम्पूर्ण अंतःकरण को फारसी और पंजाबी के संगीत से ओत-प्रोत तीव्र भावनामय काव्य में डुबोकर अलौकिक आनन्द की ओर बढ़ा रहे थे। और इसी आदर्श को उन्होंने अंग्रेजी के कला और विज्ञान विषयक साहित्य के प्रभाव से अपने जीवन का व्यावहारिक धर्म बना लिया था। पर अब हम उन्हें ठीक अपने आत्म-चिन्तन के बीच में ही अपनी प्यारी भारतमाता की स्वतन्त्रता की बात सोचते देखते हैं! सचमुच उन्हें मनुष्य की गुलामी से घृणा थी। वे सोचते थे—मनुष्य को नहीं, मनुष्य के भीतर ईश्वर को इस प्रकार पैरों तले रौंदना—ओह! इस आन्तरिक आतमा-परमात्मा की अवहेला को वे महानतम पाप मानते थे और 'अलिफ' में उन्होंने अपनी यही

शुद्ध और पवित्र भावना व्यक्त की है, जो एक प्रकार से भारतवासियों के लिए अपने आप को ऊपर उठाने का उनका कुछ प्रकट और कुछ अप्रकट प्रस्ताव है।

हम यह पहले देख चुके हैं कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उन्होंने भारतवर्ष के लिए बड़ा काम किया था। एक ओर उन्होंने 'अमरीकनों से अपील' जैसे अपने भाषणों में ब्रिटिश शासन की लूट-खसोटने वाली नीति की निन्दा की थी और दूसरी ओर अपने अनेक व्याख्यानों में अमरीकनों की सहायता से जाति-व्यवस्था के उन्मूलन के लिए प्रबल अनुरोध किया था। यह एक बड़ी विचित्र बात है कि अमरीका-प्रवास के समय उनके कार्यक्रम का मुख्य आधार था—'जाति-व्यवस्था का उन्मूलन' और भारतवर्ष में लौटने पर उनका यह विषय ही बदल गया। 'अछूतोद्धार' दूसरे शब्दों में, पददलित जातियों के उत्थान की बात छोड़कर यहां उन्होंने अपना ध्यान केन्द्रित किया—राष्ट्र-निर्माण और देश-भक्ति की विचार-धारा को परिपक्व करने पर, जिससे राष्ट्र-निर्माण की दिशा में काम करने वाले विविध आन्दोलनों में सहयोग और सामंजस्य स्थापित हो सकें। उन्होंने मुझ से कहा था कि पूना के एक वी० जी० जोशी ने राम को अमरीका में भारत के अर्थ काम करने के लिए, साहाय्य प्राप्त करने के हेतु प्रेरित किया था। इसी प्रकार भारतीय जाति-व्यवस्था के विरुद्ध अमरीकन पादरियों की उद्भावना ने स्वामी राम को वहां उसके विरुद्ध बोलने को उत्साहित किया था। उन्होंने बतलाया कि यह एक ऐसी प्रबल बुराई है जिसने सारे देश को गुलाम बना डाला है। यद्यपि अमरीका और यूरोप में राष्ट्रीयता ही जिनका व्यवसाय है कारखानों के दरबे भी लोगों को आजकल वैसा ही परेशान और चिन्तित कर रहे हैं। कुछ भी हो, जाति-व्यवस्था के घुन ने कभी भी भारत के इतिहास में इतना क्लेश और संताप पैदा नहीं किया है, जितना उन देश के दरबों में देखा जाता है।

भारतवर्ष में भी ठीक वही दरबे अब फैक्ट्री-जीवन के बढ़ते हुए अत्याचार के कारण उत्पन्न किये जा रहे हैं।

भारतवर्ष में लौट आने पर हम देखते हैं कि राम शिक्षित भारतीयों की ओर देख रहे हैं। वे राष्ट्रीय प्रश्नों पर उनके दृष्टि-कोण को उपयुक्त दिशा में लगा देना चाहते हैं। वे एक ऐसे साहित्य के निर्माण की चेष्टा में थे जिसके द्वारा स्वदेश के प्रेम के आधार पर भारतवर्ष में काम करने वाले विभिन्न मनुष्यों, विभिन्न समाजों, विभिन्न सम्प्रदायों में उनके भेद-भावों के बीच एकता स्थापित की जा सके। और वे सब मिल-जुल कर काम कर सकें।

अब नीचे स्वामी राम के लेखों में से इस विषय के कुछ उद्धरण पाठकों की भेंट किये जाते हैं—

भारत की समस्या

एकता, एकता ! प्रत्येक व्यक्ति एकता की आवश्यकता का अनुभव करता है। सैकड़ों शक्तियां काम करती हैं, पर विभिन्न दिशाओं में। अतः परिणाम होता है शून्य। जब तक एक दिशा, एक लक्ष्य स्थिर न होगा, सब अपने-अपने स्थान से उसी निश्चित दिशा में प्रयत्न न करेंगे, तब तक उन्नति की आशा दुराशामात्र है। सर्वप्रथम हमें यह समझना होगा कि देश के हित में ही प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक हित सन्निहित है। हमारे देश में ऐसी एकता क्यों नहीं हो पाती, इसके दो बड़े कारण हैं—(१) व्यावहारिक बुद्धि या सूझ-बूझ का दारिद्रय और (२) जनसंख्या का बाहुल्य।

व्यावहारिक बुद्धि का दारिद्रय

सच पूछा जाय तो व्यावहारिक बुद्धि की कमी ने ही भारत को पतन के गर्त में ढकेला है। व्यावहारिक बुद्धि के अभाव ने ही हमारे समाज में बहुत सी बुराईयां और कुरीतियां पैदा कर दी हैं, जैसे अपने

हाथ से काम करने को बुरा समझना, वर्णों और जातियों में दिन-प्रतिदिन भेदों और उपभेदों की वृद्धि, विदेश-यात्रा का निषेध, बाल-विवाह, स्त्रियों की बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों का ह्रास। इन सामाजिक अनाचारों को दूर करना बड़ा कठिन कार्य है। चिरकाल से चली आरही कुरीति को मिटाकर उसके स्थान में किसी उपयोगी परम्परा को स्थापित करना कोई आसान बात नहीं है। अच्छा तो, इन सामाजिक झंझटों में न फंस कर हम केवल अपने ही सुधार और विकास के लिए क्यों न उद्योग करें। समाज धीरे-धीरे सुधरता रहेगा, हमें अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। ओह, यदि कहीं ऐसा सचमुच संभव होता! पतनोन्मुख समाज कभी तुम्हें ऐसी स्वतन्त्रता नहीं दे सकता। यदि वह डूबेगा, तो तुम्हें भी अपने साथ ले डूबेगा और यदि समाज उन्नति करता है, तो तुम भी उसके साथ उन्नत होगे। कोई मनुष्य अपूर्ण समाज में पूर्णता को प्राप्त कर सकता है—ऐसा सोचना मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि व्यक्ति और समाज यथार्थ में दो नहीं, वरन् अभिन्न हैं।

ऐ भारत के होनहार नवयुवको! भारत का भविष्य तुम्हारा भविष्य है। उसका भविष्य बनाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। बहुमत का जादू, बहुमत का पिछलग्गू बनना कायरों का काम है। जिसने सच्चा आत्मिक बल प्राप्त किया है, वही मनुष्यों के हृदय और बुद्धि को सही दिशा दे सकता है। बी०ए० या एम०ए० की उपाधियां तुम्हें विश्वविद्यालय से मिलती हैं, पर तुम वीर बनोगे या कायर, इसका निर्णय तुम्हें स्वयं करना होगा। शताब्दियों पर शताब्दियां बीतती जाती हैं और हमारा देश अंधविश्वास-जन्य रीतिरिवाजों के दलदल में अधिकाधिक फंसता जाता है। ऐ सुसंस्कृत चरित्रवान नवयुवको, अब यह तुम्हारा उत्तरदायित्व है कि तुम अपने पैतृक रीति-रिवाजों में से अन्धविश्वास के कूड़ा-कर्कट को निकाल बाहर करो, केवल प्राचीन होने के कारण कोई पद्धति लाभकर नहीं हो सकती। तुम्हें

अपने सामाजिक व्यवहार में विचारशीलता का समावेश करना होगा। न तो यह मानना ही ठीक हो सकता है कि हमारी प्राचीन संस्कृति आदि से अन्त तक गलत है और न यह धारणा ही सत्य कही जा सकती है कि हमारी प्राचीन संस्कृति को ज्यों का त्यों अक्षुण्ण रखना चाहिए, क्योंकि वह धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित है। प्राचीन समय और वर्तमान समय में बड़ा अन्तर हो गया है। हमें सभी भीतरी और बाहरी परिस्थितिथों पर वैज्ञानिक ढंग से विचार करके अपने सामाजिक व्यवहार को उपयुक्त दिशा देनी होगी और उसे आवश्यकतानुसार गतिशील बनाना होगा। एक शब्द में, तुम्हारा व्यवहार सत्य, केवल सत्य पर आधारित होना चाहिए।

ऐ नवयुवको, सत्य के आग्रह को कभी न छोड़ना। क्या तुम सोचते हो कि इस प्रकार के सत्याग्रह से समाज में फूट फैलने की आशंका हो सकती है। हो, भले हो। पर तुम्हें कदापि सत्य से विचलित नहीं होना है। यही सच्ची मनुष्यता है। देश और राष्ट्र यदि एक ऐसे पथ पर एकमत होता है जो सत्य पर नहीं, असत्य पर, भलाई पर नहीं, बुराई पर निर्भर है तो क्या तुम राष्ट्र के कल्याण की आशा करते हो ? मान लो, यदि किसी जहाज के सभी मल्लाह एक ही दिशा में खे रहे हैं, पर वह दिशा गन्तव्य स्थान के विपरीत है तो क्या मल्लाहों की इस प्रकार की एकता वांछनीय कही जा सकती है ? सत्य और पवित्रता के ऊपर आधारित एकता ही श्रेयस्कर और अनुकरणीय होती है। राष्ट्रीय एकता की कामना वालो, पहले तुम्हें अपने समाज से अनेकानेक अमानवीय बुराईयों को दूर करना होगा। यदि इस परिष्कार में समाज को कष्ट होता है, कार्यकर्त्ता दण्डित किये जाते हैं, तो क्या, यह तो जीवन का लक्षण है। सत्याग्रह पर आधारित संघर्ष से ही देश के आध्यात्मिक जीवन का पता चलता है। शान्ति अपेक्षित है, शान्ति आदर्श है, पर क्या हमें कब-रिस्तान जैसी शान्ति चाहिए, हम जीवित शान्ति चाहते हैं, मुर्दा

शान्ति नहीं। सत्य के संघर्ष में अशान्ति हो तो हो, जीवन में सर्व-प्रथम आवश्यकता सत्य की है, न कि तमोगुण की, जिसे शान्ति का नाम दिया जाता है। जहां लोग अंधकार में ठोकरें खा रहे हों, वहां अपने प्रकाश को छिपा कर रखना, अशान्ति के डर से चुप बैठना पाप है। देश सत्यव्रती छोटे लोगों से बलशाली होता है, न कि संघर्ष के समय चुप होकर बैठने वाले बड़े लोगों से !

जनसंख्या की समस्या

इस पृथ्वीमण्डल पर भारतवर्ष के समान न कोई देश दरिद्री है और न कोई ऐसा जनसंकुल। एक साधारण भारतीय परिवार सारे भारतवर्ष की दशा का परिचायक है। एक तो परिवार की आय इतनी कम कि सदा तंगी बनी रहती है, दूसरे प्रतिवर्ष खाने वालों की संख्या में दो-एक की वृद्धि और तीसरे समाज के दबाव से व्यर्थ के रीतिरिवाजों और कष्टकर उत्सवों में घोर अपव्यय। मनुष्यों की बात छोड़िये, गाय जैसा सीधा पशु भी यदि पशुशाला में घास तो दस-पाँच के लिए पर्याप्त न हो और वहाँ सौ-दो सौ बन्द कर दी जायँ, तो आपस में अवश्य लड़ मरेंगी। लड़ाई की जड़ को तो मिटाना नहीं और लोगों को शान्ति का उपदेश देना सचमुच उपदेश का उपहास करना है। भारतवासी निस्संशय शान्तिप्रिय और सज्जन हैं, पर जब शरीर की अनिवार्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति न हो सके, तो वे ईर्ष्या और स्वार्थ से कैसे बच सकते हैं। यदि जनसंख्या की समस्या हल न हुई तो राष्ट्रीय एकता और सौहार्द्र की बात कल्पना मात्र है। प्राणिशास्त्र का भी यही सिद्धान्त है कि यदि समाज की सामान्य परिस्थिति में लोग नित्य कष्ट और क्लेशों से कराहते रहते हैं तो सहानुभूति और सदाशयता कभी उस समाज में नहीं फूल-फल सकती। अब भारत की दशा पर विचार करें। क्या प्रत्येक भारतीय नागरिक बिना दूसरों से टकराये अपने समृद्धि के पथ को प्रशस्त

बना सकता है ? जहाँ एक के इच्छानुसार खाने से दस को भूखों रहना पड़े, वहाँ क्या सचमुच शान्ति और विश्रान्ति हो सकती है ? हमें समाज में ऐसा सांमजस्य लाना होगा कि प्रत्येक को अपनी उन्नति के लिए यथेष्ठ अवसर और अवकाश मिले। यदि हम ऐसा नहीं कर सकते तो याद रखिये हमें महर्षि वशिष्ट की भविष्यवाणी के अनुसार अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकम्प, युद्ध और संक्रामक रोगों का सामना करना और अन्त में नाश को प्राप्त होना होगा।

इस दुर्दशा से छुटकारा पाने के लिए कुछ उपाय हो सकते हैं। जैसे—

(१) यह अशुभ विचार कि विदेश-यात्रा करने से मनुष्य के लिए स्वर्ग का द्वार बन्द हो जाता है, सदा के लिए छोड़ देना चाहिए। और फिर आज जो भारतवासी देखें कि वे दूसरों को धक्का दिये बिना अपनी उन्नति नहीं कर सकते, उन्हें सुविधानुसार दूसरे देशों में बस जाना चाहिए। इस प्रकार वे अपना भी भला करेंगे और भारतवर्ष का भी।

(२) एक समय था, जब भारतीय आर्य बहुसन्तान को अपने लिए वरदान रूप मानते थे। पर अब समय बदल गया, परिस्थितियाँ सर्वथा विपरीत हो गयीं, आज बहुसन्तान वरदान के स्थान में अभिशाप हो रही है। उस विचारहीन मनुष्य को जो सोचता है कि उसकी सन्तान मरने के बाद उसे स्वर्ग पहुंचायगी, आँखें खोल कर देखना चाहिए कि क्या वह बहुसन्तान के द्वारा इस भारतभूमि को नरक नहीं बना रहा है। बहुसन्तान के अभिशाप को दूर करने के लिए हमें वर्तमान विवाह-प्रथा में सुधार करना होगा। विवाह के लिए लड़के-लड़कियों की आयु क्या हो ? उनका स्वास्थ्य कैसा हो ? उनका स्वभाव और रुचियां कैसी हों ? इन सब बातों पर हमें वैज्ञानिक ढंग से विचार करना होगा। आज हमारे देश में लाखों की संख्या में बाल-विवाह हो रहे हैं और हजारों बाल-

विधवायें आजीवन रोने के लिए बाध्य की जा रही हैं। क्या तुम में मनुष्यता का अणुमात्र शेष है? क्या संसार के किसी सभ्य देश में ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं? यदि नहीं, तो अपने समाज से ऐसी अमानवीय और अप्राकृतिक रीति-रिवाजों को हटाने के लिए क्यों नहीं उठ खड़े होते हो?

हर्बर्ट स्पेंशर ने अपने प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तों में यह सिद्ध किया है कि ज्यों-ज्यों मनुष्य का मानसिक स्तर ऊँचा होता जाता है त्यों-त्यों सन्तानोत्पत्ति की मात्रा कम होती जाती है। हमारे धर्म-शास्त्र भी ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते नहीं थकते। मनुष्य की शक्ति का जो अपव्यय काम-वासनाओं की तृप्ति में किया जाता है, यदि उस अपव्यय पर नियंत्रण किया जा सके, तो वह शक्ति 'ओज' में आध्यात्मिक शक्ति के अक्षय भण्डार में परिणत हो जाती है। वह सचमुच कितना मूर्ख है जो अपनी काम-वासना पर अंकुश न लगा कर अधाधुंध रीति से अपने वीर्य को नष्ट करके स्वयं अपनी मृत्यु का आह्वान करता है।

ब्रह्मचर्य, पवित्रता, तुम्हें इनकी साधना करनी होगी अन्यथा नष्ट हो जाओगे। चाहे यह काम कठिन हो या आसान, भारतवर्ष की भलाई के लिए, अपने धर्म की रक्षा के लिए, स्वयं अपने तन-मन के अभ्युदय के लिए तुम्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा। पवित्रता के बिना, न वीरता आ सकती है और न एकता और न शान्ति हो सकती है।

(३) शिक्षा—आजकल के सभ्य देशों में शिक्षा और संस्कृति के प्रचार का एक सर्वोत्तम माध्यम है वहां के सस्ते दैनिक समाचार-पत्र। वहां ज्ञान का उतना प्रसार वहाँ के विद्यालयों द्वारा नहीं होता, जितना कि उन्नत समाचार-पत्रों द्वारा। भारतवर्ष में भी हमें शिक्षा-प्रचार के लिए इसी माध्यम का सहारा लेना चाहिए। किन्तु सबसे पहले हम अपने हृदय में मातृभाषा के प्रति प्रेम जाग्रत करना

होगा। अच्छा हो, 'यंगमेन्स इण्डियन एसोशियन' ही सबके समझने योग्य सरल हिन्दी में एक सामयिक पत्र निकाले, जिसमें फारसी या संस्कृत के शब्दों का समावेश न हो। इस काम में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को आगे आना चाहिए। अपनी पाठ्य पुस्तकें पढ़ते समय ज़ो उदात्त भावनायें और प्रौढ़ विचार उनके सामने आवें उन्हें छोटे-छोटे लेखों द्वारा जनता तक पहुँचाना चाहिए। लेखन-शैली अपनी निजी स्वाभाविक हो, जैसा सोचो, वैसा ही लिखो। यदि भारतवर्ष को जीवित रहना है तो निरक्षर पुरुषों के ज्ञान-बर्द्धन के साथ-साथ स्त्री-शिक्षा के लिए देश में व्यापक आन्दोलन होना चाहिए। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति इस पुण्य कार्य के लिए आगे आवे और प्रण करे कि अपने प्रदेश में किसी भी गरीब स्त्री-पुरुष को निरक्षर न रहने देंगे। देश के मुख पर से निरक्षकता का यह कलंक सदा के लिए धुल जाना चाहिए। क्या तुम्हें अपने पड़ोस की भंगिन को पढ़ाने में लज्जा का अनुभव होता है। तब तो तुम्हारी संस्कृति और तुम्हारे चरित्र को धिक्कार!

इस व्यापक शिक्षा-प्रचार के उद्देश्य से जो सामयिक पत्र निकाले जायँ, उनमें धीरे-धीरे भौतिक विज्ञान, रसायन-विद्या, प्राणिशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीति आदि सभी शास्त्रों और विज्ञानों के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का समावेश होना चाहिए और ज्यों-ज्यों पाठकों की योग्यता बढ़ती जाय, त्यों-त्यों उनकी बारीकियां भी साहित्यिक भाषा से समझानी चाहिए। इन पत्रों के लिए राम 'हिन्दी' भाषा का ही प्रस्ताव करता है, क्योंकि अनति-दूर काल में हिन्दी ही देश की राष्ट्रभाषा होने वाली है। यह तो साक्षरता के प्रसार की बात हुई। इसी के समकक्ष एवं एक और अधिक महत्वपूर्ण कार्य तुम्हें सम्पादन करना होगा, तभी तुम जन्मभूमि के ऋण से उऋण होगे और वह है आजकल संसार के सभ्य देशों में वैज्ञानिक ढंग से कृषि-विज्ञान, उद्योग-धंधों और कला-कौशल में जो उन्नति हो रही

है, उस विज्ञान को प्राप्त करके भारत के गांव-गांव में बिखेर देना होगा, जिससे हमारा भारत भी अन्य देशों की तुलना में समृद्ध और धनधान्यपूर्ण हो सके।

(४) धर्म—अन्त में, राम को अपने देशवासियों से एक सबसे अधिक आवश्यक बात कहनी है। वह यह कि चाहे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा कोई और कर्तव्य हो, जब तक तुम्हारा हृदय आत्म-विश्वास की ज्वाला से आलोकित एवं तुम्हारी बुद्धि आत्मज्ञान की आभा से प्रकाशित न हो, तब तक कोई भी कार्य सही अर्थों में सम्पन्न नहीं हो सकता। धर्म के नाम पर ऐसे आदेश, यह करो, यह न करो, तो हमारे जीवन के शरीर जैसे हैं और आत्म-विश्वास तथा आत्मज्ञान वास्तविक आत्मस्वरूप है। संसार में तुम्हें ऐसे बहुत से पुरुष मिल सकते हैं, जो नास्तिक कहलाने में गर्व का अनुभव करते हैं और जो अपने कार्य में सफल भी होते हैं, पर यदि ध्यान से उनके जीवन को देखा जाय तो वे अज्ञात रूप से उसी सच्चे धर्म का पालन करते हैं जिसे वे वाह्य रूप से अस्वीकार करते हैं। इसीलिए चाहे काम व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक, राजनैतिक हो, जब तक आन्तरिक हृदय आत्मविश्वास से आलोकित नहीं होता, तब तक उसकी सफलता में संदेह रहता है। विश्वास, आत्मविश्वास हमारे जीवन का संचालक है। राष्ट्र का जैसा विश्वास होता है, उसी के अनुसार उसका इतिहास फलता-फूलता, उन्नत और गतिशील होता है। और यह आत्मविश्वास कब प्रकट होता है, जब हम शरीर, मन, बुद्धि आदि से ऊपर उठकर अपनी आत्मा की अजरता, अमरता में विश्वास करते हैं।

जिसे वास्तव में महान् कहना चाहिए, वह सदा हृदय के अन्तस्तल से ही उद्भूत होता है। जो अपनी आत्मा की दिव्यता में पूर्ण विश्वास नहीं करता या थोड़ा-बहुत विश्वास करने पर उसमें पूर्णता के लिए सचेष्ट नहीं होता, वह चाहे जहां रहे, चाहे जैसे

वैभव और भोग-विलास में मौज करे, वस्तुतः वह तो नगण्य और मृतक समान है। एकमात्र आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी द्वैतात्मक चेतना के धरातल से ऊपर उठें, अपनी आत्मा की गहराई को समझें और फिर उसी अद्वय आत्मा का अनुभव करते हुए उसके साथ पूर्णतः एक हो जायँ, तब हम समझेंगे कि जो आत्मा हमारे प्राणों का प्राण, हमारे हृदयों का हृदय है, वही आत्मा प्रकृति के इस वाह्य वैचित्र्य में भी निवास करती है......'तत् त्वम् असि' जो मैं सो तू और जो तू सो मैं।

भारतवर्ष

कोई मनुष्य उस समय तक परमात्मा के स्वरूप के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारने लगे।

देश की आधी से अधिक जनता तो भूखों मर रही है और शेष स्पष्टतः फिजूलखर्ची, आवश्यकता से अधिक सामान, सुगन्ध की शीशियों, ऊपरी चमक-दमक, मिथ्या गौरव, और सभी प्रकार के व्ययसाध्य आमोद-प्रमोद, झूठी शान और कुरुचिपूर्ण दिखावटों के तले दबी पड़ी है।

भारतीय राजा और भारतीय अमीर अपने सारे बहुमूल्य रत्नों और शक्तियों को खोकर खाली लम्बी-चौड़ी उपाधियों, और बेमतलब की पदवियों से युक्त 'गलीचे के शेर' मात्र रह गये हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए देशभक्ति का अर्थ है भूतकाल के लुप्त गौरव पर निरन्तर सोच-विचार में डूबे रहना। ये दिवालिये साहूकार अपने उन बही-खातों की गहरी देखभाल किया करते हैं, जो वस्तुतः बेकार हो गये हैं।

ऐ नवयुवक भावी सुधारक ! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थनिष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नये-नये बीज बोने से भारतवर्ष के मनुष्य एकता प्राप्त नहीं कर सकते।

क्षुद्र अहंकार को त्याग कर और इस प्रकार देश के साथ तदात्म होकर आप जो ध्यान करेंगे, देश आपके उस ध्यान में आप का साथ देगा। आप आगे बढ़ो, तो आपका देश आपके पीछे-पीछे चलेगा, अवश्य चलेगा।

उन्नति के लिए वायुमण्डल तैयार होता है सेवा और प्रेम से, न कि विधिनिषेधात्मक आज्ञाओं और आदेशों से।

जो मनुष्य लोगों का नेता बनने के योग्य होता है, वह अपने सहायकों की मूर्खता, अपने अनुगामियों की विश्वासघातकता, मानव जाति की कृतघ्नता और जनता की गुण-ग्राहक-हीनता की कभी शिकायत नहीं करता।

पूर्ण प्रजातंत्र शासन, समता, बाहरी सत्ता का भार उतार फेंकना, धन एकत्र करने के व्यर्थ भाव को दूर रखना, समस्त असाधारण अधिकार को परे फेंकना, बड़प्पन की शान को ठुकरा देना, और छुटपन की घबराहट को उतार डालना—यही भौतिक क्षेत्र में व्यावहारिक वेदांत है।

मत-मतान्तरों की साम्प्रादायिकता ने मनुष्य के मनुष्यत्व को मेघाच्छादित कर डाला है और उनके सर्व-सामान्य स्वदेशाभिमान को ग्रहण लगा कर ग्रस लिया है।

जिन्हें भूल से तुम 'पतित' कहते हो, वे अभी "उठे नहीं" है। वे अभी उसी प्रकार के विश्वविद्यालय में आगन्तुक विद्यार्थी हैं, जिस प्रकार किसी समय तुम भी थे।

झूठे राजनीतिज्ञ शक्ति के भावों को जाग्रत किये बिना ही, अर्थात् स्वतन्त्रता और प्रेम के भाव को लाये बिना ही राष्ट्र को उन्नत करने की बात सोचा करते हैं।

अमरीका और यूरोप का उत्थान ईसा के व्यक्तित्व के कारण से नहीं हुआ है। उन्नति का असली कारण तो अज्ञात रूप से वेदांत

का आचरण हुआ है। भारतवर्ष का पतन भी आचरण में वेदांत के अभाव से ही हुआ है।

विदेशी राजनीति से बचने का एकमात्र उपाय है आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विधान को अपनाना अर्थात् अपने पड़ोसी से प्रेम करने के नियम को जीवन में उतारना।

हिन्दुओं में हमको नुक्ताचीनी का भाव जाग्रत नहीं करना है, किन्तु जाग्रत करना है गुण-ग्राहकता, भ्रातृत्व की भावना, समन्वय की बुद्धि, कार्यों और श्रम के गौरव में सहयोग।

तुम अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण राष्ट्र और प्रत्येक वस्तु के समक्ष दृढ़ता-पूर्वक प्रतिपादन करो।

राम तुम्हें यह बतलाना चाहता है कि तुम्हारे धर्म-ग्रंथों में यज्ञोत्सव के अवसर पर जो देवताओं के प्रकट होने की बात लिखी है—वह अक्षरशः सत्य है। किन्तु यह तो केवल सामूहिक एकाग्रता की शक्ति का महत्व है। मनोविज्ञान के आधुनिकतम शोधों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि एकाग्रता का प्रभाव एक ही अवसर पर उपस्थित एकहृदय मनुष्यों की संख्या के वर्ग के अनुपात में बढ़ता है। इसीलिए हमारे यहां सत्संग की इतनी महिमा गायी गयी है।

जन साधारण में और विशेष कर स्त्री और बच्चों में (इसीलिए आगामी पीढ़ियों में) प्रेम और ऐक्य पैदा करने का एक प्रभावशाली उपाय नगर-कीर्तन भी हो सकता है, जिसमें सम्मिलित होकर लोग निर्भयता से गाते-बजाते और नाचते हुए अपने नगर के कोने-कोने में सत्य की घोषणा कर दें।

सभ्य समाज में स्त्री को निर्जीव पदार्थ का दर्जा दिया जाता है। पुरुष अपने कामों में सर्वथा स्वतंत्र है, स्त्री के हाथ-पाँव कसकर जकड़े हुए हैं। वह आज एक पुरुष की सम्पत्ति है, तो कल दूसरे पुरुष की बन जाती है।

सभ्य समाज के मुख पर यह बड़ा भारी कलंक है कि 'स्त्री' व्यापार की चीज बनी हुई है। और जिस प्रकार पेड़, घर, या धन-धाम मनुष्य की सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार स्त्री भी मनुष्य की सम्पत्ति और उसके अधिकार में मानी जाती है।

स्त्रियों, बालकों और श्रमजीवी जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखाओं को काट गिराना है, जिनके आश्रय पर हम खड़े हुए हैं। नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही घातक कुठाराघात करना है।

सिर में दर्द कौन पैदा करता है ? कमर क्यों झुक जाती है ? छाती में धड़कन कैसे पैदा होती है ? पैरों के बदले सिर के बल चलने से। देखो, तुम्हारे पैर सदा पृथ्वी पर जमे रहें और तुम्हारा सिर वायु (परमानन्द) में लहराता रहे। अन्यथा उस दैवी विधान की अवज्ञा होगी। अपने सिर पर पृथ्वी का भार उठाना और उसे बुद्धिमानी का जीवन कहना ? उस दिव्यात्मा, परमात्मा की अपेक्षा नाम-रूप दृश्य जगत को कदापि अधिक महत्व मत दो।

अन्त में एक अमरीकन विद्वान का कथन—

"मैंने मनुष्यों पर और संसार की वस्तुओं पर विचार किया है, खूब ही विचार किया है—

और जैसा मेरे काका कहा करते थे—

कि यदि प्रार्थना के साथ-साथ, हाथ में हाथ मिलाकर लोग काम नहीं करते, तो फिर उनकी प्रार्थना से लाभ ?

यदि तुम किसी को चाहते हो और उस पर अपना दिल लगाया है तो क्या अपनी दोनों आंखें भिगोकर उसके लिए रोते-धोते ही रहोगे ?

आंसू बहाने से काम न चलेगा, उसके लिए बहाना होगा पसीना—श्रमजनित स्वेद !

यही शिक्षा तो मेरे काका मुझे दिया करते थे।"

बाह्य परिस्थिति के अनुरूप निर्भीक एवं यथार्थ क्रियाशक्ति का होना बुद्धिमानी का यथार्थ लक्षण है। आवश्यकतानुसार काम करने की योग्यता का न होना पागलपन की निशानी है। प्रकृति का कठोर नियम सब के सिर पर है—'बदलो या मर मिटो'। आगे बढ़ते हुये समय के साथ हाथ में हाथ मिलाकर चलो और मात्र इसी उपाय से तुम जीवन-संग्राम में विजयी हो सकते हो।

भारतवर्ष ! प्रकृति के इस आदेश को नोट कर लो।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

कवि के रूप में स्वामी राम

उनकी कविताओं का छोटा सा संग्रह

मनुष्य की जीवन-धारा त्रिवेणी रूप है। किसी में क्रियाशीलता और किसी में विचारशीलता अधिक होती है और कोई विशेष भावापन्न होते हैं। पर राम के अनोखे जीवन में ये धारायें समान वेग से प्रवाहित होती दिखायी देती हैं। विद्यार्थी-जीवन में गणित के अध्ययन में वे अपने शरीर की सुधि-बुधि भूल जाते थे, भगवान् कृष्ण के प्रेम की चर्चा करते ही उनकी आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाती थी और वेदान्त जैसे गहन दर्शन पर प्राचीन परिपाटी के अनुसार अध्ययन के साथ उन्होंने उसे अपने निजी वैज्ञानिक ढंग से आत्मसात किया था।

राम को कविता से बड़ा प्रेम था। बचपन में ही उन्होंने उर्दू, फारसी, हिन्दी, पंजाबी की पचासों कवितायें कंठाग्र कर ली थीं। स्वयं उन्होंने उर्दू में जिन कविताओं का सृजन किया है, वे सब अद्वैतपरक हैं, उनमें आत्मानुभूति का आह्लाद फूटा पड़ता है। वे अपनी ही आत्मा को प्रियतम के रूप में संबोधन करके उसके प्रेम में इच्छानुसार मौजें लूटते हैं। उनकी मस्ती निराली है। उर्दू भाषा के अतिरिक्त उनके हार्दिक भावोद्रेक अंग्रेजी भाषा में भी कविता के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। पर ऐसी प्रायः सभी कवितायें अमरीका-प्रवास के समय लिखी गयी हैं। इनके विषय में मिस्टर एण्ड्रूज लिखते हैं—उनके भीतर का उल्लास वह चीज है, जो उनकी कविताओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र लहराता दिखायी देता है। इतना ही नहीं, उसके द्वारा

हमारे हृदयों में भी उनके उसी उन्मुक्त अट्टहास की एक सूक्ष्म प्रति-ध्वनि जाग उठती है। और जैसा मैं पहले कह चुका हूं कि उनकी कविताओं की बाह्य रूप-रेखा चाहे कहीं-कहीं कुछ ऊबड़-खाबड़ और खुरदरी भले ही दिखायी दे, पर उसमें हमें उनकी अन्तरात्मा के सहज ही दर्शन हो सकते हैं।

अब स्वयं अपने अनुभव के विषय में जब मैं नवयुवक और नये-नये साधु वेष में था और जब मैंने टोकियो में सर्वप्रथम उनकी कविता सुनी थी तो उनकी कविताओं की रूप-रेखा में कोई दोष देखना तो दूर, मैं उनके भावों को शब्दशः पीने लगा था जैसे हम सूर्य-ताप को ग्रहण करते हैं। क्योंकि उस समय उनकी भीतरी आत्मा मेरे सारे हृदय में ओत-प्रोत हो रही थी, जिसके तारों को उनके शब्द आते, छूते और झनझना देते थे।

उनके काव्य की आत्मा सब से अधिक उनके पत्रों में व्यक्त होती है, जो इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर दिये गये हैं। व्यापक रूप से उनकी आत्मा हृदय के मधुर संगीत की भांति उनके अमरीकन सम्भाषणों में भी यत्र-तत्र बिखरी दिखायी देती थी, जो उन्होंने हृदय के उद्‌गारों के रूप में ही सुनाये थे। उनके इस गद्य से जो उन्होंने लिखा नहीं, बोला था, उस आत्मा को ढूंढ निकालना कुछ कठिन नहीं है; पर, जैसा मिस्टर एण्ड्रूज कहते हैं, उनका सर्वश्रेष्ठ महत्व उनके भीतर बहने वाली इसी काव्यधारा में हैं, उनकी यह काव्यधारा उनके भारतीय विषयों पर—लिखे हुए निबन्धों में कुछ सुसंस्कृत, कुछ बौद्धिक और कुछ भारी-भारी सी हो उठी है। जो हो, कम से कम मुझे तो इन पिछली कृतियों में उनके प्रारम्भिक उद्‌गारों और संगीतों का वह प्रकाश, वह उफान नहीं मिलता, जो 'अलिफ' में था और जो उनके अमरीकन व्याख्यानों और कविताओं में तैरता-सा फिरता है।

[१]

निजानन्द

तमाम दुनियाँ है खेल मेरा, मैं खेल सब को खिला रहा हूं।
किसी को वेखुद[1] बना रहा हूं, किसी को गम में रुला रहा हूं ।।
अबस[2] है सदमा[3] भले-बुरे का, हो कौन तुम और कहां से आये ।
खुशी है मेरी, मैं खेल अपना, बना-बना के मिटा रहा हूं ।।
फिरो हो रुये जमीं[4] पे यारो! तलाश मेरी में मारे-मारे।
अमल करो, तुम दिलों में देखो, मैं नहने-अकरब[5] सुना रहा हूं ।।
कभी मैं दिन को निकालूं सूरज, कभी मैं शब[6] को निकालूं तारे।
यह जोर मेरा है दोनों पावों को, मिस्ले-फिरकी फिरा रहा हूं ।।
किसी की गरदन में तौक लानत[7], किसी के सिर पर ताजे-रहमत[8] ।
किसी को ऊपर बुला रहा हूं, किसी को नीचे गिरा रहा हूं ।।

[२]

गजल भैरवी

शाहंशहे-जहान[1] है, सायल[2] हुआ है तू ।
पैदा[3] कुने-जमान है, डायल[4] हुआ है तू ।।

---

१. आत्मा में लीन-मस्त, २. व्यर्थ, ३. चोट, ४. पृथ्वी मण्डल, ५. शाहरग (कण्ठ) से भी अधिक समीप ईश्वर है, ६. रात्रि, ७. लानत की पट्टी, ८. कृपादृष्टि रूपी मुकुट ।

१. चक्रवर्ती राजा, २. भिखारी-मँगता, ३. समय का उत्पन्न कर्ता, ४. घड़ी का dial अर्थात् समय नापने का यंत्र ।

सौ बार गरज होवे तो धो-धो पियें-कदम[1]।
क्यों चर्ख[2], मेहरो[3]–माह[4] पै मायल[5] हुआ है तू ॥

खञ्जर की क्या मजाल[6] कि इक जख्म कर सके।
तेरा ही है खयाल कि घायल हुआ है तू ॥

क्या गदा-ओ-शाह[7] का राजिक[8] है कोई और।
इफलासो–तंगदस्ती[9] का कायल[10] हुआ है तू ॥

टाइम[11] है तेरे मुजरे के मौके[12] की ताक[13] में।
क्यों डर से उसके मुफ्त में जायल हुआ है तू ॥

हमबग्ल[14] तुझ से रहता है हर आन[15] राम तो।
बन परदा अपनी वस्ल[16] में हायल[17] हुआ है तू ॥

[३]

ज्ञानी की ललकार

बादशाह दुनियां के हैं मोहरे मेरी शतरंज के।
दिल्लगी की चाल हैं सब रँग सुलहो जंग के ॥
रक्से-शादी[18] से मेरे जब कांप उठती है जमीं।
देख कर मैं खिलखिलाता कहकहाता[19] हूं वहीं ॥

---

१. चरण, २. आकाश, ३. सूर्य, ४. चन्द्रमा, ५. मोहित, ६. सामर्थ, शक्ति, ७. फकीर-भिखारी और राजा, ८. अन्नदाता, ९. निर्धनता और तंगी, १०. सहने वाला, अधीन १०. Time काल, १२. अवसर की प्रतीक्षा में, १३. प्रतीक्षा में, १४. बगल में अर्थात अपने साथ, १५. हर समय १६. मिलाप, साक्षात्कार १७. दो के बीच रुकावट डालने वाला। १८. प्रसन्नता के नृत्य से, १९. खिलखिला कर हँसना।

खुश खड़ा दुनियां की छत पर हूं तमाशा देखता ।
गह[1] बगह देता लगा हूं वहशियों[2] की सी सदा[3] ।।
दौड़ कासिद[4] ! पर लगाकर, उड़ मेरी जां ! पेच खाकर ।
हरदिलो[5], हरजा में जाकर, बैठ जमकर, घर बनाकर ।।
"मैं खुदा हूं," "मैं खुदा हूं", राज[6] जां में फूंक दे ।
हर रगो-रेशे[7] में घुसकर मस्ती-ओ-मुल[8] झोंक दे ।।
गैर-बीनी,[9] गैर-दानी[10] और गुलामी, बन्दगी ।
मार गोले दे धड़ाधड़ एक ही एक कूक दे ।।
रोशनी पर कर सवारी, आंख से कर नूर-वारी[11] ।
हर दिलो-दीदा[12] में जा झंडा अलिफ[13] का ठोक दे ।।

[४]

फैंके फलक को तारे, सब बख्श दूंगा मैं ।
भर-भर के मुट्ठी हीरे, अब बख्श दूंगा मैं ।।
सूरज को गर्मी, चांद को ठंडक, गुहर[14] को आब[15] ।
यूं मौज[16] अपनी आयी, सब बख्श दूंगा मैं ।।
गाली, गलौज, झिड़की, तानें करूं मुआफ ।
बोली, ठठोली, धमकी, सब बख्श दूंगा मैं ।।
तारीफ से परे हूं, ऐबों से मैं बरी हूं ।
हम्दो, सना, दुआ[17] भी, सब बख्श दूंगा मैं ।।

---

१. कभी-कभी २. वनचरों, ३. घोषणा-आवाज, ४. संदेशा ले जाने वाला, ५. प्रत्येक चित्त और स्थान, ६. भेद, रहस्य, गुप्त, ७. नस और पुट्ठे, ८. मस्ती (निजानन्द) और शराब (ज्ञानामृत), ९. द्वैत-दृष्टि, १०. द्वैत-भावना, ११. नेत्र से आनन्द रूपी प्रकाश की वर्षा १२. दिल और नेत्र, १३. अद्वैत, १४. मोती; १५. चमक; १६. तरंग, १७. स्तुति ।

वाहिद[1] हूं, जाते मुतलक[2], यां इम्तियाज[3] कैसी।
औसाफ[4] को लुटा दूं, सब बख्श दूंगा मैं ।।
झगड़े, कुसूर, कजिए, अच्छे, बुरे खयाल।
जूं[5] ओस झट उड़ा दूं, सब बख्श दूंगा मैं ।।
मौजूद कुछ नहीं है मेरे सिवा यहां पर।
वहमे[6] दुई, गुमानो शक[7], सब बख्श दूंगा मैं ।।
अकलो कयास[8], जिस्मो-जां, मालो-दोस्तां।
कर राम पर निसार, यह सब बख्श दूंगा मैं ।।

[५]

अपने मजे की खातिर गुल[9] छोड़ ही दिये जब।
रूये जमी[10] के गुलशन मेरे ही बन गये सब ।। १ ।।
जितने जुबा[11] के रस थे, कुल तर्क कर दिये जब।
बस जायके जहां[12] के मेरे ही बन गये सब ।। २ ।।
अपने लिए जो छोड़ी ख्वाहिश[13] हवा-खुरी की।
वादे-सबा[14] के झोंके मेरे ही बन गये सब ।। ३ ।।
निज की गरज[15] से छोड़ा सुनने की आरजू[16] को।
अब राग और बाजे मेरे ही बन गये सब ।। ४ ।।
जब बेहतरी के अपनी फिक्रो-खयाल[17] छूटे।
फिक्रो-खयाल-रंगी[18] मेरे ही बन गये सब ।। ५ ।।

---

१. एक, २. वास्तविक तत्व, ३. विवेचना, अन्तर-भेद, फरक, ४. गुणों, ५. सदृश ६. द्वैत-भ्रम, ७. संशय और अनुमान, ८. बुद्धि और ख्याल, ९. फूल-पुष्प, १०. पृथ्वी भर के बाग, ११. जीभ, १२. संसार भर के १३. इच्छा, १४. पूर्वी वायु, १५. अपने स्वार्थ की दृष्टि से, १६. इच्छा १७. शोक-चिन्ता १८. आनन्ददायक या भांति-भांति के विचार।

आहा ! अजब तमाशा, मेरा नहीं है कुछ भी ।
दावा नहीं जरा भी, इस जिस्मो-इस्म[1] पर ही ।। ६ ।।
यह दस्तो-पा[2] हैं सब के, आँखें यह हैं तो सबकी ।
दुनियां के जिस्म लेकिन[3], मेरे ही बन गये सब ।। ७ ।।

[६]

ज्ञानी की सैर

यह सैर क्या है अजब अनोखा कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।
बगैर सूरत अजब है जलवा[4], कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
मुरक्कये-हुस्नो-इश्क[5] हूं मैं, मुझी में नाज ओ नियाज[6] हैं सब ।
हूं अपनी सूरत पै आप शैदा[7], कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
जमाना आइना[8] राम का, हर एक सूरत से है वह पैदा ।
जो चश्मे-हक[9] वीं खुली तो देखा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
वह मुझ से हर रंग में मिला है, कि गुल से बू भी कभी जुदा है ।
हुबाबो-दरिया[10] का है तमाशा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
सबब बताऊँ मैं वज्द[11] का क्या ? है क्या जो दर परदा[12] देखता हूं ।
सदा[13] यह हर साज है पैदा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
बसा है दिल में मेरे वह दिलबर, है आईने में खुद आईना-गर[14] ।

---

१. नाम व रूप, २. हाथ-पैर, ३. शरीर, ४. दर्शन, प्रकट, ५. सुन्दरता और प्रेम के चित्रों की पुस्तक, ६. बेपरवाही प्रिया की, प्रेम जताना प्रीतम का, ७. आशिक, आसक्त ८. शीशा-दर्पण, ९. तत्व-दृष्टि का नेत्र, १०. बुलबुला और दरिया ११. अत्यानन्द, विस्मय; १२. पर्दे के पीछे; १३. ध्वनि, आवाज, १४. दर्पण बनाने वाला, सिकन्दर, यहां सिकन्दर रूपी परमात्मा से अभिप्राय है जिसने दर्पण रूपी दिल बनाया है ।

अज़ब तहय्युर[1] हुआ यह कैसा ? कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।
मुकाम पूछो तो लामकां[2] था, न राम ही था, न मैं वहाँ था ।।
लिया जो करवट तो होश आया, कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
अलल तवातर[3] है पाक[4] जलवा, कि दिल बना तूरे-वर्क–सीना[5] ।
तड़प के दिल यूं पुकार उट्ठा, कि राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।
जहाज दरिया में और दरिया जहाज में भी तो देखिये आ ।
यह जिस्म[6] किश्ती[7] है राम दरिया, है राम मुझ में, मैं राम में हूं ।।

[७]

ज्ञानी की होली

उड़ा रहा हूं मैं रंग भर-भर, तरह-तरह की यह सारी दुनिया ।
चे[8] खूब होली मचा रखी थी, पै अब तो होली[9], यह सारी दुनिया ।।
मैं सांस लेता हूं रंग खुलते हैं, चाहूं दम में अभी उड़ा दूं ।
अजब तमाशा है रंगरलियां, है खेल जादू यह सारी दुनिया ।।
पड़ा हूं मस्ती में गर्को-बेखुद, न गैर[10] आया, चला न ठहरा ।
नशे में खर्राटा सा लिया था, जो शोर वर्पा है सारी दुनिया ।।
भरी है खूबी हर इक खराबी में, जर्रा, जर्रा है मेहर[11] आसा ।
लड़ाई शिकवे में भी मजे हैं, यह ख्वाब चोखा है सारी दुनिया ।।
यह राम सुनिएगा क्या कहानी, शुरू न इसका, खतम न हो यह ।
जो सच पूछो ! है राम ही राम[14], यह महज[15] धोखा है सारी दुनिया ।।

---

१. आश्चर्य, २. देश-रहित, ३. लगातार निरन्तर, ४. शुद्ध दर्शन, ५. भीतर की बिजली का अग्नि पर्वत, ६. शरीर, ७. नौका-नाव, ८. क्या खूब, ९. हो गई, समाप्त हो गई, १०. दूसरा, अन्य, ११. सूर्य जैसा, १२. अजीब आश्चर्य, १३. हैरान, विस्मित, १४. अद्वैत से अभिप्राय है, १५. केवल

[८]

यह डर से मेहर[1] आ चमका, अहाहाहा, अहाहाहा ।
उधर मह वीम[2] से लपका, अहाहाहा, अहाहाहा ।।
हवा अठखेलियां करती है मेरे इक इशारे से ।
है कोड़ा[4] मौत पर मेरा, अहाहाहा, अहाहाहा ।।
इकाई[5] जात[6] में मेरी अशंखों रंग है पैदा ।
मजे करता हूं मैं क्या-क्या, अहाहाहा, अहाहाहा ।।
कहूं क्या हाल इस दिल का, कि शादी[7] मौज[8] मारे है ।
है इक उमड़ा हुआ दरिया, अहाहाहा, अहाहाहा ।।
यह जिस्मे-राम[9] ए वदगो[10] ! तसव्वर[11] महज है तेरा ।
हमारा विगड़ता है क्या, अहाहाहा, अहाहाहा ।।

[९]

जब उमडा दरिया उलफत[13] का, हर चार तरफ आबादी है ।
हर रात नई इक शादी है, हर रोज मुबारक-बादी है ।।
खुश-खन्दा[14] है रंगी गुल का, खुश शादी शाद मुरादी है ।
बन सूरज आप दरखशां[15] है, खुद जंगल है खुद वादी[16] है ।।
नित राहत है, नित फरहत है नित रंग नये, आजादी है ।
हर रग-रेशे में, हरमू[17] में अमृत भर-भर भरपूर हुआ ।

---

१. सूर्य, २. चांद, ३. भय, ४. चाबुक, ५. एक अद्वैत, ६. वास्तविक स्वरूप, ७. खुशी, आनन्द, ८. लहरें मारना, ९. राम का शरीर, १०. बुरा बोलने वाला या ताना मारने वाला, अभिप्राय भेद-वादियों से है, ११. भ्रम, कल्पना, १२. केवल, १३. प्रेम, १४. अच्छा खिला हुआ, १५. प्रकाशमान, १६. आबाद स्थान, १७. सिर का बाल ।

सब कुल्फत[1] दूरी दूर हुई, मन शादी[2] मर्ग से चूर हुआ।
हर वर्ग[3] बधाइयां[4] देता है, हर जर्रा-जर्रा[5] तूर[6] हुआ।
इल्लत[7]—मालूल[8] में मत डूबो, सब कारज-कारण तुम ही हो।
तुम ही दफ्तर से खारिज हो, और लेते चारज तुम ही हो।
तुम ही मसरूफ बने बैठे, और होते हारिज[9] तुम ही हो।
तू दाविर[10] है तू बुकला[11] है, तू पापी है, तू फर्यादी है।
नित फरहत है, नित राहत है, नित रंग नये आजादी है।
दिन-शब[12] का झगड़ा ना देखा, गो सूरज का चिट्ठा सिर है।
जब खुलती दीदये-रौशन[13] है, हंगामये-ख्वाब[14] कहां फिर है ?
आनन्द सरुर[15] समुन्दर है जिसका आगाज,[16] न आखिर है।
सब राम पसारा दुनिया का, जादूगर की उस्तादी है।
नित फहरत है, नित राहत है, नित रंग नये आजादी है।

[१०]

दरिया से हुबाब[17] की है यह सदा[18], तुम और नहीं, हम और नहीं।
मुझको न समझ अपने से जुदा, तुम और नहीं, हम और नहीं॥
जब गुञ्चा[19] चमन[20] में सुबह[21] को खिला, झट कान में गुल के वह कहने लगा।
हाँ, आज यह उकदा[22] है हम पै खुला, तुम और नहीं, हम और नहीं।

---

१. जुदाई का कष्ट, दुख, २. अनन्त आनन्द के बढ़ने से जो मृत्यु होती है, ३. प्रत्येक पत्ता, ४. स्वस्ति वाचन, ५. परमाणु, ६. अग्नि का पर्वत, ७. कारण, ८. कार्य, ९. किसी काम में हानि करने वाले, १०. न्यायकारी, ११. मुंसिफ, जज, वकील, १२. रात, १३. ज्ञान चक्षु, १४. स्वप्न की दुनियाँ, स्वप्न का झगड़ा फिसाद, १५. आनन्द, खुशी, १६. आदि, शुरू, १७. बुलबुला, १८. आवाज, १९. पुष्पकली, २०. बाग, २१. प्रातः, २२. भेद या गुह्य रहस्य।

आईना[1] मुकाबिल रुख[2] जो रखा, झट बोल उठा यूं अक्स[3] उसका।
क्यों देख के हैरां यार हुआ, तुम और नहीं, हम और नहीं।

दाने ने भला खिरमन[4] से कहा, चुप रह इस जा नहीं चूंनो-चरा[5]।
वहदत[6] की झलक कसरत[7] में दिखा, तुम और नहीं, हम और नहीं।

तू क्यों समझा मुझे गैर बता[8], अपना रुखे जेवा[9] न हम से छिपा।
चिक पर्दा उठा, टुक सामने आ, तुम और नहीं, हम और नहीं।।

[११]

ठण्डक भरी है दिल में, आनन्द बह रहा है।
अमृत बरस रहा है, झिम ! झिम !! झिम ।।

फैली है सुबहे-शादी[10], क्या चैन की घड़ी है।
सुख के छुटे फुहारे, फरहत[11] चटक रही है।

डटकर खड़ा हूं, खौफ से खाली जहान में।
तसकीन-दिल[12] भरी है मेरे दिल में, जान में।

सूघें जमां[13], मकां[14], मेरे पा मिसाले-सग[15]।
मैं कैसे आ सकूं हूं कैदे—बयान[16] में।

ठण्डक भरी है दिल में, आनन्द बह रहा है।
अमृत बरस रहा है, झिम ! झिम !! झिम ।।

---

१. शीशा, २. मुख के सामने, ३. प्रतिबिम्ब, ४. खलियान, दानों का ढेर, ५. क्यों, कब, वाद-विवाद, ६. एकत्व, ७. नानत्व, ८. अन्य, ९. सुन्दर मुख, १०. आनन्द की प्रातः ११. खुशी, आनन्द, १२ दिल में चैन, शान्ति, आराम, १३. काल, १४. देश, १५. कुत्ते के समान, १६. वर्णन के बन्धन में।

[१२]

मैं सैर करने निकला, ओढ़े अबर[1] की चादर ।
पर्वत में चल रहा था, हवा के बाजुओं[2] पर ।।
मतवाला[3] झूमता था, हर तरफ घूमता था ।
झरने, नदी ओ नाले, पहचान कर पुकारे ।।
नेचर[4] से गूंज उट्ठी, उस वेद की ध्वनि की ।
"तत्वमसि, तत्वमसि,"[5] तू ही है जान सबकी ।।
यह नजारा[6] प्यारा-प्यारा, तेरा ही है पसारा ।
जो कुछ भी हम बने हैं, ये रूप बस तो तू है ।।

[१३]

कहां जाऊं ? किसे छोड़ूं ? किसे ले लूं ? करूं क्या मैं ?
मैं इक तूफाँ कयामत का हूं, पुर हैरत[7] तमाशा मैं ।।
मैं बातिन[8], मैं अयां[9], जेरो जवर[10], चप-रास्त[11]. पेशो-पस[12] ।
जहां मैं, हर मकाँ[13] मैं, हर जमां[14] हूंगा, सदा था मैं ।।
नहीं कुछ जो नहीं मैं हूं, इधर मैं हूं, उधर मैं हूं ।
मैं चाहूं क्या ? किसे ढूंढूं ? सभी में ताना बाना मैं ।।
वह बहरे-हुस्ने-खूबी[15] हूं, हुबाव[16] हैं काफ[17] और कैलाश ।
उड़ा इक मौज[18] से कतरा, बना तब मेहर[19] आसा मैं ।।

---

१. बादल, २. पंख, पर, ३. मस्त, ४. प्रकृति, कुदरत, ५. वह ब्रह्म तू ही है, तू है, ६. दृश्य, ७. आश्चर्यमय, ८. भीतर, ९. बाहर-प्रकट, १०. नीचे-ऊपर, ११. बायें-दायें, १२. आगे-पीछे, १३. देश, १४. काल, १५. सुन्दरता और अच्छाई का समुद्र १६. बुलबुला; १७. कोह काफ के पर्वत से आशय है, १८. लहर-तरंग, १९. सूर्य जैसा ।

जरो-नियामत[1] मेरी किरणों में धोका था सुराब[2] ऐसा।
तजल्ली नूर[3] है मेरा कि 'राम' अहमद हूं, ईसा मैं।

[१४]

बीमारी में ज्ञानी की अवस्था

वाह वा, ए तप ओ रेजिश ! वाह वा
हव्वजा[4], ऐ दर्दो-पेचिश ! वाह वा। १।
ऐ बलाये-नागहानी[5] ! वाह वा।
वेल्कम[6], ऐ मर्गे–जवानी[7] वाह वा।। २।
वह भंवर, यह कहरे वरपा[8] ? वाह वा।
वहरे-मेहरे-राम[9] में क्या वाह वा।। ३।
खांड का कुत्ता, गधा, चूहा, विला[10]।
मुंह में डालो जायका[11] है खांड का।। ४।
पगड़ी, पाजामा, दुपट्टा, अँगरखा।
गौर से देखा तो सब कुछ सूत था।। ५।
दामनी, तोड़ी व माला, कोघड़ा।
पर निगाहे[12] हक में है ओही तिला[13]।। ६।
मोतियाबिन्द दिल की आँखों से हटा।
मर्जे-सेहत[14] ऐन[15] राहते-राम[16] था।। ७।

---

१. धन दौलत, २. मृगतृष्णा का जल ३. तेजमय प्रकाश। ४. बहुत अच्छा, बहुत खुश, ५. अचानक आने वाली आफत, ६. तेरा स्वागत हो, ७. तरुणाई, ८. ईश्वरी कोप, ९. सूर्य रूपी राम के समुद्र में, अर्थात् राम के प्रकाश स्वरूप सिन्धु में यह सब नाम-रूप प्रपंच मानो भंवर और लहरें हैं, १०. विलोटा, ११. स्वाद, १२. तत्व-दृष्टि, १३. स्वर्ण, सोना, १४. रोग और निरोग, १५. ठीक, निश्चय-पूर्वक, १६. राम की शान्त दशा, आनन्दावस्था।

[१५]

गुल[1] को शमीम[2], आब[3] गौहर[4] और जर[5] को मैं।
देता बहादुरी हूँ बला शेरे-नर[6] को मैं ॥ १ ॥
शाहों को रोब[7] और हुसीनों[8] को हुस्नो-नाज[9]।
देता हूँ जबकि देखूं उठा कर नजर[10] को मैं ॥ २ ॥
सूरज को सोना, चाँद को चाँदी तो दे चुके।
फिर भी तवायफ[11] करते हैं देखूं जिधर को मैं ॥ ३ ॥
अब्रूए[12] कैहकशां[13] भी अनोखी[14] कमन्द है।
बे कैद हो असीर[15] जो देखूं इधर को मैं ॥ ४ ॥
तारे झमक झमक के बुलाते हैं राम को।
आँखों में उनकी रहता हूं, जाऊँ किधर को मैं ॥ ५ ॥

[१६]

पीता हूँ नूर[16] हर दम, जामे-सरूर[17] पै हम।
है आसमाँ[18] प्याला, वह शराबे-नूर[19] वाला ॥ टेक
है जी[20] में अपने आता, दूं जो है जिसको भाता।
हाथी, गुलाम, घोड़े, जेवर, जमीन, जोड़े ॥
ले जो है जिसको भाता, मांगे बगैर दाता ॥ पीता हूं० १

---

१. स्वागत, प्रताप, प्रभाव, २. पुष्प, ३. सुगन्ध, ४. चमक, ५. मोती ६. स्वर्ण, ७. नर शेर, सिंह, ८. दबदबा, प्रभाव, ९. सुन्दर लोगों वा सुन्दरियों को, १०. सौन्दर्य और नखरा, ११. दृष्टि, १२. मुजरा, नाच, १३. आँखों की भवें, १४. आकाश में एक लम्बी सफेदी जो रात्रि के समय नजर आती है जिसको (Milky Path) दूधिया मार्ग या आकाश-गंगा कहते हैं, विचित्र, १५. कैद, बद्ध आसक्त, १६. प्रकाश, १७. आनन्द का प्याला, १८. आकाश, १९. प्रकाश रूपी मदिरा या ज्ञानामृत, २०. दिल।

हर कौम की दुआयें[1], हर मत की इल्तजायें[2]।
आती हैं पास मेरे, क्या देर, क्या सवेरे॥
जैसे अड़ाती गायें जंगल से घर को आयें॥ पीता हूँ० २
सब ख्वाहशें, नमाजें, गुण, कर्म और मुरादें।
हाथों में हूं फिराता, दुनिया हूँ यूं बनाता॥
मेमार[3] जैसे ईटें, हाथों में है घुमाता॥ पीता हूँ० ३
दुनिया के सब बखेड़े, झगड़े, फसाद, झेड़े।
दिल में नहीं अड़कते, न निगह को बदल सकते॥
गोया गुलाल हैं यह, सुर्मा मिसाल[4] हैं यह॥ पीता हूं० ४
नेचर[5] के लाज[6] सारे, अहकाम[7] हैं हमारे।
क्या मेहर[8], क्या सितारे, हैं मानते इशारे॥
हैं दस्तो-पा[9] हर इक के, मर्जी पे मेरी चलते॥ पीता हूं० ५
कशिशे-सिकल[10] की कुदरत, मेरी है मेहरो-उलफत[11]।
है निगाह[12] तेज मेरी, इक नूर की अन्धेरी॥
बिजली शफक[13] अंगारे, सीने[14] के हैं शरारे। पीता हूं० ६
मैं खेलता हूं होली, दुनिया से गेंद गोली।
ख्वाह इस तरफ को फैंकू, ख्वाह उस तरफ चला दूं।
पीता हूँ जाम[15] हर दम, नाचूं मुदाम[16] धम धम॥
दिन रात है तरन्नम[17], हूँ शाहे-राम बेगम[18]॥ पीता हूँ० ७

१. प्रार्थनायें, २. निवेदन वा दरख्वास्तें, ३. मकान बनाने वाला, ४. आंखों में सुर्मे की तरह, ५. प्रकृति (कुदरत) ६. नियम, कानून, ७. आज्ञा, हुक्म, उपदेश, ८. सूर्य, ९. हाथ और पांव, १०. आकर्षण-शक्ति, (Law of gravitation), ११. कृपा (मिहरबानी) और प्यार, १२. दृष्टि, १३. दोनों काल के मिलते समय आकाश में जो लाली होती है, १४. दिल, १५. प्रेम-प्याला, १६. नित्य, हमेशा, १७. आनन्द से आँसुओं का धीमे-धीमे टपकना वा बरसना, १८. बेगम राम बादशाह हूँ।

[१७]

हुबाबे-जिस्म[1] लाखों मर मिटे, पैदा हुए मुझ में।
सदा हूँ बैहरे-वाहिद[2], लहर है धोखा फरावाँ[3] का ॥ १ ॥
मेरा सीना[4] है मशरिक[5] आफताबे-जाते-तावाँ[6] का।
तुलूए-सुबहे-शादी[7], वाशुदन[8] है मेरे मिजगाँ[9] का ॥ २ ॥
जुबाँ अपनी बहारे-ईद[10] का मुजदा[11] सुनाती है।
दुरों[12] के जगमगाने से हुआ आलम[13] चिरागां का ॥ ३ ॥
सरापा-नूर[14] पेशानी[15] पँ मेरी मह[16] दरखशाँ[17] है।
कि झूमर[18] है जबीं[19] सीमीं पै गिर्जाये-जिमिस्ताँ[20] का ॥ ४ ॥
खुशी से जान जामे[21] में नहीं फूली समाती अब।
गुलों[22] के बार[23] से टूटा, यह लो दामाँ[24] बियाबाँ का ॥ ५ ॥

---

१. देह का बुदबुदा अर्थात् देह वा शरीर रूपी बुदबुदा, २. अद्वैत का समुद्र अथवा अद्वैत रूप समुद्र, ३. नानत्व, अगणित, ज्यादा, अर्थात् द्वैत केवल धोखा है। ४. हृदय, ५. पूर्व, ६. प्रकाश स्वरूप आत्मा (सूर्य) का पूर्व अर्थात् हृदय स्थान है, ७. आनन्द की प्रातः का उदय स्थान, ८. खुलना, ९. आँख अर्थात् ज्ञान-नेत्र की पलकें, १०. ईद अर्थात् निजानन्द की बहार, ११. खुशखबरी, आनन्द की सूचना, १२. मोती, यहाँ अभिप्राय शब्दों से है, १३. (ज्ञानरूपी) दीपकों का लोक अर्थात् चारों ओर ज्ञान का प्रकाश ही प्रकाश हो गया, १४. प्रकाशमान् व प्रकाश से पूर्ण, १५. माथा, बर्फ से अभिप्राय है १६. चाँद, १७. प्रकाशमान्, १८. माथे पर लटकने वाला जेवर (गहना), १९. चाँदी जैसी चमकीली पेशानी (बर्फ) पर, २०. शीत स्वरूप पार्वती (उमा)। २१. भीतर के खाने रूपी पल्ले में, २२. पुष्प, फूल, २३. बोझ, २४. पल्ला, मुराद जंगल का तट वा किनारा से है।

चमन में दौर[1] है जारी, तरब[2] का, चहचहाने का ।
चहकने में हुआ तबदील, शेवन[3] मुर्गे-नालाँ[4] का ।। ६ ।।
निगाहे[5] मस्त ने जब राम की आमद[6] की सुन पाई ।
है मजमा[7] सैद[8] होने को यहाँ वहशी गजालाँ का ।। ७ ।।

[१८]

मुझ बहरे-खुशी[9] की लहरों पर दुनिया की किश्ती रहती है ।
अज सैले-सरूर[10] धड़कती है छाती और किश्ती बहती है ।।
मुझमें ! मुझमें !! मुझमें !!!! (टेक)
गुल[11] खिलते हैं, गाते हैं रो रो बुलबुल,
क्या हँसते हैं नाले[12] नदियाँ ।
रंग-शफक[13] घुलता है, वादे-सबा[14] चलती है,
गिरता है छमछम बाराँ[15] । मुझमें ! मुझमें !! मुझमें !!! ।। १ ।।
हूँ रिश्ता[16]-ए-वहदत दर कसरत[17], हैं इल्लतो-सिहत[18] और राहत[19]।
हर विद्या, इल्म, हुनर, हिकमत; हर खूबी, दौलत और बरकत ।
हर नियामत, इज्जत और लज्जत;हर कशिश का मर्कज[20], हर ताकत ।

---

१. समय का चक्कर, २. खुशी, ३. रुदन, शोक, खेद, विलाप, ४. रोते हुए पक्षियों का, ५. मस्त पुरुष की दृष्टि, ६. आगमन, ७. समूह, हजूम, ८. अर्पण होने, लट्टू होने अर्थात् वारे जाने को, ९. खुशी का समुद्र, १०. आनन्द के तीव्र तूफान (बहाव) से, ११. पुष्प, १२, धारा, चश्मे १३. प्रातःकाल और सायंकाल को आकाश में जो लाली बादलों में होती है, १४. पूर्वी-वायु, १५. वर्षा, १६. एकता का सम्बन्ध वा धागा, १७. अनेकता, नानत्व, १८. कारण, सुख, वा निरोगिता, १९. आराम, २०. केन्द्र ।

हर मतलब, कारण, कारज सब; क्यों, किस जा[1], कैसे, क्योंकर, कब।
मुझ में ! मुझ में !! मुझ में !!! मुझ में !!!!।
हूँ आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, जाहर, बातिन[2], मैं ही मैं।
माशूक[3] और आशिक[4], शायर[5], मजमून, बुलबुल, गुलशन[6]
मैं ही मैं।

[१९]

हिप हिप हुर्रे। हिप हिप हुर्रे॥ टेक॥
अब देवन के घर शादी[7] है, लो! राम का दर्शन पाया है।
पा-कोबाँ[8] नाचते आते हैं, हिप हिप[9] हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ १॥
खुश खुर्रम[10] मिल मिल गाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे।
वे मंगल साज बजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ २॥
सब ख्वाहिश मतलब हासिल हैं, सब खूबों[11] से मैं वासिल[12] हूं।
क्यों हम से भेद छुपाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ ३॥
हर इक का अन्तर आतम हूं, मैं सब का आका[13] साहब हूं।
मुझ पाये दुःखड़े जाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ ४॥
सब आँखों में मैं देखूँ हूं, सब कानों में मैं सुनता हूँ।
दिल बरकत मुझ से पाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ ५॥
गह[14] इश्वा[15] सीमींबर[16] का हूं, गह नारा[17] शेर-बबर[18] का हूं।
हम क्या क्या स्वाँग बनाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥ ६॥

---

१. किस स्थान, २. अन्दर, ३. प्रिया, इष्ट, ४. प्रेमी, आशिक या भक्त, ५. कवि, ६. बाग, ७. खुशी, ८. पाओं के बल नाचते आते हैं, ९. अंग्रेजी भाषा में अति प्रसन्नता का बोधक यह शब्द है, १०. आनन्द, मस्त हो कर, ११. सुन्दर लोग, १२. अभेद, मिला हुआ, १३. मालिक, १४. कभी, १५. नाज, नखरा, १६. चाँदी जैसी सूरत वाली प्यारी, १७. गर्ज, १८. बबर शेर, (सिंह)।

मैं कृष्ण बना, मैं कंस बना, मैं राम बना, मैं रावण था।
हां, वेद अब कसमें खाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ७ ॥
मैं अन्तर्यामी साकिन[1] हूं, हर पुतली नाच नचाता हूं।
हम सूत्रतार[2] हिलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ८ ॥
सब ऋषियों के आइनये[3] दिल में, मेरा नूर[4] दरखशाँ[5] था।
मुझ ही से शायर[6] लाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ९ ॥
मैं खालिक[7], मालिक, दाता हूँ, चशमक[8] से दैहर[9] बनाता हूँ।
क्या नकशे रंग जमाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १० ॥
इक कुन[10] से दुनियां पैदा कर, इस मन्दिर में खुद रहता हूँ।
हम तनहा शहर बसाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ ११ ॥
वह मिसरी हूँ जिसके बाइस[11] दुनिया की इशरत[12] शीरी[13] है।
गुल[14] मुझ से रंग सजाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १२ ॥
मसजूद[15] हूं, किबला[16], काबा हूँ, माबूद[17] अजां[17] नाकूस[18] का हूँ।
सब मुझ को कूक बुलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १३ ॥
कुल आलम[19] मेरा साया है, हर आन बदलता आया है।
जिल[20] कामत[21] गिर्द घुमाते हैं, हिपहिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १४ ॥

---

१. स्थिर, २. सूत्रधारी की तरह पुतली तार हिलाते हैं, ३. अन्तःकरण रूपी शीशा, ४. प्रकाश, ५. चमकता था, ६. कवि (अर्थात् मेरे आत्म स्वरूप से यह सब कविता-काव्य निकलती है), ७. सृष्टि के रचने वाला, ८. आँख की झपक में, ९. युग, समय, १०. आज्ञा, हुक्म वा संकेत ११. सबब, कारण, १२. विषय-आनन्द, विषय भोग के पदार्थ, १३. मीठी, १४. पुष्प, १५. उपास्य, पूजा किया गया, १६. जिसकी तरफ मुँह करके ईश्वर-पूजा (ध्यान) की जाती है, १७. पूज्यदेव, १८. बाँग, शँखध्वनि, १९. सब संसार, २०. छाया, प्रतिबिम्ब, बिम्ब, २१. शरीर।

यह जगत हमारी किरणें हैं, फैलीं हर सू[1] मुझ मर्कज[2] से।
शाँ बूकलमू[3] दिखलाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १५ ॥
मैं हस्ती[4] सब अशया[5] की हूँ, मैं जान मलायक[6] कुल की हूँ।
मुझ बिन बेबूद[7] कहाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १६ ।
बेजानों में हम सोते हैं, हैवानों[8] में चलते फिरते हैं।
इन्सान् में नींद जगाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १७ ॥
संसार तजल्ली[9] है मेरी, सब अन्दर बाहर मैं ही हूँ।
हम क्या शोले[10] भड़काते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १८ ॥
जादूगर हूँ, जादू हूँ खुद, और आप तमाशा-बीं[11] मैं हूँ।
हम जादू खेल रचाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे ॥ १९ ॥

[२०]

बिठा कर आप पहलू[12] में, हमें आँखें दिखाता है।
मुना बैठेंगे हम सच्ची, फकीरों को सताता है ॥
अरे दुनिया के बाशिन्दो[13]! डरो मत बीम[14] को छोड़ो।
यह शीरीं-रू[15] तो मिसरी है, भवें नाहक[16] चढ़ाता है ॥
यह सलवट[17] डालना चेहरे पे गंगा जी से सीखा है।
है अन्दर से महा शीतल, यह ऊपर से डराता है ॥

१, तरफ, २. केन्द्र, ३. नाना प्रकार के, ४. अस्तित्व, 'जान सब की, ५. वस्तु, ६. सारे फरिश्तों (देवताओं) की, ७. न होना, ८. अविद्वान् या पशु, ९. तेज, चमक, १०. अग्नि की लपटें, अंगारे, ११. तमाशा देखने वाला, १२. अपने पास, १३. संसार में बसने वालो, या जगत्-निवासी, १४. डर, भय, १५. मधुर मुख, मीठे बोल वाला, १६. व्यर्थ १७. माथे पर बल, त्योरी।

बनावट की जबीं पुरचीं[1] है उलफत[2] से मुलब्बब[3] दिल।
बनावट चालबाजी से यह क्यों भर्रे में लाता है।।
अगर है जर्रे-जर्रे[4] में वह, बल्कि लाखवें जुज में।
तो जुज्वो[5]-कुल भी सब वह है, दीगर[6] झट उड़ ही जाता है।।
निगाहे-गौर से रख कायम, जरा बुरके[7] को ताके जा।
यह बुरका साफ उड़ता है, वह प्यारा नजर आता है।।
तलातुम - खेज[8] बहरे हुस्नो - खूबी[9] है अहाहाहा।
हवासो-होश की किश्ती को दम भर में बहाता है।।
हसीनो[10] ! हुसन-ओ-खूबी से मेरी जुल्फे-सियाह[11] का जिल[12]।
अबस[13] साया-परस्तों[14] का पड़ा दिल तलमलाया है।
अरी शोहरत ! अरी रुसवाई ! अरी तोहमत[15] ! अरी अजमत[16]।
मरो लड़ लड़के तुम अब राम तो पल्ला[17] छुड़ाता है।।

स्वामी राम के दिव्य काव्य का एक ही लक्ष्य है—आत्मा, सच्चिदानन्द ब्रह्म। सभी कवितायें उनकी आत्मनिष्ठा की सुगंध से भरपूर हैं। पाठकों के लाभार्थ रामतीर्थ प्रतिष्ठान, लखनऊ ने उनकी सभी उर्दू कवितायें 'रामवर्षा' के नाम से और अंग्रेजी कवितायें 'Poems of Rama' के नाम से प्रकाशित की हैं।

---

१. त्योरी से भरी पेशानी, २. प्रेम, ३. लबालब भरा हुआ, ४. परमाणु मात्र, ५. व्यष्टि, और समष्टि, ६. दूसरा, ७. पर्दा, ८. लहरें मारने वाला, ९. सौन्दर्य और अच्छाइयों का समुद्र, १०. सुन्दर पुरुषों, ११. काली जुल्फ अर्थात कृष्णरूप, १२. छाया, अर्थात् माया, १३. व्यर्थ है, १४. छाया पर मोहित होने वाले, यहाँ अभिप्राय मायासक्त से है, १५. कलंक, १६. बड़ाई, १७. अलग होता है।

बीसवाँ परिच्छेद

निष्कर्ष : कुछ मेरे विचार

१—उनका संन्यास

स्वामी राम ने बलात् अपने हृदय को दबाकर संन्यासी के भगवा वस्त्र नहीं धारण किये थे। उनकी संकल्प-शक्ति अजेय थी और उन्होंने ऐसा ही संकल्प किया था। किन्तु उनका हृदय इतना कवित्वशील, इतना भावुक था कि वह इस वेष से ठीक-ठीक मेल नहीं खाता था। हरद्वार में, जब वे रुग्ण हो गये, मैं उनकी परि-चर्या करता था। वे मुझे चाहते थे, क्योंकि उनके लिए मेरी आँखों में आँसू थे—मैं उनकी रुग्ण शैया के चारों ओर मधुर वायु के झोंकों की भाँति चक्कर लगाता था। मैं उन्हें प्यार करता था; सचमुच थे वे ऐसे सुन्दर, ऐसे आकर्षक, ऐसे व्यक्तिगत हृदय-सम्पन्न जैसा वे चाहते, वैसा ही मैं करता। मैंने कभी उनसे 'न' नहीं कहा। 'जो आज्ञा' 'जो आज्ञा'—शब्द ही सदैव उनके आदेश पर मेरे मुंह से निकलते थे। अपने आधे खुले हुए मुख और आंसू भरे नेत्रों से ही उनके प्रेम और सम्मान के वशीभूत होकर मैंने उनके महान् जीवन के कुछ पाठ अचेतन रूप में ही अपने हृदय में उतार लिये थे। रोग-शैया पर पड़े-पड़े उन्हें लगभग एक मास हो गया था। वे दिन—रात हृदय के सम्पूर्ण बल से ईश्वर के निजानन्द को बटोरने की चेष्टा करते थे और ज्वर से प्रपीड़ित होने की दशा में भी बराबर हरद्वार की पहाड़ियों को अपने अट्टहास से गुंजाया करते थे।

एक दिन उनकी धर्मपत्नी, उनकी विमाता और उनका छोटा पुत्र जो ६ वर्ष का भी न होगा, पंजाब से यथेष्ठ रुपया व्यय करके उनके दर्शन के लिए आये। अमरीका से लौटने पर उन्होंने राम को न देखा था! समूचे परिवार की दशा बहुत अच्छी न थी, क्योंकि उसके सर्वश्रेष्ठ कमाने वाले ने उससे अपना संबन्ध विच्छेद कर लिया था। और वह क्यों न कर लेता? उसके हृदय में तो स्वयं अपने ज्ञान की अप्रतिम प्रभा समाती न थी! राम के अमरीका-प्रवास के वियोग से उनका हृदय संतप्त हो रहा था। उसी संताप को कुछ हलका करने के अभिप्राय से उन्होंने हरद्वार आने में अपना सारा बचा-खुचा रुपया व्यय कर डाला था। मैं भीतर गया और शीघ्र ही स्वामी जी को उनके आने की सूचना दी। वे उस समय भी चारपाई पर पड़े रहते थे—निर्बल और शिथिल होने के कारण; यद्यपि वे रोग से पूर्णतः मुक्त हो चुके थे और उनके कपोलों ने धीरे-धीरे सेब की सुर्खी की भांति अपनी स्वाभाविक आभा में चमकना प्रारम्भ किया था। उनके गम्भीर, निर्मल, काले-काले नेत्र ऐसे मालूम होते थे, जैसे विकसित गुलाब पुष्पों पर दो भ्रमर बैठे हों। उन्होंने अपना चश्मा मांगा और मैंने उन्हें उठाकर दे दिया। वे उसे अपने भगवा वस्त्र से साफ करने लगे और उसे फिर पहन भी लिया। इसी बीच में, मैं समझता हूं, वे सोच रहे थे—मुझे क्या उत्तर दिया जाय, क्योंकि मैंने उन्हें उनकी स्त्री, मां और छोटे लड़के के आने की सूचना दी थी।

"पूरनजी" वे मुझे इसी नाम से पुकारते थे, "क्या तुम्हारे पास कुछ रुपया है?" "जी, स्वामी जी, मेरे पास हैं और कितनों की आवश्यकता होगी? मैं और ला सकता हूं।" मेरा संक्षिप्त उत्तर था। "अच्छा, तो उन्हें रेलवे स्टेशन ले जाओ और पंजाब का वापिसी टिकिट मोल ले दो। वे गंगा जी में स्नान कर लें और लौट जायें। वे मुझे नहीं देख सकेंगे।" मुझे उनके पास रहते-रहते

एक मास होने वाला था। मेरे हृदय में उनके प्रति प्रेम था, उतना ही अगाध, उतना ही मूक जैसे छोटे-छोटे पालतू पशुओं में अपने स्वामी के लिए होता है किन्तु उनके इस उत्तर की चिनगारी ने मेरे क्रोध की ज्वाला भड़का दी ऐसी कि शान्ति न जाने कहां उड़ गयी! "नमस्कार! स्वामी जी, मैं भी उनके साथ जा रहा हूं और फिर कभी आपको देखने भी न आऊँगा। आप का दर्शन? आपको तो परिवार की रक्षा और भरण-पोषण का भार अपने ऊपर लेना चाहिए था। आप बरबश भाग खड़े हुए। वे अपना बचा-खुचा रुपया लगाकर यहां तक आये हैं। अब वे आप के कोई न हुए। हम बच्चों जैसे मूर्ख आदमी जो आपको घेरकर खेलते और आपको भी कुछ गुदगुदाते रहते हैं—क्या हम ही आपके सब कुछ हैं? वे तो तीर्थयात्री हैं और अपने संन्यासी के दर्शन करना चाहते हैं। वे आपसे कोई मांग करने नहीं आये हैं और न आपको वापिस घर लौटने के लिए ही कहते हैं। यदि आप उन्हें देख भी नहीं सकते तो यह आपका अत्याचार, सरासर अत्याचार है! मैं ऐसे व्यक्ति के साथ नहीं रह सकता, जो अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों को ऐसी निर्दयता से कुचलता हो। सोचिये, वे तो आपके दर्शन, आपकी एक झलक देखने, केवल मुस्कराहट मात्र के इच्छुक हैं और वह भी उन्हें नहीं मिल सकती!" यह कह कर मैं कमरे से बाहर जाने लगा और चला भी गया होता कि ज्योंही मैंने बाहर जाने के लिए किवाड़ खोला, त्योंही स्वामी जी दिल खोल खिलखिला कर हँस पड़े। उन्होंने मुझे वापिस बुलाकर कहा—अच्छी बात! उन्हें भीतर बुलाओ।

उनके सामने बिना मतलब अपनी इस असाधारण उत्तेजना के कारण मैं कुछ लज्जित सा हो उठा और इसी बीच में वे लोग भी भीतर आ गये। वे केवल दिल भर कर हंसे और अपनी सहज मुस्कराहट के साथ उन्होंने उन लोगों का स्वागत किया। तब उनमें

साधुओं योग्य गम्भीरता आ गयी थी। छोटे बच्चे ने पूछा—स्वामी जी ! मैं अपना पाठ आपको सुनाऊं ? "हाँ, हां, क्या तुमने पढ़ना शुरू कर दिया है ? बहुत बढ़िया !" स्वामी जी ने उत्तर दिया और उसका कविता-पाठ सुनने लगे। "पूरन जी, इसे अँगूरों का गुच्छा दीजिये।" स्वामी जी ने फिर कहा और मैंने ताक पर से उठाकर एक गुच्छा उस बच्चे के दोनों फैले हुए हाथों पर धर दिया। उनकी स्त्री बराबर इकटक खड़ी-खड़ी उनकी ओर ताकती रही किन्तु बिल्कुल चुपचाप ! परस्पर एक शब्द का भी आदान-प्रदान न हो सका। हां, विमाता के साथ बेशक प्यारभरी छोटी सी बातचीत चलती रही, जिसे वे बीच-बीच में अपनी सहज हंसी से गुंजा दिया करते थे। स्वामी जी ने अपने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के विषय में पूछताछ की और थोड़ी ही देर में भेंट समाप्त हो गयी। बस, ये तीर्थयात्री कमरे से बाहर निकल गये। मैं सोचने लगा—बड़े मस्तिष्कों के साथ छोटों का साहचर्य कितना भयानक, कितना कारुणिक हो सकता है ! दोनों एक ही वायु में श्वांस लेते हैं, दोनों एक ही सूर्य के दर्शन करते हैं किन्तु किस करुणाजनक परिस्थिति में वे एक दूसरे से पृथक रहते हैं। वे लोग वापिस भेज दिये गये। पूरे एक वर्ष से बाद जब मैं स्वामी जी से फिर 'बसून या वशिष्ठ आश्रम' में मिला तब एक दिन उन्होंने मुझे छोटी-मोटी बहुत सी मीठी बातें सुनायीं। हम दोनों हिमालय के शस्यश्यामल फर्श पर बैठे हुए थे। मुझे स्पष्ट स्मरण है। उन्होंने कहा था—

"पूरन जी ! राम को यह न मालूम था कि अब यह भगवा वस्त्र स्वतन्त्रता का चिह्न नहीं। गुलामों ने भी इसे पहनना प्रारम्भ कर दिया है, और उसे इतना कठोर, नियमित और रूढ़िवादी बना दिया है कि राम को उसमें बेचैनी सी होने लगी है। अब जब वह पहाड़ों से नीचे उतरेगा तो देखना, वह भरी सभा में सब के सामने उसकी धज्जियां उड़ा कर घोषणा करेगा कि संन्यासी के भगवा

बाने को स्वतन्त्रता का, मुक्ति का साधन मानना भूल, एक भयंकर भूल है।

"तुम्हें याद होगा कि राम ने हरद्वार में तुम से राम के घर वालों को वापिस भेजने के लिए कहा था और तब तुम इतने क्रुद्ध हुए थे। राम के भी हृदय है किन्तु उस समय राम अपने वेष के नियमों का पालन करना चाहता था। घर वालों से भेंट न करना संन्यास आश्रम का साधारण नियम है। फिर भी तब तक मनुष्य अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों को कैसे भूल सकता है, जब तक प्रेम की धड़कन—वह चाहे ईश्वर के लिए हो, चाहे मनुष्य के प्रति, उसके हृदय में उठती रहती है। कवि पत्थर नहीं बनाये जा सकते। आध्यात्मिक उन्नति का अर्थ जड़ता या भावहीनता नहीं है। विचारा 'कीट्स' कड़े शब्दों से ही मर गया। विकास जितना उच्च होता है, भावप्रवणता भी उतनी ही श्रेष्ठ और गम्भीर होती है!

* * *

एक नम्रहृदय, शुद्ध-पवित्र, धनहीन विद्यार्थी की स्थिति से ऊंचे उठकर वे एक पूरे डील-डौल के वयस्क पुरुष हो गये और विश्वानुभूति के प्रातःकालीन सद्य प्रकाश से उनका मुखमण्डल दैदीप्य-मान हो उठा। उनमें गम्भीर एकाग्रता, विचित्र प्रफुल्लता, दुर्दमनीय अट्टहास, क्रीड़ाशील आह्लाद, उच्चतम आदर्श और उज्ज्वल ज्ञान द्रुत गति से आ-आकर एकत्र सिमटने लगे। अन्त में, एक दिन आया, वे भगवान् की प्रेमसुरा पीकर बिल्कुल मस्त, पागल जैसे हो गये। उनका मुख प्रभु की दिव्य ज्योति से जगमगा उठा, नेत्र बन्द हो गये। उनके ओंठ खुले और 'रावी' के किनारे एक उच्च क्रन्दन हवा को चीरने लगा, वे भावावेश में उन्मत से हो उठे, बाहें फैल गयीं, वृक्षस्थल उद्वेलित हुआ और अश्रुधार बह चली। आस-पास के वृक्ष भी उनके साथ-साथ काँपने लगे, हवा उनसे अठखेलियां करती और वे मूक जड़ पत्थरों से बातें करते। उस

समय भी वे प्रातः इसी अर्द्ध-अचेतन अवस्था में गणित के आचार्य बनकर 'ओरियण्टल कालेज' में जाते थे किन्तु उन्हें पता न था—उनका शरीर क्या करता है और क्या नहीं करता है ! 'मिशन कालेज' में वे अपनी श्रेणी के प्रत्येक विद्यार्थी को यों पुकारते--प्यारे कृष्ण ! तू तो सब कुछ जानता है, फिर मैं तुझे क्या सिखाऊं ? यदि कोई लड़का न समझने का आग्रह करता तो फिर वे वही बात दुहरा देते--ओ प्यारे कृष्ण ! तू तो सब कुछ जानता है ! और लो, उनकी इस प्रकार की प्रेरणा से बालक के हृदय में प्रश्न का हल अपने आप चमक उठता। वह उठता और बड़ी आसानी से काले तख्ते पर उसे हल कर देता। मिशन कालेज से लाहौर का यह आत्म-विभोर नवयुवक पढ़ाने के निमित्त ओरियंटल कालेज में पहुंचा था। किन्तु उसकी मस्ती दिन-प्रतिदिन उत्तरोतर बढ़ती जाती थी और उस रोग के ठीक होने के कोई लक्षण दृष्टि-गोचर न होते थे।

एक दिन वे उठे और लाहौर के मिशिन कालेज के प्रिंसिपल डा० इविंग के सामने जा खड़े हुए। उन्होंने कहा--तुम ! तुम ईसा की पूजा करते हो ! क्या तुमने कभी उसे अपनी आंखों से भी देखा है ? नहीं, तुमने कभी नहीं देखा ! लो, देखो, इविंग ! ईसा मसीह तुम्हारे सामने खड़ा है। उनकी मस्ती का पागलपन चरम सीमा पर पहुंच चुका था !

उन दिनों जिनकी लाहौर की सड़कों पर उनसे भेंट हो जाती, वे उन पर मोहित हुए बिना न रह सकते। आत्मनिष्ठ, अपने-आप में डूबे हुए और ओम्-ओम् की मधुर ध्वनि गुनगुनाते हुए जब वे सड़कों पर टहलने निकलते तो उनके पाद-चाप से पत्थर का फर्श भी विह्वल हो उठता। "कहो, हम ईश्वर हैं, मकान की चोटी पर चढ़ ठीक अर्द्ध रात्रि के समय पुकार उठते, शिवोऽहम् ! भोले-भाले मनुष्य ! जल्दी उठ और पुकार--मैं ईश्वर हूं !"--बस, वे ऐसा

ही उपदेश दिया करते थे। हृदय को भेदनेवाली ॐ की गम्भीर ध्वनि ऐसी बात थी, जिस पर यह अभ्युदयशील नूतन पुरुष सबसे अधिक जोर देता था और अपने प्रशंसकों से बराबर आग्रह किया करता था कि अपने आपको 'शिव' क्यों नहीं कहते ? कोई अच्छी चीज, कोई सुन्दर वस्तु, कोई वीरता का कार्य जो उनके कान में पड़ता, कोई साहसपूर्ण वार्ता और विचार जो उन्हें ज्ञात होता तो वे झट से कहते––ओह ! यही तो वेदान्त है ! वेदान्त उनके लिए एक ऐसा शब्द था जिसे वे मानव जाति के इतिहास में प्रत्येक श्रेष्ठ, सुन्दर, गौरवान्वित और आध्यात्मिक वस्तु के लिए प्रयुक्त करते थे। वेदान्त उनके लिए निरा दर्शन-शास्त्र ही न था। वह था उनके काव्य की पूर्णता।

लाहौर निवासी डाक्टर मुहम्मद इकबाल ने मुझ से कहा था––एक दिन उन्हें पेट में शूल उठा, मैं उनसे भेंट करने उनके घर गया हुआ था। मरोड़ के बाद मरोड़ उनके पेट में उठतीं और उनके दुबले-पतले हड्डियों के ढांचे में बार-बार चक्कर काट रही थीं। पीड़ा ऐसी भयानक थी कि देखने वाले सिहर उठते थे किन्तु मैंने उस समय भी उनके मुख से हंसी का फव्वारा छूटते सुना। उसकी लहरें उनके कमरे भर में फैल रही थीं। "ओ! इकबाल ! राम क्यों रोये-गाये ! यदि उसके लाखों-करोड़ों शरीर में से एक शरीर रोगी हो गया, तो क्या ! मैं हंसता हूँ और हँसूंगा। रोना तो शरीर के भाग्य में आया है और मेरी आत्मा हंसने के लिए बनी है।"

डाक्टर इकबाल ने मुझे यह भी सुनाया था कि जब स्वामी राम ने अपने प्रोफेसर के पद से त्याग-पत्र दिया था तब लोगों ने उनकी बड़ी भद्दी-भद्दी आलोचनायें की थीं। मस्ती भरे तेजपूर्ण शब्दों में उन्होंने लिखा था––राम बादशाह अब किसी का नौकर नहीं रह सकता, केवल उस परमात्मा के सिवा। मूर्ख सीनेटर

(विश्व विद्यालय के उच्चाधिकारी) कहने लगे—यह पागल हो गया है, परन्तु इकबाल ने जो उस समय एक छोटे प्रोफेसर थे, तुर्की व-तुर्की उत्तर दिया था—तीरथराम यदि पागल माना जाय तब तो फिर समझदारी नाम की चीज संसार में कहीं रह नहीं जाती, वह पागलपन था तो पागलपन था 'स्पीनोजा' का, वह मस्ती थी तो मस्ती थी एक पैगम्बर की !

२—उनकी देशभक्ति

जब वे मुझे जापान में मिले थे, तब उनका व्यक्तित्व संक्रामक था। भक्त जैसे उनको अपने अन्तर में पीना चाहे तो पी सकता था। यदि कोई सच्चा जिज्ञासु पूर्ण श्रद्धा से उनकी शरण में आता तो वे उसे अपनी दिव्य ज्ञानानुभूति की लोकोत्तर प्रतिभा प्रदान कर सकते थे। ठीक यही बात मेरे विषय में हुई भी थी। मैंने वेदान्त और हिन्दू-दर्शन का कभी अध्ययन नहीं किया था। और न, जो कुछ उन्होंने कहा, मैंने कभी उस पर ध्यान दिया अथवा मनन-निदिध्यासन ही किया। मेरी धारणा तो यहां तक है कि उनसे भेंट होने के असाधारण आह्लाद के मारे मैं उनकी वाणी को भी उतनी अच्छी तरह नहीं सुन सका जैसा कि जापान में अन्य लोगों ने सुना था। किन्तु ज्योंही मेरी चेतना सीधे उनकी चेतना के सम्पर्क में आयी, त्योंही उनका सम्पूर्ण आनन्द और ज्ञान मुझ में समा सा गया। वह एक प्रकार की द्रष्टात्मक, द्रष्टा की द्रष्टा के प्रति, शिक्षा थी, जो एक क्षण में पूरी हो गयी। वह शिष्य को नहीं, जैसे अपने आप को दी जाती है।

ऐसी ही विलक्षण कृपा कम से कम एक व्यक्ति के विषय में और हुई थी। यह बात अमरीका की मिसेज बैलमैन ने स्वयं मुझे सुनायी थी। उनके प्रकाश की चिनगारियां चारों ओर दौड़ती थीं और कई हृदयों में तो अज्ञात रूप से ही उनकी जाज्वल्यमान आत्मा

की लौ प्रवेश कर जाती थी। किन्तु जब उनके पुनः भारत लौटने पर मैंने उन्हें मथुरा, पुष्कर, हरद्वार, वशिष्ठाश्रम में देखा तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे उनके आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व की वह सूक्ष्म आह्लाद-मय धारा गहराई में जा रही हो। स्वामी राम ने अपने आप को और संसार को अपने सुसंयत मस्तिष्क की महान् शक्तियों से समझना-बूझना प्रारम्भ कर दिया था। जैसे वे इस ज्ञान-साधना में कहीं ऊंचे चढ़ना चाहते हों। उस चित्ताकर्षक दिव्य प्रेरणाजन्य आह्लाद की पूर्ण अवस्था, उस स्फूर्तिमय भावावेश के स्थान में उनमें ज्ञान की अप्रतिम प्रभा चमकने लगी थी। वशिष्ठ आश्रम में उन्होंने अपने शिष्य स्वामी नारायण को अपने से पृथक कर दिया था और पूर्ण एकान्त में निवास करते थे--यहां तक कि उनकी भिक्षा वहां से दो मील दूर से आती थी। जिन साधनाओं पर वे जोर दिया करते थे, वे सब उन्होंने की थीं। अब ऐसा लगता था जैसे किसी महत्तम कार्य के प्रयास में वे अपने सहज आह्लाद से बेसुध हो गये हों। तिलक संस्थान के लोगों ने उन्हें राजनीति की ओर झुकाया था और इसीलिए उनके सहज आह्लाद की धारा उसी ओर मुड़ी थी। दारजिलिंग के जंगलों में भी वे इसी उद्देश्य से गये थे, क्योंकि वहां से लौटने पर जब वे मुझे मिले तो उन्होंने मुझ से कहा था--राम ने गम्भीर और श्रेष्ठतम निर्विकल्प योग-समाधि लगायी थी और समाधि के अनन्तर एक संकल्प प्रकट हुआ—"भारत को स्वतन्त्र करना है, अब भारत स्वतन्त्र होगा। सभी राजनैतिक कार्यकर्ता राम के औजारों की भांति काम करेंगे। वे तो राम के हाथ-पैर होंगे, और राम उनकी रीढ़ बनेगा।" स्वामी राम का यह संकल्प कैसा दिव्य था! हाँ, उससे एक बात प्रकट होती है। अमरीका जाने से पहले वे ऐसी बातें कम करते थे और अमरीका से लौटने पर ही भारत ने उनका विशेष ध्यान आकृष्ट किया था। अब समाधि में भी वे भारत की बात सोचते थे। जापान में मैंने उनका यह रूप न देखा था। परिस्थिति के अध्ययन की सहज

शक्ति उनमें थी—उसी के द्वारा वे आत्मनिष्ठ की स्थिति से एक आध्यात्मिक ज्ञानपुंज देशभक्त के रूप में परिणत हो गये। स्वयं आह्लादमय जीवन के स्थान पर उन्होंने उस आह्लाद के प्रचार का विचार किया और उस आह्लाद में ही संसार को भारत की राजनीति का पाठ पढ़ाया। स्वभाव ही से वे संसारविरत थे। अतः अपनी शुद्ध प्रेरणा के कारण वे कभी देश-सेवा के सर्वोच्च नैष्कर्म्य धरातल से नीचे उतरकर किसी क्षुद्र राजनैतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए साधन नहीं बनाये जा सकते थे।

एक बार उन्होंने मुझ से कहा था—राम दूसरे विषयों में पड़ना पसन्द नहीं करता, जो राम के क्षेत्र में नहीं। किन्तु श्री बी. जी. जोशी, जिन्होंने सनफ्रान्सिसको में उनका मंत्रित्व किया था, राम से कुछ दिनों तक भारतवर्ष के कार्य के लिए कहते-सुनते रहे। बस, यही एक छोटी सी बात उन्होंने अपने मन की मुझे सुनायी थी और मैं सोचता हूं कि शायद तिलक संस्थान के विचारों का उन पर कुछ प्रभाव पड़ा हो। उन्होंने एक व्याख्यान दिया था—'भारत की ओर से अमरीकनों से अपील'। इस प्रकार अमरीका में ही उन्होंने इस कार्य का श्री-गणेश किया था, यद्यपि वे न इस उद्देश्य से अमरीका गये थे और न यह उनका क्षेत्र था। (चाहे कोई अलौकिक प्रेरणा हो, चाहे मन की मौज) उन्होंने इस ओर ध्यान दिया किन्तु अपने केन्द्र में स्थित रह कर। जब अमरीकनों ने यह चाहा कि वे स्वयं भारतीय विद्यार्थियों की सहायता के लिए किसी संगठन का सूत्रपात करें तो झट से उन्होंने अपने हाथ सिकोड़ लिये और कहा—राम रुपया-पैसा नहीं छूता, वह किसी आर्थिक देन-लेन में नहीं पड़ सकता। और उनकी वह योजना आगे न बढ़ सकी। उसके बिना अमरीकनों के लिए भी यह सम्भव न था कि बहुत दिनों तक वे उस योजना में कोई सजीव अनुराग दिखाते।

वैसे तो स्वामी राम कहा करते थे कि जिसका हृदय दिव्य ज्ञान के आनन्द से खिल उठा है, उसे केवल आत्म-निष्ठ होकर बैठना चाहिए। उसकी उपस्थिति-मात्र से संसार का कल्याण होता है, उसे करने-धरने की आवश्यकता नहीं। ऐसे केवल जीवित रहें और अपने अन्तर में ज्ञान की लौ जलाते रहें। उन्हें करना नहीं होता है, उन्हें तो केवल ईश्वर की श्वांस में अपनी श्वांस मिलाना है। यदि वे उसी स्थिति में कुछ करने का संकल्प करते हैं तो वह पूर्ण हुए बिना नहीं रह सकता। वैसे तो राम सचमुच विश्वरुप थे, यहां तक उनकी दष्टि में जड़-चैतन्य का भी कोई भेद न रह गया था, केवल एक ब्रह्म, एक आत्मा, एक राम में उनका निवास था पर राम ने भारत के स्वतंत्र होने को संकल्प किया था; क्यों किया था ? ईश्वर जाने !

३—उनका आदर्श

सम्पूर्ण शिक्षित भारतवर्ष में स्वामी राम ही एक ऐसे व्यक्ति दिखायी देते हैं, जिन्होंने ईश्वर को प्राप्त करने का ऐसा अपूर्व साहस किया और उसे प्राप्त भी किया। उन्होंने जीवन में इस भांति प्रवेश किया, जैसे कोई बादशाह अपने जीते हुए शहर में प्रवेश करता है, उन्होंने अपने तुच्छ अहंकार को अपने पैरों तले रौंद डाला और परमात्मा से एक हो गये, उन्होंने अपने ही जीवन में यह सिद्ध करके दिखा दिया कि ब्रह्म का साक्षात् होने पर कोई बन्धन नहीं रहता, उन्होंने हमें बतलाया कि संसार की सभी समस्याओं का एकमात्र हल यही है कि हम में से प्रत्येक आत्म-ज्ञान के उच्च शिखर पर चढ़ने का प्रयास करे। पंजाब के इस छोटे से दुबले-पतले ब्राह्मण बालक ने आजकल के समय में भी हमारी आँखों के सामने अपने व्यक्तित्व में उन महान आत्माओं के उच्चादर्श को दिखा दिया, जिन्होंने किसी समय उपनिषदों के संवाद सुनाये थे

और वेदों की ऋचायें गायी थीं। यह एक सचमुच जीता-जागता करिश्मा, लोकोत्तर विचित्रता हुई, जो उन्होंने अपनी भक्ति, अपने संयम, अपने त्याग एवं अपने ज्ञान की गम्भीरता तथा कठोर आध्यात्मिक साधना द्वारा पोषित अटल संकल्पशक्ति के बल पर अद्वैत वेदान्त के लक्ष्य को सिद्ध कर दिखा दिया।

❀

राम का जीवन अनेक शिक्षाओं से भरा हुआ है; विद्यार्थियों के लिए वे एक आदर्श अनुकरणीय विद्यार्थी हैं—पुस्तकों के लिए अथवा अपने अर्द्धरात्रि के दीपक के लिए तैल मोल लेना उन्हें स्वीकार, उसके बदले भोजन में एक रोटी की कमी करना पड़े, तो क्या! अथवा पहनने की कमीज से वंचित होना पड़े, तो क्या! सफलता स्वयं उतनी हर्षदायक नहीं होती जितना कि सफलता प्राप्त करने का संघर्ष! परीक्षायें पास कर लेना सच्चा उद्देश्य नहीं है। विद्यार्थी का सच्चा उद्देश्य तो यह है कि वह अपने मस्तिष्क के उद्यान को भली भांति हरा-भरा रखने में कठोर से कठोर परिश्रम करे। उसका परिश्रम किसान के परिश्रम से, खनिक के परिश्रम से अथवा एक साधारण श्रमिक के परिश्रम कहीं अधिक कठोर होता है। सच्चे विद्यार्थी का यही जीवन है। उन्होंने कभी इन्द्रिय-सुखों को जाना ही नहीं, रात-रात भर गणित के प्रश्नों पर कठिन परिश्रम करने के बाद जो आराम मिल सका, उसी से सन्तुष्ट रहे। परिश्रम से कभी उनकी तृप्ति नहीं हुई। नींद भी उनके मार्ग में बाधक जैसी रही। उन्हें समय कभी पूरा पड़ा नहीं और कार्य उनका कभी समाप्त हुआ नहीं।

वर्तमान पुत्रों के सामने वे आज्ञाकारी पुत्र के रूप में आते हैं। अपनी सुविधाओं को छोड़ दो और सबकी सब अपने माता-पिता को भेंट करो—वे फिर भला कैसे असन्तुष्ट रहेंगे? माता-पिता भी तुमसे पूर्ण आत्मसमर्पण चाहते हैं। जो कुछ उनसे पाया, वह

उन्हें सौंपो और जो कुछ ईश्वर से पाया, उसे ईश्वर को भेंट करो।

शिष्य में लिए वे आदर्श शिष्य थे। विद्यार्थी-जीवन में उन के लिखे हुए पत्रों में शिष्य के अनुरूप आत्म-समर्पण का एक ऐसा उज्ज्वल धारा-प्रवाह है जिसके बल पर वे इतने सुसंस्कृत हुए थे। इस आत्म-समर्पण के साथ उनमें दया की भी प्रचुरता थी। स्यालकोट में एक बार उन्हें किसी व्यक्ति से दस रुपया उधार लेने का अवसर आया। यह उन्हें ऐसा लगा कि जैसे वे इस उपकार का बदला चुका ही नहीं सकते। पूर्णतः उस उपकार का बदला चुकाने में असमर्थता का अनुभव करके ही उन्होंने कई बार उसे दस-दस रुपयों की किस्तें भेंट कीं।

सहपाठी के सामने वे अपने कठोर श्रम द्वारा प्राप्त विद्या से सुसम्पन्न शिक्षक के रूप में प्रकट होते हैं। वे अपने शिष्य को भी भगवान् कृष्ण के रूप में स्वीकार करते हैं। वे उसे सिखाते हैं बड़ी श्रद्धा के साथ, वड़ी क्षमा-याचना के साथ। वे समझते हैं कि उनका ईश्वर तो सब कुछ जानता है। वह तो उसकी मौज है, जो उसने उनसे कोई बात पूछी है। मनुष्य के बच्चे के प्रति उनकी श्रद्धा अपरिमित थी। वे उसे ईश्वर कहते हैं—-तत्वमसि, तू तो है वही, वही ब्रह्म-शिवोहम् !

नागरिकों के लिए वे एक सच्चे नागरिक थे। उनसे कहने के लिए उनके पास एक ही बात थी—अपने आप को उठाओ, अपने आप को ऊँचा करो और अपने अन्तर की मनुष्यता को प्राप्त कर स्वतन्त्र हो जाओ। अज्ञान और दीनता भरे दासता के भाव को तिलांजलि दे दो और स्वयं अपने स्वामी बनो। अपने अनन्त आत्मसम्मान के बल पर सीधे खड़े हो, निर्भय बनो और करो प्रेम सबसे, मनुष्य मात्र से—

> सच्चा भक्त, प्यार करता है संसार भर को—
> उसकी छोटी-बड़ी सभी वस्तुओं से !

उन्होंने मनुष्य मात्र के सामने नागरिक कर्त्तव्य की एक लोकोत्तर भावना उपस्थित की है। 'सफलता का रहस्य' उनका एक ऐसा भाषण था, जिसे अनेक रूपों में वे संसार में सर्वत्र अच्छे नागरिक बनाने की अपनी योजना में बार-बार दुहराया करते थे। अस्तु, दासता के बन्धन में जकड़े भारतीयों के लिए तो वे--अपने अनुपम आत्मचिन्तन और भगवद्-निष्ठा के अतिरिक्त भी सब भांति आदर्श रूप थे ! किस प्रकार एक निर्धन विद्यार्थी ने बाहरी और भीतरी अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए अपने आप को शिक्षित बनाया, कैसे अपने निरहंकार चरित्र की प्रभा से संसार को चकाचौंध करके संसार की दृष्टि में अपने देश का मस्तक ऊंचा किया और अपनी अलौकिक शक्ति और अपूर्व आत्मबल के प्रभाव से, सब को अपने अंक में भरने वाले विशाल प्रेम के मधुर सौरभ से उन्होंने मनुष्य मात्र को अपना भाई, अपनी आत्मा जैसा बना लिया और फिर स्वयं कैसे बन गये सबके उपास्यदेव ! घर-घर के इष्ट देव !! उनके आदर्श की जय हो !!!

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!